Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

32184

R
55.3
VID-G

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

32184

R
55.3
VID-G

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

32178

CHECKED 1973
Initial

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरक संहिता का

अनुशीलन

स्नातकोत्तर परीक्षा [पोस्ट ग्रेज्युएट स्टडी] एवं अनुसन्धान
[रिसर्च] के लिये उपयोगी

लेखक
अत्रिदेव; विद्यालंकार
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय-बनारस

दो शब्द

डाक्टर राजबली पांडेय; डि. लिट्
प्रिन्सिपल भारती महाविद्यालय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय-बनारस

प्रथम सं० २०००] १५ अगस्त १९५५ [मूल्य २)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक—

भार्गवपुस्तकालय,

गायघाट, बनारस १.

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं० ५५·३/२२
आगत सं० ३२,१८४
दिनांक ....
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी.

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक—

पं० बैकुण्ठनाथ भार्गव,

आनन्दसागरप्रेस, गायघाट, बनारस १.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो शब्द

चरक संहिता का सांस्कृतिक अध्ययन ऐतिहासिक गवेषणा के क्षेत्र में एक अभिनव प्रयास है। अभी तक इतिहास की खोज में पुराण, साहित्य, धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र आदि का ही उपयोग किया जाता था; विभिन्न व्यावहारिक शास्त्रों की छानवीन बहुत कम होती थी। चरक संहिता जैसे ग्रंथों की ओर ध्यान बहुत कम ऐतिहासिकों का जाता था। प्रस्तुत लेखक ने अपने शास्त्रीय ज्ञान और ऐतिहासिक रुचि का सुन्दर परिचय इस ग्रंथ में दिया है और यह सिद्ध कर दिया है कि भारतीय इतिहास के स्रोत अभी कितने अछूते परन्तु कितने बिखरे, विस्तीर्ण और महत्त्वपूर्ण हैं। जहाँ भारत के प्राचीन साहित्य में आधुनिक ढंग के शुद्ध ऐतिहासिक ग्रंथों का अभाव है वहाँ उसके विविध अंगों में स्फुट और प्रासंगिक रूप में अपार सामग्री भरी पड़ी है। भारत में शास्त्रीय चिन्तन, अध्ययन और लेखन की एक विशेष प्रकार की परम्परा थी। एक शास्त्र का सम्यग् अध्ययन करने के लिये सभी सम्बद्ध शास्त्रों का अध्ययन आवश्यक समझा जाता था और सम्पूर्ण जीवन से उसकी शृंखला जोड़नी पड़ती थी। इसलिये एक शास्त्र के अध्ययन से जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों की झाँकी मिल जाती है। चरक संहिता मूलतः वैद्यक ग्रन्थ होते हुये भी जीवन के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालती है। प्रस्तुत पुस्तक में चरक की ऐतिहासिक अभिव्यक्ति पूर्णरूपेण हुई है।

लेखक ने प्रथम अध्याय में चरक की ऐतिहासिकता, समसामयिकता और साम्प्रदायिक परम्परा का बहुत ही युक्ति संगत विवेचन किया है और उसे वैदिक परम्परा में बुद्धपूर्व माना है। दूसरे अध्याय में सांस्कृतिक जीवन की भौगोलिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृष्ठभूमि का परिचय है। उत्तर में हिमालय के ऊपरी छोर से लेकर दक्षिण में काम्पिल्य नगर और पूर्व में कलिंग से लेकर पश्चिम में वाह्लीक प्रदेश तक के भूभागों का उल्लेख चरक संहिता में मिलता है। प्राचीन नामों की व्याख्या और आधुनिक नामों से उनका समीकरण अच्छा किया गया है। इसी अध्याय में वनस्पति, तौल, मान आदि का भी परिचय कराया गया है। तीसरे अध्याय में चरक संहिता कालीन शिक्षण-व्यवस्था का विवरण है; चौथे में दार्शनिक विचार; पाँचवें में भाषा, छन्द, रीति आदि; छठे में नागरिक जीवन; सातवें में चिकित्सक धर्म, आठवें में उत्तम संतान; नवें में चरक कालीन स्त्रियों की स्थिति; दसवें में चरक संहिता कालीन विश्वास का वर्णन है। इस प्रकार विविध ऐतिहासिक पहलुओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

मेरे विचार में वैद्यक ग्रन्थों से ऐतिहासिक अध्ययन की शृंखला की यह प्रथम कड़ी है पर सुदृढ़ और विश्वसनीय। आशा है कि लेखक आयुर्वेद के अन्य आकर ग्रन्थों के अध्ययन से इस शृंखला की अन्य कड़ियाँ भी प्रस्तुत करेंगे। इस शुभ प्रयास के लिये अनेक साधुवाद।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
६-८-५५

राजबली पाण्डेय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपही के लिए

डाक्टर श्रीवासुदेवशरण जी अग्रवाल प्राध्यापक भारती महाविद्यालय [कौलेज औफ इन्डोलोजी] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रेरणा और श्रम का यह परिणाम है कि मैंने इस प्रकार के विचारों को लिपीबद्ध करने का यत्न किया है।

जहाँ तक मेरा ज्ञान है; वहाँ तक इस प्रकार चरक संहिता या आयुर्वेद के किसी ग्रन्थ पर विचार नहीं हुआ। श्री डाक्टरजी का लिखा 'हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन' पढ़कर मेरी भी इच्छा इस प्रकार की समीक्षा चरक संहिता पर लिखने की हुई। मैंने श्री डाक्टर जी से अपने विचार कहे, उन्होंने इन विचारों को उत्तेजना और बढ़ावा दिया, जिसका यह छोटा सा परिणाम है।

सुश्रुत में कहा है कि—

एकं शास्त्रमधीयानो न विद्याच्छास्त्र निश्चयम्।
तस्माद् बहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सकः॥ सूत्र. अ. ४

एक ही शास्त्र के पढ़ने से शास्त्र का मर्म समझ में नहीं आता, इसलिये जिसने बहुत से शास्त्र सुने हैं, उसे चिकित्सक समझना चाहिए। यही कारण है कि आयुर्वेद के ग्रन्थों में अन्य शास्त्रों का उल्लेख भी मिलता है, और इन शास्त्रों की जानकारी इनके जानने वालों से ही करनी चाहिए, क्योंकि एक ही शास्त्र में सब विषयों का समावेश करना असम्भव है [सुश्रुत. सूत्र. अ. ४।६]। इसीलिए आयुर्वेद के ग्रन्थों का सही सही अध्ययन और अध्यापन करने के लिये इतिहास, भूगोल, विज्ञान (साइन्स) का ज्ञान भी उसी प्रकार आवश्यक है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस प्रकार की संस्कृत व्याकरण और छह दर्शनों का ज्ञान अपेक्षित है[१]। इतना विशाल ज्ञान प्राप्त करने पर ही हम भारतीय संस्कृति को ठीक रूप में समझ सकते हैं। उदाहरण के लिये–महादेवजी के साथ सांप, हालाहल, गंगा और चन्द्रमा का सम्बन्ध जुड़ा है। विना इन चार वस्तुओं के महादेव जी का अस्तित्व ही समाप्त होता है। इसमें सांप जंगमविष है और हालाहल स्थावर विष है। ये दोनों परस्पर विरोधि हैं, और एक दूसरे की शक्ति को नष्ट करते हैं [तस्माद् दंष्ट्रा विषं मौलं हन्ति मौलं च दंष्ट्रजम्— चरक. चि. अ. २३।१७]।[२] गंगा की शीतल धारा शिर पर गिरकर विष की तीक्ष्णता और गरमी को कम कर रही है। माथे पर स्थित चन्द्रमा अपनी द्युति से शरीर का काला रंग हटा रहा है,

---

१ जो व्यक्ति आचार्य, प्रभाकर या शास्त्री परीक्षा देकर अंग्रेजी में बी. ए. करके संस्कृत में एम. ए. कर लेते हैं, और गणित; दर्शन, विज्ञान, भूगोल, इतिहास आदि की शिक्षा नहीं लेते, वे सुश्रुत के अनुसार बहुश्रुत न होने से योग्य चिकित्सक या अध्यापक नहीं हैं। ऐसे अध्यापकों के लिये कालिदास ने कहा है— .

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।
यस्मागमः केवल जीवकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति॥

इसी से बनारस के संस्कृत विद्यालय-क्वीन्सकौलेज की संस्कृत परीक्षा में अन्य विषय भी अब सम्मलित किए हैं।

२ इसका दूसरा उदाहरण महाभारत में हैं—भीम को दुर्योधन ने विष देकर नदी में गिरा दिया था, वहाँ साँपो के काटने से विष उतरा था;

ततोऽस्यदश्यमानस्य तद्विषं कालकूटकम्।
हतं सर्पविषेणैव स्थावरं जंगमेन तु॥ महा. १।११९.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कि विष के कारण हो जाता है। इस प्रकार से ये महादेव जी शिव रूप कल्याण रूप बने हैं।

इसी प्रकार के दूसरे उदाहरण भी ढूंढे जा सकते हैं, अशोक के सारनाथ वाले सिंह स्तम्भ पर बने चार पशुओं के चिन्ह भी भारतीय संस्कृति के अच्छे प्रतीक हैं। यह संस्कृति जिस प्रकार अन्यत्र फैली है, उसी प्रकार आयुर्वेद साहित्य में भी आई है। इसलिये आयुर्वेद साहित्य को सही सही जानने के लिये, इनमें लिखे; कैलाश, चैत्र रथवन, काम्पिल्य शब्दों को समझने के लिये दूसरे शास्त्रों का ज्ञान अपेक्षित है। इतना विस्तृत ज्ञान प्राप्त किए विना आयुर्वेद साहित्य को विशेषतः चरक संहिता को समझना असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है, यह मेरी मान्यता है। इसीलिये मैंने आयुर्वेद पक्ष को छोड़ते हुए इस संहिता पर विचार किया है। इस प्रकार की दृष्टि अंग्रेजी के ग्रन्थों में या अंग्रेजी की टीका में मिल जाती है। सौभाग्य से हिन्दी राष्ट्रभाषा में भी अब इस प्रकार की पुस्तकें लिखी जाने लगी हैं।

पुस्तक की रूपरेखा बनाने में, इसके संकलन का सब श्रेय डाक्टर अग्रवाल जी का है, साथ में इसमें सहयोग मिला श्री राय कृष्णदास जी–संस्थापक कलाभवन–बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय का। आप दोनों सज्जनों से पुस्तक आदि की सब प्रकार की सहायता बिना रोक टोक के मुझे मिलती रही; इसीसे इसको मैं लिख सका और इसमें नक्शे दे सका। इस कृपा के लिये मैं दोनों महानुभावों का आभारी हूँ। साथ ही डाक्टर श्री राजवलीजी पाण्डेय–प्रिन्सिपल भारती महाविद्यालय [कौलेज औफ इन्डोलोजी] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का बहुत कृतज्ञ हूँ कि अपने कार्य में व्यस्त होते हुए भी समय निकाल कर पुस्तक को आमूल-चूड़ देखकर इसके लिये अपने विचार भूमिका रूप में लिखने का अनुग्रह किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक के प्रकाशक श्री वैकुण्ठनाथ जी भार्गव-भार्गव पुस्तकालय बनारस की भी सहायता महत्त्व पूर्ण है, जिन्होंने कि अपने बड़े भाई श्री कैलाशनाथ जी भार्गव की भांति मेरे चरक संहिता के अनुवाद के सिलसिले में प्रतिकूल परिस्थितियां होने पर भी इसे प्रकाशित किया। अन्त में कवि भारवि के वचन के साथ विदा लेता हूँ—

धियाऽऽत्मनस्तावदसाधु नाचरेत्
जनस्तु यद् वेद स तद् वदिष्यति।
जनावनायोद्यमिनं जनार्दनं
जगत्क्षये जीव्यशिवं शिवं वदन्॥

अध्यक्ष
आयुर्वेदिक फार्मेसी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अत्रिदेव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

१

चरक और उनकी संहिता

आत्रेय–अत्रिपुत्र [१–६]; अग्निवेश [६–१०], चरक [१०–१३]; दृढ़बल [१३-१४]; चरक संहिता का ढांचा [१४-१६], संहिता का उद्देश्य [१६-१६]।

२

चरक संहिता कालीन भूगोल

हिमालय पर्वत [२०-२२]; कैलाश शृंखला [२२-२४], प्रयाग [२४-२५], हिमालय का महत्त्व [२५-२७], कैलास [२७-२६], चैत्ररथवन [२६-३२] पंचगंगा [३२-३३], हिमालय [३३-३४], काम्पिल्य [३४-३७], वाह्लीक [३७-३८], चीन-पह्लव, शूलीक [३८-३६], चरक में वर्णित अन्नपान [३६-४५], तोल [४५ ४७]।

३

चरक संहिता कालीन शिक्षा व्यवस्था

विद्यादान [४८-४६], शिष्य के गुण [४९] आचार्य के गुण [४६-५०], शास्त्र की परीक्षा [५०-५१], अध्ययन विधि [५१], अनध्याय [५१]; उपनयन विधि [५२-५५] तद्विद्यसम्भाषा [५५-६०] व्रणितागार या आतुरगृह [६०-६२], सूतिकागार [६२-६४], कुमारागार [६४], शिक्षाक्रम [६५-६६], वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं [६६]।

४

चरक संहिता में दार्शनिक विचार

प्रमाण [६७-६८], पुनर्जन्म में सन्देह [३६], रोग और पुरुष की उत्पत्ति में भिन्न भिन्न विचार [६६-७२], भिन्न भिन्न वाद विचार [७२-७४],

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य दर्शनों से सम्मत विचार [७५-६०], कालमृत्यु और अकालमृत्यु [६० ६१], अश्वघोष और चरक संहिता [६१-६८]।

५

चरक संहिता की भाषा

छन्द विवेचना [६६-१०१], भाषा सौष्ठव [१०२-१०८], गद्य की विवेचना [१०७-१०६]; रीति [१०६-११०], पद्य रचना [१११-१ ३], नये शब्द [११३-११४], चरक संहिता में आइ उपमायें [११४-११७]।

६

चरक कालीन नागरिक जीवन

रहने का घर [११८-१२०], नौकर [१२०], धात्री [१२०], पेशे [१२०], साथी [१२०], पशु पक्षी [१२१-१२३], नित्य कर्मों का क्रम [१२३], शौचकार्य [१२४], आँख में अंजन [१२४-१२५], अंजन का लाभ [१२५], धूम्रपान [१२५-१२८], नस्य [१२८-१२६]; दन्तधावन और जिह्वी [१२६-], मुखवास [१३०], तैल गण्डूष [१३०], तैल अभ्यंग [१३०-१३२], स्नान [१३२], वेश [१३२-१३३], सद्वृत्त [१३३-१३६], सदाचार [१३६], स्त्रियों से सम्बन्धित सदाचार [१३], सामान्य सदाचार [१३७-१३८], ऋतुचर्या [१३८-१४१], आचार रसायन [१४३], मद्य-मांस सेवन [१४४-१४६], गाय [१४६-१४७]।

७

चिकित्सक का धर्म

चिकित्सा का प्रयोजन [१४८-१४६]; दो प्रकार के चिकित्सक [१४६-१५०], चिकित्सक का कर्त्तव्य [१५०-१५१], जनता का चिकित्सक के प्रति कर्त्तव्य [१५१], किनकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये [१५१-१५२], प्राणाभिसर वैद्य [१५२], रोगाभिसर वैद्य [१५३-१५४], चिकित्सा में सावधानी [१५४-१५५ [, सफलता का प्रदर्शन [१५५]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८

उत्तम संतान

सन्तान का महत्त्व १५६-१५७], जातिसूत्रीय [१५७], विधि [१५८], गर्भाधान में स्त्री की स्थिति [१५८], मानसिक स्थितियाँ [१५८-१५६], इच्छाके अनुसार पुत्र उत्पन्न करना [१५६-१६१], यज्ञ विधि [१६१-१६४], खिलौने [१६५-], बच्चे का लालन-पालन [१६५-१६६] बालक का मनोविज्ञान [१६६], दीर्घायु बालकों के लक्षण [१६६-१६८]।

६

चरक कालीन स्त्रियों की स्थिति

स्त्री का महत्त्व [१६६], वाजीकरण योग [१७०-१७१], स्त्रियों का सन्मान [१७२]।

१०

चरक संहिता कालीन विश्वास

चिकित्सा विश्वास [१७३ १७५], पूजा [१७५]; शकुन विचार [१७६-१७७], स्वप्न विचार [१७७-१९८], ज्योतिष सम्बन्धि विचार [१७६]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छप गया ! आयुर्वेद का सर्वोत्तम ग्रन्थ छप गया !!

चरक संहिता

का

हिन्दी अनुवाद—उपयोगी व्याख्या के साथ

३ खण्डों में **मूल्य २४)**

अनुवादक—

अनेक संस्थाओं से सम्मानित स्वर्ण-पदक आदि प्राप्त

कविराज श्री अत्रिदेवजी गुप्त विद्यालङ्कार, भिषग्रत्न

विशेषतायें:—

१—अनुवाद सरल रूप में विशेषतः विद्यार्थियों के उपयोग की दृष्टि से किया गया है।

२—इसमें प्रत्येक विषय समझा कर न बहुत संक्षेप में और न बहुत विस्तार से दिया है।

३—इसलिये पुस्तक की पृष्ठ संख्या उचित रूप में ही है, जिससे पुस्तक को प्रत्येक विद्यार्थी एवं साधारण मनुष्य प्राप्त कर सके।

४—इतना होने पर भी पुस्तक की छपाई, कागज, बँधाई सब आकर्षक और मजबूत है।

कविराज अत्रिदेवजी की इस भाषाटीका को अनेक विद्वान् आयुर्वेदमर्मज्ञ कविराजों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

कागज की कमी के कारण पुस्तक थोड़ी संख्या में छपी है। अतः शीघ्रता कीजिये; अन्यथा अगले संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

प्रकाशक—भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, काशी १.

ब्रांच—कचौड़ीगली, काशी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला अध्याय

चरक और उनकी संहिता

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः।
चिकित्सितं यच्च चकार नात्रिः पश्चात्तदात्रेय ऋषिर्जगाद ॥ अश्वघोष

आज कल उपलब्ध होने वाली चरक संहिता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में दी हुई अन्तः पुष्पिका में "इत्यग्निवेशकृते तंत्रे चरक प्रतिसंस्कृते" यह वाक्य मिलता है। चिकित्सा स्थान के चौदहवें अध्याय से लेकर सिद्धिस्थान की समाप्ति तक प्रत्येक अध्याय की अन्तः पुष्पिका में "इत्यग्निवेशकृते तन्त्रे चरक प्रति संस्कृते दृढ़वल संपूरिते" यह रचना मिलती है। प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ में "इति ह स्माह भगवानात्रेयः" यह सन्दर्भ दिया है।

इससे स्पष्ट है कि वर्त्तमान उपलब्ध चरक संहिता में उपदेष्टा–कहने वाले **'आत्रेय'** हैं, इन उपदेशों को तंत्र का रूप देनेवाले **अग्निवेश** हैं; इस तंत्र का प्रतिसंस्कार करनेवाले **चरक** हैं; और इसको पीछे से सम्पूर्ण बनाने वाले **दृढ़बल** हैं। इन चार के साथ इस संहिता का सम्बन्ध है।

इनमें **'आत्रेय'** शब्द दो अर्थ में आता है; एक अपत्य अर्थ में अर्थात् अत्रिका पुत्र और दूसरा गोत्र अर्थ में। इनमें से वर्त्तमान चरक संहिता में आत्रेय शब्द अपत्य के लिये ही आया है, न कि गोत्र के रूप में। क्योंकि अन्य स्थानों में 'अत्रि सुतः' [चि. २२।३]; अत्रिजः [चि. २०।३ स. ११।३।]; आत्रेय [चि. ११।३]; अत्र्यात्मज [चि. १२।३]; ये शब्द सब अपत्य शब्द को बताते हैं। इससे स्पष्ट है कि चरक संहिता का उपदेश करनेवाले अत्रि के पुत्र थे। इस आत्रेय को दूसरे आत्रेय से भेद करने के लिये, दूसरे आत्रेय के साथ भिक्षु शब्द जोड़ दिया गया है [यथा–सूत्र-अ. २५।२४ में]। इसी प्रकार भरद्वाज को दूसरे भरद्वाज से पृथक् करने के लिए कुमारशिरा विशेषण उसके आगे दे दिया है [सू. अ. २६।८]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये अत्रिपुत्र विचरने वाले, वानप्रस्थाश्रम के ज्ञात होते हैं, इसी कारण से इनको स्थान परिवर्त्तन करता हुआ तथा होम करनेवाला कहा है।[१] सन्यासी के लिए यज्ञ का कोई बन्धन नहीं रहता। गृहस्थाश्रम का व्यक्ति स्थान स्थान पर फिर नहीं सकता। जो ऋषि स्थान परिवर्त्तन करते रहते थे उनको यायावर कहते थे और जो ऋषि एक स्थान पर घर बनाकर रहते थे-उनको 'शालीन'-शाला वाले कहते थे [चि. अ. १।४।३]। यायावर ऋषियों का दूसरा नाम "वैखानस" है, क्योंकि इनके गाड़ीयों के पहियों में नाभि (नाय) नहीं होती थी-एक ठोस चक्का होता था। ये यायावार या वैखानस बराबर फिरते रहते थे-आज यहाँ और कल दूसरे स्थान पर। इसीलिये आत्रेय को कभी हम हिमालय में देखते हैं, कभी काम्पिल्य में और कभी चैत्ररथ वन में। ये यायावर अपने दैनिक कर्त्तव्य पूर्णतः करते थे-यथा, जप, होम आदि। इसीसे हम चरक संहिता में देखते हैं कि ऋषि जब जप और होम से निवृत्त हो चुकते हैं, तब अग्निवेश उनके पास जाकर प्रश्न पूछता है [चि. १४।३; चि. १६।३; चि. अ. २६।३]। जब वे अपने दैनिक कार्यों से निवृत्त हो जाते हैं, तब शिष्य ने जिज्ञासा की।

भगवान् आत्रेय अकेले नहीं घूमते थे-उनके साथ दूसरे भी महर्षी रहते थे [चि. अ. १६।५, चि. अ. २६।३;]। ऋषियों के साथ शिष्य समूह भी साथ साथ चलता था [विमा. अ. ३।३]। ये शिष्य और ऋषि आपस में ज्ञान चर्चा करते थे; यह चर्चा आयुर्वेद की होती थी, क्योंकि आत्रेय का सम्बन्ध आयुर्वेद से था, आत्रेय आयुर्वेद विद्या के प्रवर्त्तक थे; आयुर्वेद जानने वालों में श्रेष्ठ थे [चि. १३।४]। यह प्रश्न उस समय होता था जब उनको समय या शान्ति होती थी [चि. अ. ३।३।; चि. १४।३।; चि. अ. २५।३]। प्रश्न पूछते समय नम्रता-विनीत भाव सदा रहता था [सि. अ. ३।३; चि. अ. ४।३; चि. अ. १६।३]। प्रश्नों का विषय मुख्यतः दीन दुःखी जनों के दुःख का निवारण करने का उपाय होता था [चि. अ. १३।५]।

---

१ वानप्रस्थी के लिये उपदेश करना, पढ़ाना और होम आवश्यक है—"भगवन्तं खल्वात्रेयं कृताह्निकं हुताग्निहोत्रमासीनमृषिगणपरिवृत्तम् उत्तरेहिमवतः पार्श्वे विनयादुपेत्याभिवाद्य चाग्निवेश उवाच॥" चि.-१९।३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरक संहिता में आत्रेय के लिये पुनर्वसु और चान्द्रभागि ये दो शब्द और आते हैं [वि. अ. ३।३; चि. ४।३; चान्द्रभागि–सू. अ. १३।१००]। चान्द्रभागि का अर्थ चक्रपाणि ने पुनर्वसु किया है। सम्भवतः भेल संहिता में आया "चान्द्रभागं पुनर्वसुम्" [भेल पृष्ठ ३०] यह वचन इसका आधार हो। इसके सिवाय आत्रेय के साथ 'कृष्ण' विशेषण भी चरक संहिता में आता है, यथा– "त्रित्वेनाष्टौ समुद्दिष्टाः कृष्णात्रेयेण धीमता [सू. अ. ११।६५]; नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण धीमता [चि. अ. १५।१३२]। भेल संहिता में भी "अशीतिकं नरे विद्यात् कृष्णात्रेय वचो यथा" [भेल]। महाभारत में भी कृष्णात्रेय शब्द मिलता है, जिससे इनका चिकित्सा के साथ सम्बन्ध ज्ञात होता है "देवर्षि चरितं गार्ग्यः कृष्णात्रेय चिकित्सितम्" [महाभारत शान्तिपर्व अ. ११२] चरक संहिता में जिस आत्रेय को आयुर्वेद जानने वालों में श्रेष्ठ, वैद्य विद्या का प्रवर्त्तक [चि. अ. १३।४] कहा है; वह यही कृष्णात्रेय हैं, इनका ही पुनर्वसु दूसरा नाम था। सम्भवतः पुनर्वसु नाम इनका पुनर्वसु नक्षत्र में उत्पन्न होने से हुआ हो; क्योंकि नाम करण करने में दो प्रकार के नाम रखने का विधान चरक संहिता में है; एक नक्षत्र से सम्बन्धित और दूसरा अभिप्राय वाला नाम [शा. अ. ८।५४]।

आत्रेय के साथ जुड़ा कृष्ण विशेषण जहाँ पर आयुर्वेद के साथ इनका सम्बन्ध बताता है, वहाँ पर कृष्ण यजुर्वेद की शाखा से भी इनका सम्बन्ध स्पष्ट करता है। यजुर्वेद की कृष्ण और शुक्ल दो शाखायें हैं। शुक्ल यजुर्वेद का मुख्य सम्बन्ध याज्ञवल्क्य से है। याज्ञवल्क्य के मामा वैशम्पायन थे। वैशम्पायन का सम्बन्ध यजुर्वेद की कृष्ण शाखा से है; इस कृष्ण शाखा में तैत्तरीय, कठ, श्वेताश्वेतर और मैत्रायणि तथा अन्य शाखायें और उपनिषदें बनी, इनमें एक शाखा चरक भी है।

काशिका में 'कलापिवैशम्पायनान्तेवासिषु' [पा. ४।३।१०] सूत्र के उदाहरण में लिखा है कि चरक इति वैशम्पायनस्याख्या, तत्सम्बन्धेन सर्वे तदन्तेवासिनश्चरका इत्युच्यन्ते" चरक यह वैशम्पायन का नाम है; इसलिये वैशम्पायन के सब शिष्य चरक कहलाये।" चरक यह एक शाखा है; जिसका सम्बन्ध यजुर्वेद की कृष्ण शाखा से है जिस प्रकार की शुक्ल यजुर्वेद की काण्व और माध्यन्दिनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाखायें हैं। इसी कृष्ण शाखा से आत्रेय का सम्बन्ध रहने से इनको भी कृष्ण आत्रेय कहते थे। कृष्ण यजुर्वेद की चरक शाखा मानने वाले व्यक्ति मुख्यतः आयुर्वेद या चिकित्सा क्रम से सम्बन्ध रखते थे। सम्भवतः कृष्ण आत्रेय के समय तक चरक शाखा पृथक् न हुई हो, पीछे से चिकित्सकों का विभाग पृथक् करके उसे अलग शाखा बना दिया हो, इसको चरक नाम दिया हो। इस शाखा के व्यक्ति घूमने वाले भ्रमणशील रहे होंगें-जो कि दूसरों की तरह एक स्थान पर घर बनाकर नहीं रहे—अपितु मनुष्यों के दुःखों को दूर करने के लिये विचरते रहते होंगे।[1]

आत्रेय शब्द शाखावाची और गोत्रवाची भी है; इसीलिये यजुर्वेद की शुक्ल शाखा में दस आत्रेय बताये हैं, और कृष्ण शाखा में भी पाँच कहे हैं। इसलिये आत्रेय शब्द गोत्रवाची, शाखावाची, अपत्यवाची, तीनों अर्थों में आता है।[2] यह भी सम्भव है कि अग्निवेश के गुरु अत्रि के पुत्र, यजुर्वेद की कृष्ण शाखा से सम्बन्धित हों, इनको दूसरे आत्रेयों से भेद करने के लिये कृष्ण विशेषण दिया और संहिता में अत्रिसुत, अत्र्यात्मज आदि विशेषण दिये हों। पाणिनी ने अपने सूत्र "अपत्य पौत्रप्रभृतिषु गोत्रम्" में पौत्र को गोत्र नाम दिया है।

वर्त्तमान उपलब्ध चरक संहिता में कुछ शब्द बौद्ध काल के भी मिलते हैं, यथा—जेन्ताक, खुड्डाक और संख्यात। इनमें जेन्ताक शब्द के स्थान पर जन्ताक शब्द विनय पिटिक में स्नान भूमि के या स्नान गृह के लिए आया है। खुड्डाक शब्द खुद्दक का रूप है, जिसका अर्थ छोटा है। संख्यात शब्द भली प्रकार जाने हुए अर्थ में आता है, वैदिक वाङ्मय या संस्कृत साहित्य में ये तीनों शब्द इस अर्थ में नहीं देखने में आते। इससे स्पष्ट है कि वर्त्तमान उपलब्ध चरक संहिता का प्रतिसंस्कार या उसका उपदेश उस समय हुआ जब कि ये शब्द

---

१ भगवान बुद्ध ने भी भिक्षुवों को उपदेश दिया है कि चरत भिक्षुवे बहुजनहिताय बहुजनसुखाय।" इसी प्रकार से इस शाखा के व्यक्ति भी लोक कल्याण के लिये घूमते फिरते होंगे।

२ आत्रेयादशसंख्याता शुक्लात्रेयस्तथैव च।
कृष्णात्रेययास्तथा पञ्च .... ॥ वैदिक वाङ्मय का इतिहास।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक में प्रचलित थे। ईसा से कई वर्ष पूर्व-सम्भवतः भगवान बुद्ध की उत्पत्ति से पूर्व भी इसकी रचना हुई होगी। क्योंकि इसमें सब व्यवहार-धर्म कार्य-वैदिक हैं यथा—होमविधि, जो कि पुत्रेष्टि कर्म के लिये, अध्ययन-अध्यापनकार्य में बताई है; वमन विधि में दिये हुए ब्रह्मा, दक्ष-अश्विनौ, रुद्र, इन्द्र आदि के नाम [क. अ. १।१४]; तथा वृषध्वज की पूजा [सि. अ. १२।४३], गाय-ब्राह्मण का सम्मान [शा. अ. ८।३७] ब्राह्मणों का सम्मान [शा. अ. ८।३५], अथर्व-वेद और वेदों का सम्मान [शा. अ. ८।३५; सू. अ. ३०।२०-२१]; आदि कृत्य स्थान स्थान पर वर्णित हैं। इसलिये बुद्ध के उत्पन्न होने से पूर्व इसका निर्माण काल है। बुद्ध का समय ईसा से ५०० वर्ष पूर्व मानते हैं, चरक संहिता के उपदेश का समय इसके आस पास होगा।

चरक संहिता में मान परिभाषा [क. अ. १२ ८४ ६४] जो दी है, वह मागध परिभाषा है। कलिंग परिभाषा का उल्लेख नहीं। पीछे से आयुर्वेद में दोनों परिभाषायें चली हैं। सम्भवतः उस समय तक कलिंग देश की ख्याति या प्रसिद्धि नहीं हुई होगी। मौर्यकाल में कलिंग एक शक्तिशाली राष्ट्र था जिसे अशोक ने जीता था। इसलिये मौर्यवंश से पूर्व चरक संहिता का उपदेश हुआ होगा जब कि वैदिक क्रिया का पर्याप्त जोर था। यूं काशिकाकार ने लिखा है कि मान का उपक्रम नन्द से हुआ है।[1]

चरक संहिता में विरोधि पदार्थों के उदाहरण कुछ ऐसे दिए हुए हैं; जो कि कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी आते हैं। [सू. अ. २६।८६] इन विरोधि पदार्थों द्वारा मृत्यु तक हो जाती है इससे स्पष्ट है कि उस समय इनका प्रचार पर्य्याप्त था।[2] रचना की दृष्टि से भी चरक की रचना सरल, सुन्दर, ललित है। इसमें लम्बे और कठिन समास नहीं। उस समय वाद प्रतिवाद विशेष प्रचलित थे, इसलिये आस्तिकदर्शन-न्यायदर्शन (गौतमकृत) के आधार पर वाद के नियम विधि वर्णित की है। यह भी सम्भव है कि बौद्धधर्म का प्रचार उत्तर भारत में

१ "नन्दोपक्रमणानिमानानि, नन्दोपक्रमं द्रोणः—"।

२ यथा—मयूरमांसमेरण्डसीसकावसक्तमेरण्डाग्निप्लुतमेरण्डतैलयुक्तंसद्यो-व्यापादयति। हारिद्रकमांस हारिद्रसीसकावसक्तं हारिद्राग्निप्लुष्टं सद्योव्यापाद-यति ॥ सू. अ. २६।८९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ पर आत्रेय का विचरण मुख्यतः हुआ है—हिमालय प्रदेश और पाञ्चाल प्रदेश में—वहाँ नहीं हो, इसलिये वैदिक संस्कृति की ही झलक हमको सारे चरक में एक समान दीखती है। मौर्यचन्द्रगुप्त का मंत्री चाणक्य भी वैदिक प्रक्रिया का मानने वाला था, सम्भवतः चरक संहिता का उपदेश भी इसी समय हुआ हो। बौद्धधर्म का प्रचार अशोक के समय जितने विस्तार में हुआ उतना उससे पहिले नहीं था। इसलिये वैदिक प्रथा बराबर अक्षुण्ण रही। इसीसे अतिसार रोग की उत्पत्ति में पशुओं की हिंसा को कारण बताया है[१]। वैसे यज्ञ में पशुओं की हिंसा करने का कोई विधान नहीं था—केवल मंत्र से अभिमन्त्रित करके उनको छोड़ देना ही उद्देश्य था। पीछे से पशुओं का वध प्रारम्भ हुआ। और जब पशुओं का मिलना कठिन हो गया—तब गायों का वध प्रारम्भ हुआ। जिस वध को देखकर सब लोग डर गये और डर के मारे भागने से उनमें अतिसार प्रारम्भ हुआ [चि. अ. १९।४][२]। इससे स्पष्ट है कि उस समय यज्ञ में पशु वध प्रारम्भ हो गया था—जो कि शास्त्र सम्मत नहीं था।

इससे अनुमान होता है कि इस संहिता का उपदेश भवगान् बुद्ध के आसपास और नन्द के राज्य काल से पूर्व या उसके आस पास हुआ था—जब कि लौकिक साहित्य में पाली के कुछ शब्द आ गये थे और वैदिक प्रथा अक्षुण्ण बनी थी—उसका प्रचार बराबर था।

'अग्निवेश'—आत्रेय के शिष्य थे। वर्त्तमान चरक संहिता का उपदेश अग्निवेश को ही सम्बोधन करके दिया गया है। अग्निवेश के साथ उपदेश लेने वाले दूसरे भी पांच शिष्य थे, यथा—हारीत, क्षारपाणि, भेल, जतूकर्ण,

---

१ आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालम्भनीयाबभूवुर्नालम्भाय प्रक्रियन्ते स्म। ततो दक्षयज्ञ प्रत्यवरकालं मनोः पुत्राणां नरिष्यन्नाभागेक्ष्वाकुनृगशर्यात्यादीनां क्रतुषु पशुनामेवाभ्यनुज्ञानात् पशवः प्रोक्षणमवापुः ॥ चि अ. १९।४

२ मेघदूत में कालीदास ने भी गायों के वध का उल्लेख किया है; जिसके कारण चर्मण्वती नदी बनी; यथा—

व्यालम्वेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्य

न्स्रोतोमूर्त्याभुवि परिणतां रन्तिदेवस्यकीर्त्तिम् ॥ पूर्वमेघ ४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पराशर। इन छैः शिष्यों को आत्रेय ने समान रूप से उपदेश दिया। सब शिष्यों ने इस उपदेश को अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार तंत्र का रूप दिया। इनमें से अग्निवेश की ही संहिता ही सबसे अधिक प्रचलित हुई। इसका कारण अग्निवेश की बुद्धि की विशेषता थी–ऋषि के उपदेश में कोई अन्तर नहीं था–वह तो सब के लिए समान था [सू. अ. १।३२]। इसलिये इस वर्त्तमान संहिता में प्रश्न पूछने वाला अग्निवेश है तथा इसी को सम्बोधित करके भगवान् आत्रेय उपदेश देते हैं।

कुछ लोगों की मान्यता है कि अग्निवेश ने वर्त्तमान चरक संहिता के अतिरिक्त 'अग्निवेश तंत्र' भी बनाया था; जो कि अब उपलब्ध नहीं होता। जैसा कि श्री गंगाधर जी अपनी टीका जल्प कल्पतरु में लिखा है कि "चरक से प्रति संस्कृत अग्निवेश के तंत्र में चिकित्सा के १६ अध्याय और कल्प तथा सिद्धि स्थान नहीं मिलते; केवल अग्निवेश के तंत्र में मिलते हैं। इन अध्यायों को दृढ़बल ने अग्निवेश तंत्र से लेकर पूर्ण किया।' परन्तु दृढ़बल के पूर्ण करने का ढंग-उञ्छ और शिल वृत्ति है [कृत्वा बहुभ्यस्तन्त्रेभ्यो विशेषोञ्छशिलोच्चयम्–[सि. अ. १२।६६]। इसलिये एक ही तंत्र से उसने इनको पूरा किया यह ठीक नहीं, अपितु बहुत से तंत्रों से थोड़ा थोड़ा चुनकर, एकत्रित करके इस संहिता को पूर्ण किया।

इस तंत्र के सिवाय अग्निवेश तंत्र था, ऐसा वाग्भट [अष्टांग हृदय और अष्टांग संग्रह में] के वचन से स्पष्ट है, यथा "इत्यग्निवेशस्यमतम्; हारीतस्य पुनः स्मृतिः [संग्रह०-नि. २। हृदय निः २।६२।]। वाग्भट के शिष्य जज्जट ने भी अपनी टीका में इन श्लोकों को चरक की टीका में उद्धृत किया है। इसी स्थान पर क्षारपाणि, जतूकर्ण के वचन उद्धृत किये हैं। [1]इससे स्पष्ट है कि अग्निवेश ने अपनी संहिता इससे पृथक् बनाई थी, जिस प्रकार कि दूसरे सब शिष्यों ने बनाई थी। यह संहिता चक्रपाणि, श्रीकण्ठदत्त; शिवदाससेन, शोढल; गंगाधर आदि के समय भी उपलब्ध थी, जिससे कि इन लोगों ने इस संहिता

१ देखिये चरक संहिता में जज्जट की निरन्तर पदव्याख्या–चि. अ. ३। श्लोक ६३ से ६६ पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से वचन उद्धृत किए। दृढ़बल ने सम्भवतः इससे भी कुछ लिया है क्योंकि उञ्छ वृत्ति से इसने पूर्ण किया है। दृढ़बल ने इसको पूर्ण रूप से नहीं लिया, नहीं तो तंत्र युक्तियों के लिए यह नहीं कहता कि इनको उत्तर तंत्र में कहेंगे। क्योंकि तंत्र युक्तियां अष्टांगसंग्रह, सुश्रुत संहिता में सब में पीछे दी है। ये तंत्र युक्तियां शास्त्र ज्ञान के लिये मुख्य वस्तु हैं, जिस प्रकार कि कमलवन के लिए सूर्य होता है, उसी प्रकार से शास्त्र को प्रकाशित करने के लिए ये तंत्र युक्तियां हैं। इनको जो उत्तर तंत्र में कहने का उल्लेख किया है, वह स्पष्ट है कि दृढ़बल के समय यह प्राप्त नहीं था; नहीं तो वह अवश्य इसमें समावेश करता।

यह भी सम्भव है कि अग्निवेश के नाम पर किसी दूसरे व्यक्ति ने संहिता बना दी हो, जिस प्रकार कि वर्त्तमान समय में उपलब्ध हारीत संहिता में–टीका कारों के हारीत संहिता से उद्धृत वचन नहीं मिलते। इससे स्पष्ट है कि दोनों संहितायें पृथक् हैं; सम्भवतः अग्निवेश संहिता भी इस चरक संहिता से पृथक् हो।

आयुर्वेदाचार्य पंण्डित श्रीहरिदत्तजीशास्त्री अग्निवेशको शतपथ ब्राह्मण काल का, आचार्य द्रोण का धनुर्विद्या गुरु मानते हैं। इन्होंने द्रोण को ब्रह्मशिर नामक विशेष अस्त्र दिया था; ये धनुर्वेद में अगस्त और भरद्वाज के शिष्य थे, आयुर्वेद में कृष्णात्रेय पुनर्वसु-चान्द्रभाग के अन्तेवासी थे। आयुर्वेद में ये अग्निवेश तंत्र के प्रणेता थे। इनके मत से अग्निवेश का तंत्र इससे पृथक् है। इसका आधार चरक संहिता का निम्नश्लोक है—

अस्मिन् सप्तदशाध्यायाः कल्पाः सिद्ध्य एव च।
नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्य तंत्रे चरक प्रतिसंस्कृते॥

इस श्लोक की व्याख्या में श्री गंगाधर जी ने लिखा है कि "चरक प्रति संस्कृतेऽग्निवेशे तंत्रेऽधुना न प्राप्यन्ते, केवल अग्निवेश तन्त्रे तु प्राप्यन्ते।" चरक द्वारा प्रति संस्कृत अग्निवेश तंत्र में आज नहीं मिलते, परन्तु अग्निवेश तंत्र में मिलते हैं। यह श्लोक कलकत्ता से प्रकाशित पुस्तकों में हैं, परन्तु बम्बई में छपी तथा लाहौर में छपी पुस्तकों में यह श्लोक नहीं है। इन्हीं प्रतियों में चिकित्सा स्थान के अध्याय क्रमों में अन्तर है। कलकत्ता में छपी चरक की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतियां में अध्याय क्रम भट्टारहरिचन्द्र; जज्जट के अनुसार चक्रपाणी ने चिकित्सा स्थान के यक्ष्म चिकित्सा के आठ अध्याय, अर्श, अतिसार, विसर्प, द्विव्रणीय, मदात्यय ये तेरह अध्याय चरक द्वारा प्रति संस्कृत माने हैं। बम्बई की छपी पुस्तकों में अर्श, अतिसार, विसर्प, द्विव्रणीय, मदात्यय ये दृढ़बल से पूरण किये माने जाते हैं, और उन्माद, अपस्मार, क्षतक्षीण, श्वयथु और उदर रोग चरक से प्रति संस्कार किये माने गये हैं। अध्याय क्रम में यह भेद दोनों स्थानों के प्रकाशन में है।

इसी प्रकार से गंगाधर जी का श्लोक भी बम्बई की छपी पुस्तकों में नहीं है; परन्तु इसमें "तस्मादेताः प्रवक्ष्यन्ते विस्तरेणोत्तरे पुनः" [सि. अ. २।७७] इस पाठ से यह स्पष्ट है कि इस तंत्र में उत्तर तंत्र था, जो कि आज नहीं मिलता। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि मुख्य वस्तु से बचे अंश को या सहायक भाग को परिशिष्ट के रूप में जैसे आज कहा जाता है, उसी प्रकार प्राचीन काल में भी लिखा जाता था; इसीसे सुश्रुत में उत्तर तंत्र; काश्यप संहिता में खिल स्थान, और अष्टांग संग्रह में उत्तर स्थान है। इससे चरक संहिता में भी उत्तर स्थान अवश्य रहा होगा–जिसका निर्देश उपर के श्लोक में है। दृढ़वल को यह स्थान सम्भवतः मिला नहीं होगा अथवा मुख्य भाग से अनुपयोगी होने के कारण नहीं लिखा। क्योंकि आयुर्वेद की संहितायें प्रायः सब एक सौ बीस अध्यायों में पूर्ण होती हैं। [१]इसीलिये इस संहिता को भी एक सौ बीस अध्याय में पूर्ण किया, यथा वर्त्तमान सुश्रुत संहिता एक सौ बीस अध्याय में सम्पूर्ण हैं, उत्तर तंत्र इससे अलग परिशिष्ट रूप में रहा।

कुछ विद्वान् अग्निवेश तंत्र को वर्त्तमान चरक संहिता से पृथग् नहीं मानते–परन्तु टीकाओं में अग्निवेश तंत्र के जो वचन उद्धृत मिलते हैं, वे इस संहिता में नहीं है। सम्भवतः जिस प्रकार अन्य शिष्यों के नाम से संहितायें बनी अग्निवेश के नाम से भी बनी हो। आत्रेय के शिष्य अग्निवेश की बनाई तो यही एक संहिता थी–जिसका कि प्रति संस्कार चरक ने किया। दूसरी रचना

---

१ देखिये हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित–मेरा 'आयुर्वेद का इतिहास'-पृष्ठ–१००।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी अन्य व्यक्ति ने अग्निवेश के नाम से की होगी। क्योंकि इसी चरक संहिता में हम पढ़ते हैं कि सब शिष्यों में सबसे प्रथम अग्निवेश ने अपना तंत्र बनाया [सू. अ. १।३२]। उस समय प्रकाशन की या दूसरी इतनी सरलता नहीं थी कि एक ही व्यक्ति दो दो तंत्र या ग्रन्थ बनाता। इसलिये पृथक् अग्निवेश तंत्र यदि कोई मिलता था या है, तो वह अग्निवेश के नाम पर दूसरे का बनाया हुआ है। यदि यह तंत्र दृढ़बल के समय उपलब्ध होता तो उसे उञ्छ वृत्ति [भूमि पर गिरे एक एक दाने को चुनना] और शिलवृत्ति [धान्य काटने से खेत में पड़ी हुई सम्पूर्ण बाल को चुगना] से इस तंत्र को पूरा न करना पड़ता। इससे दृढ़बल ने अपने परिश्रम का आभास दिया है। इसलिये आत्रेय के शिष्य अग्निवेश से प्रणीत वर्त्तमान उपलब्ध चरक संहिता ही है, जिसका प्रतिसंस्कार चरक ने किया है। अग्निवेश आत्रेय शाखा से सम्बद्ध थे या नहीं, इसका कुछ पता नहीं, जो विद्वान् इनको इस शाखा से सम्बद्ध मानते हैं, उनका मुख्य आधार इनका आत्रेय का शिष्य होना है। परन्तु शिष्य अवश्य उसी शाखा का अनुगामी हो, ऐसा कोई नियम शिष्यपरीक्षा के लिये चरक में नहीं दिया। दूसरी शाखा के लोग भी शास्त्र पढ़ने के लिये गुरु के पास आते थे गुरु उस समय शिष्य की गुणों से ही परीक्षा करता था [वि. अ. ८।८]। इसलिये इनका इस शाखा से सम्बन्ध होना पूर्ण निश्चित नहीं कहा जा सकता।

चरक—चरक एक शाखा का नाम है। इस शाखा का सम्बन्ध यजुर्वेद की कृष्ण शाखा के साथ था। वैशम्पायन के सब शिष्य चरक कहे जाते थे। इस शाखा के लोग सदा विचरते रहते थे; इनका जीवन वानप्रस्थी के समान रहता था; अपनी आवश्यक्तायें बहुत कम करके केवल मनुष्यों के रोग रुप दुःखों को दूर करना ही इनका उद्देश्य था। इस शाखा के किसी व्यक्ति ने अग्निवेश तंत्र का प्रतिसंस्कार किया है।

प्रतिसंस्कर्त्ता का कार्य—प्रतिसंस्कर्त्ता संक्षेप में कही वस्तु का विस्तार करता है, अति विस्तार में कही वस्तु का संक्षेप करता है, पुराने तंत्र को फिर से नया-समयानुकूल बना देता है, एक प्रकार से उसका पुनः संस्करण करता है। [सि. अ. १२।६३]। आज कल भी पुस्तकों का समय के अनुसार संशोधन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्धन किया जाता है। यह कार्य उस समय प्रतिसंस्कर्त्ता करता था। चरक ने अग्निवेश तंत्र का प्रतिसंस्कार किया था–उसे समयानुकूल बनाया था।

इस सम्पूर्ण प्रतिसंस्करण में बौद्ध धर्म की छाया कहीं भी नहीं मिलती; इसलिये जो व्यक्ति चरक को कनिष्क का समकालीन [ईसा से एक शती पूर्व का] मानते हैं, उनके लिये यह बहुत बड़ी उलझन है। यदि चरक कनिष्क के समकालीन होते तो बौद्ध धर्म की कुछ न कुछ छाया कहीं तो मिलती–परन्तु इसके विपरीत स्थान स्थान पर वैदिक धर्म की झांकी मिलती है। इसलिये चरक का कनिष्क के समकालीन होना ठीक नहीं जँचता।

चरक का सम्बन्ध–महाभाष्यकार पतञ्जलि से भी नहीं है। यह बात ठीक है कि—महाभाष्य में कुछ उदाहरण चिकित्सा से सम्बन्धित मिलते हैं; यथा— "दधित्रपुसं प्रत्यक्षो ज्वरः", "नड्वलः पादरोगः", ये उदाहरण ऐसे हैं जो कि विना आयुर्वेद पढ़े भी लोकव्यवहार से मनुष्य सीख सकता है। समान्य जनता में भी कुछ औषध उपचार चलते हैं, जिसे सामान्य व्यक्ति सीख लेता है। इसी से शिशुपाल वध के दूसरे सर्ग में ज्वर, यक्ष्मा के लिये; नैषध काव्य में पित्त से कड़ुवी जिह्वा में मिश्री का कड़ुवा लगना, मालविकाग्नि मित्र में—सर्प दंश की चिकित्सा हमको मिलती है। इसका यह अभिप्राय नहीं किये ये सब कवि आयुर्वेद के विद्वान थे। इसी तरह महाभाष्य में आये ये उदाहरण हैं। इनसे महाभाष्यकार पातञ्जलि आयुर्वेद का विद्वान चरक नहीं सिद्ध होता। चरक में भी व्याकरण महाभाष्य की भांति नामकरण करने का विधान है [शा. अ. ८।५४] यह ऐसी वस्तु है जो कि उस समय प्रचलित थी।

पतञ्जलि को पुष्पमित्र का समकालीन [लगभग २००० वर्ष पूर्व का] मानते हैं। पुष्पमित्र वैदिक धर्म का बड़ा पक्षपाती था; इसलिये तथा चरक

---

१ शाखा से मिलता शब्द सम्प्रदाय है जिस प्रकार कि आज भी वैरागियों के कई सम्प्रदाय या शाखायें हैं। ये शाखायें अपने २ धर्म का पालन करती हैं इन्हीं में से एक प्रकार के साधु जो कि सिखों की भांति दाड़ी मूछ रखते हैं। शिर पर गेरवा वस्त्र बांधते हैं, गांवों में आंख बनाने का काम करते फिरते हैं, मोतियाबिन्द निकालते हैं, दवा दारु करते हैं, इनका अलग सम्प्रदाय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वैदिक प्रक्रिया का पूर्णतः समर्थन मिलने से इनका सम्बन्ध जोड़ने का यत्न किया दीखता है। इसमें विज्ञान भिक्षु के श्लोक ने पूर्ण सहयोग दिया। इसी से चक्रपाणि ने भी अपनी चरक की टीका में विज्ञानभिक्षु के श्लोक के आधार पर चरक का सम्बन्ध पातञ्जल महाभाष्य से मिला दिया है।

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥
योगवार्त्तिक.

पातञ्जल महाभाष्य चरकप्रतिसंस्कृतैः।
मनोवाक् कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः॥ चक्रपाणि।

इसीप्रकार रामभद्रदीक्षित ने भी पतञ्जलि चरित में इनको एक ही कहा है। वास्तव में यह परम्परा 'गतानुगतिक" है। विज्ञानभिक्षु से जो परम्परा-शृंखला चली वही कड़ी आगे भी गुरुवचन के कारण बराबर चलती रही। उन्हीं संस्कारों से योगदर्शन, पतञ्जल महाभाष्य और चरक इन तीनों का सम्बन्ध एक व्यक्ति के साथ जोड़ा है। यह ठीक है कि चरक में योगसम्बन्धि वचन कुछ मिलते हैं; परन्तु वे सब ऐसे हैं जो कि चरक जैसे प्रतिसंस्कर्त्ता को जानने आवश्यक थे। आज भी एक विषय के साथ अन्य विषयों का सामान्य ज्ञान करवाया ही जाता है। भौतिकी के बायलस नियम या चार्ल्सनियम को जानने मात्र से छात्र भौतिकी का विद्वान नहीं होता। चरक संहिता में योग की बातें सामान्य हैं। जो भी मुमुक्षु या सन्यासी अथवा वानप्रस्थी उस समय होगा उसे ये बातें आवश्य ही ज्ञात रही होंगी। इसके आतरिक्त न्यायदर्शन और सांख्य का प्रतिपादन योग दर्शन से कम नहीं है। इसलिये यह केवल आचार्य की विद्वत्ता को ही बताता है, न कि उनको पतञ्जलि से अभिन्न सूचित करता है। इसलिये यह पक्ष अभी सन्देहावस्था में ही है। यदि पतञ्जलि ही चरक होते तो भट्टार हरिचन्द्र, जेज्जट या दृढ़बल एक स्थान पर तो चरक को पतञ्जलि कहते—परन्तु उन्होंने कहीं भी ऐसा नहीं कहा। वास्तव में चरक शाखा के किसी व्यक्ति ने इस संहिता का प्रतिसंस्कार किया है। भावमिश्र का यह लिखना है कि 'यस्माच्चर इवागतस्तस्माच्चरक इत्युक्तः" यह केवल व्युत्पत्ति मात्र है। महाभाष्य में पतञ्जलि के जहां अन्य नाम आये हैं, वहाँ पर एक बार तो 'चरक' का नाम आता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतने बड़े महाभाष्य में एक स्थान पर भी चरक शब्द का उल्लेख नहीं है। इसलिये 'चरक' पतञ्जलि से पृथक् व्यक्ति था। चरक शब्द से मिलनेवाला शब्द "चारिका है–चारिका बौद्ध साहित्य में देशभ्रमण के लिए आता है-[अनुपब्बेन चारिकां चरन्ता—जातक. भा. ५ पृ. ३४७]। इसलिए चरक का अर्थ भ्रमण शील करने वाला करना ही उचित है। कुछ विद्वानों का विचार है कि "भवन्तिचात्र" या "भवतिचात्र" ये शब्द तथा इसके आगे के श्लोक प्रतिसंस्कर्त्ता के हैं, क्योंकि इनमें गद्योक्त वचन पद्य में कहा है। चरक संहिता में इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार आया है कि–'गद्य में कहा जो अर्थ–विषय पुनः श्लोक में कहा जाता है, यह कहना ग्रहण करने के लिए-स्मरण करने की दृष्टि से अधिक दृढ़ करने के लिए है, इसको द्विरुक्त–पुनः कहना कहीं कहा जाता' [नि.अ. १।४५]।

भगवान अत्रेय ने अग्निवेश आदि अपने छैः शिष्यों को प्रवचन के रूप में व्याख्यान किया था। अग्निवेश ने उस व्याख्यान को तंत्र का रूप दिया। चरक ने कालान्तर में इसका प्रतिसंस्कार किया। तंत्र का अर्थ—तन्त्रणात्–शरीर धारण करने से या नियमित करने से [यथा राज्यतंत्र] तंत्र कहते हैं।

दृढ़बल—ने अपना परिचय अन्त में स्वयं दिया है यथा–दृढ़बल कपिलबल के पुत्र थे, पंचनदपुर के रहने वाले थे। पंचनदपुर काश्मीर में आज कल पंजन्य नाम से प्रसिद्ध स्थान है। गंगाधर कविराज जल्पकल्पतरु टीका में तथा डा० स्टीवन महोदय काशी के पंचगंगाघाट को पंचनद मानते हैं। इसी से पढ़ते हैं "तस्मात् काश्यां पञ्चनदेवसन् दृढ़बलः"। इस पंचनद का उल्लेख स्कन्दपुराण में काशी खण्ड में आया है। परन्तु वास्तव में काश्मीर के पूंछ इलाके का नाम पंजन्य देश ही है। पंचगंगा शब्द चरक में आता है, परन्तु वह काशी की पंचगंगा न होकर हिमालय की पंचगंगा हैं। दृढ़बल काश्मीर निवासी थे, यह प्रसिद्ध भी–काश्मीर को शारदा लिपी में लिखा चरक भी मिलता है।

दृढ़बल का समय ईसा की चौथी शती प्रतीत होती है, क्योंकि दृढ़बल का काल वाग्भट से पहिले का, वाग्भट का समय ईसा की छठी शती है।

दृढ़बल ने इस संहिता को सम्पूर्ण किया; इसमें चिकित्सा स्थान के पिछले सतरह अध्याय, कल्प स्थान के बारह अध्याय और सिद्धिस्थान के बारह अध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके द्वारा पूर्ण हुए हैं। इन अध्यायों को पूर्ण करने के लिए इन्होंने दूसरे तंत्रों से ऊञ्छ वृत्त तथा शिल वृत्ति से-सार भाग लेकर इस ग्रन्थ को पूर्ण किया। एक प्रकार से एक तिहाई भाग दृढ़बल द्वारा पूर्ण किया गया। दृढ़बल ने शंकर की आराधना करके इसे पूर्ण किया। वर्त्तमान संहिता में चिकित्सा स्थान के कुछ अध्यायों के क्रम में अन्तर है, यथा अर्श, अतिसार, द्विव्रणीय, मदात्यय विसर्प ये पाँच अध्याय कलकत्ता से प्रकाशित चरक संहिता में आठवें अध्याय के बाद आते हैं। बम्बई की छपी पुस्तकों में पीछे आने से दृढ़बल के द्वारा पूरण किए कहे जाते हैं। इस संहिता में उत्तर तंत्र नहीं है।

चरक संहिता का ढाँचा

चरक संहिता का वाह्यरूप सूत्र स्थान के तीसवें अध्याय के अन्त में स्वयं ऋषि ने बता दिया है, यथा-इस तंत्र में आठ स्थान हैं; स्थान का अर्थ-प्रधान अर्थ का वर्णन से है [स्थानमर्थप्रतिष्ठया-सू. अ. ३०।७१]। ये स्थान-श्लोक स्थान या सूत्र स्थान; निदान स्थान; विमान स्थान; शारीर स्थान; इन्द्रिय स्थान चिकित्सा स्थान; कल्प स्थान और सिद्धि स्थान हैं। इनमें—

१—श्लोकस्थान या सूत्रस्थान में-तीस अध्याय हैं। अध्याय से अभिप्राय-जिस अर्थ या विषय का उसमें वर्णन है; उस विषय के नाम से अध्याय का नाम किया गया है। यह नाम करण कहीं पर अध्याय के प्रथम शब्द से है; यथा सूत्र स्थान के तीसरे अध्याय में आरग्वधीय अध्याय का प्रारम्भ आरग्वध शब्द से हुआ है। पन्द्रहवें अध्याय [उपकल्पनीय] का नाम करण विषय की दृष्टि से है।

श्लोक का अर्थ संग्रह है, इसलिये श्लोक स्थान में आयुर्वेद के सब विषयों का संग्रह है। जिस प्रकार कि फूलों का संग्रह करने के लिए (माला रूप बनाने के लिए) सूत्र की जरूरत होती है, उसी प्रकार अर्थों का संग्रह करने के लिए ऋषि ने यह सूत्र स्थान या श्लोक स्थान बनाया है [सूत्र. अ. ३०।६०]।

इस सूत्र स्थान में तीस अध्याय हैं। इनमें अट्टाईस अध्याय चार चार अध्यायों के अन्दर विभक्त हैं और शेष दो अध्याय संग्रह रूप हैं। यथा-औषध चतुष्क; स्वस्थ चतुष्क; निर्देश चतुष्क; कल्पना चतुष्क; रोग चतुष्क, योजना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुष्क, और अन्नपानिक। इस प्रकार से तीस अध्यायों में यह सूत्र स्थान सम्पूर्ण होता है।

२–**निदान स्थान**–दूसरा निदान स्थान है, इसमें आठ अध्याय हैं, इसमें रोग के कारणों का मुख्य रूप से वर्णन है। मुख्य रोग रूप में आठ ही रोगों का वर्णन किया है। इसी स्थान में रोगों के विषय में सामान्य जानकारी दी गई है।

३–**विमान स्थान**–इसमें आठ अध्याय हैं, विमान का अर्थ–ज्ञान करना है, जिस स्थान में दोष, औषध, आदि विशेष रूप में जाने जाते हैं, वह विमान स्थान है। इस स्थान में दोष, भेषज, देश, काल, बल, शरीर, आहार, सार, सात्म्य, सत्त्व, प्रकृति, वय इनका मान-ज्ञान कहा गया है। विना इनका ज्ञान किये वैद्य रोग को रोकने में समर्थ नहीं होता। इसलिये विमान स्थान को कहा है।

४–**शारीर स्थान**–इसमें आठ अध्याय हैं। इसमें शरीर रचना दृष्टि से तथा शरीर निर्माण सम्बन्धि दृष्टि से दार्शनिक विवेचन किया है। वास्तव में इस स्थान में मोक्ष के उपाय, जन्म-मरण के कारणों का, तथा जातीसूत्रीय-उत्तम संतति, कौमार भृत्य, प्रसूति तंत्र इन सब विषयों का समावेश किया गया है।

५–**इन्द्रिय स्थान**–इन्द्रिय या इन्द्र का स्थान आत्मा है, इसके अन्तर्गत लिंग-रिष्ट रूप का वर्णन इन्द्रिय स्थान में है [इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रिय सृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा; पा. अ. ५।२।६३]। इसमें बारह अध्याय हैं। वैद्य को रिष्ट लक्षणों को जानना जरूरी है, क्योंकि असाध्य रोगी की चिकित्सा करने में अर्थ, विद्या, यश की हानि होती है; निन्दा होती है, [सू. अ. १०।८]। इसलिये रिष्ट लक्षणों की जानकारी आवश्यक होने से यह स्थान वर्णित है।

६–**चिकित्सा स्थान**–इसमें तीस अध्याय हैं। प्रथम अध्याय रसायन से सम्बन्धित है और दूसरा अध्याय वाजीकरण से। शेष अध्याय चिकित्सा से सम्बन्ध रखते हैं। इसमें तेरह अध्यायों का चरक द्वारा प्रति संस्कार किया गया है, शेष को दृढ़बल ने पूरा किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७-**कल्पस्थान**-इसमें बारह अध्याय हैं, कल्प का अर्थ कल्पना है, वमन-विरेचन की कल्पनायें इसमें वर्णित हैं।

८-**सिद्धि स्थान**-इसमें बारह अध्याय हैं, इसमें वमनादि के असम्यग् योग से उत्पन्न व्यापदों की तथा औषध की साध्यता रूप में सिद्धि स्थान कहा है।

इस प्रकार आठ स्थानों में एक सौ बीस अध्यायों में और १२ हज़ार श्लोकों में यह संहिता सम्पूर्ण हुई हैं। इसीसे कहा कि जिसके हृदय में बारह हज़ार की यह संहिता रहती है, वह अर्थ को जाननेवाला, वह विचार को समझने वाला, और वह चिकित्सा में कुशल है [सि. अ. १२।७६]। मनुष्य की आयु भी एकसौ बीस वर्ष पांच दिन की है (समाः षष्ठी द्विघ्ना मनुजकरीणानां पञ्च च निशाः); इसी से आयुर्वेद की संहिताओं में अध्यायों की संख्या एकसौ बीस रक्खी है [आयुर्वेद का इतिहास. हि. सा. स. प्रयाग]।

संहिता का उद्देश्य

निरोगी-दीर्घायु व्यक्ति द्वारा चतुर्विध पुरुषार्थ-धर्म-अर्थ कर्म और मोक्ष किया जा सकता है। इस धर्म-अर्थ-कर्म और मोक्ष में विघ्न रूप रोग-जब बाधक हो गये तब मनुष्यों पर दया करके ऋषि लोग इन रोगों से बचने का उपाय ढूंढ़ने के लिए हिमालय की तलैटी में एकत्रित हुए। वहाँ पर उन्होंने अपनी ज्ञान चक्षुओं से अमराधिपति इन्द्र को देखा। उन्होंने उसी की शरण में जाना ठीक समझा-वही इस समस्या का सच्चा उपाय बतायेगा।

यह सोचकर उन्होंने भरद्वाज मुनि को इन्द्र के पास भेजा, भरद्वाज मुनि इन्द्र के पास से रोगों की शान्ति का जो उपाय सीखकर आये वही यह आयुर्वेद है। शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इन चार के संयोग का नाम आयु है; जिससे आयु का ज्ञान होता है, वह आयुर्वेद है[1]।

---

१ सुश्रुत में आयुर्वेद के उपदेश का कारण प्रजा का हित करना ही है, यथा—"भगवन्! शरीर मानसागन्तुभिर्व्याधिभिर्विविध वेदनाभिघातोपद्रुतान् सनाथनप्यनाथवद् विचेष्टमानान् विक्रोशतश्च मानवानभिसमीक्ष्य मनसि नः पीड़ा भवति। तेषां सुखैषिणां रोगापशमनार्थमनात्मनश्च प्राणयात्रार्थं प्रजाहित हेतो-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार रसायन प्रकरण में भी [चि. अ. १।४] ऋषि लोग इन्द्र के पास अपनी शरीर सम्बन्धि समस्या को सुलझाने गये थे। यायावर और शालीन ऋषि ग्राम्य औषध और आहार के कारण आलसी तथा मन्द चेष्टा वाले और बहुत स्वस्थ नहीं हुए। वे अपनी करणीय कार्यों को भी करने में असमर्थ हो गये। ऐसी अवस्था में वे हिमालय में इन्द्र के पास गये, और इन्द्र से इस समस्या को सुलझाकर आये। इसको बताते हुए इन्द्र ने उपदेश किया कि इस उपाय से अपना भी कल्याण करो और प्रजा–जनता के अनुग्रह के लिये इसको प्रकाशित करो।

आयुर्वेद का उद्देश्य ही मनुष्यों की भलाई करना है। रोग से पीड़ित जन कल्याण के लिये आयुर्वेद का इस लोक में अवतरण हुआ है [सू. अ. १।४३, चि. अ. १।४।४]। क्योंकि रोग मनुष्य का श्रेय और आरोग्य-स्वास्थ दोनों का नाश करते हैं। इसलिये इन रोगों की शान्ति का उपाय जानना चाहिये।

यह उपाय दो प्रकार है—स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी के विकार की शान्ति करना [सू. अ. ३०।२६]। विकार का अर्थ ही दुःख है।

यह आयुर्वेद अनादि है, क्योंकि मनुष्य की आयु एवं बुद्धि की परम्परा बराबर बनी रहती है, वस्तुओं के गुण धर्म भी सदा शाश्वत हैं। इसलिये आयुर्वेद भी अनादि है, केवल इसका ज्ञान और उपदेश होने से इसकी उत्पत्ति कही जाती है। यह आयुर्वेद ज्ञान अनन्त-असीमित है। इस आयुर्वेद ज्ञान का सम्बन्ध चारों वेदों में मुख्यतः अथर्ववेद के साथ है। इस आयुर्वेद को पढ़ने का चारों वर्णों को अधिकार है, चारों वर्णों को इसका अध्ययन करना चाहिये, प्राणियों पर कृपा करने के लिये ब्राह्मणों को, अपनी रक्षा के लिये क्षत्रियों को, वृत्ति के लिये वैश्यों को, अथवा धर्म, अर्थ और काम के लिए सबको पढ़ना चाहिए क्योंकि ये सब पुरुषार्थ प्रत्येक मनुष्य से सम्बन्धित हैं। [1]इस दृष्टि से इस ज्ञान

रायुर्वेदं श्रोतुमिच्छामः इहोपविश्यमानम्। अत्रायत्तमैहिकमामुष्मिकं च श्रेयः, तद् भगवन्तमुपपन्नाःस्म शिष्यत्वेन। [सु. सूत्र अ. १।४]।

१ सुश्रुत में शूद्र को भी आयुर्वेद पढ़ाने का विधान है—वहाँ पर मंत्र के भाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जानना सबसे अधिक पुण्यकारी है, यह आयुर्वेद–आयु का ज्ञान [आयुषः ज्ञानम्] इह लोक और परलोक दोनों में लाभकारी और हितकारी है । इसीसे आयुर्वेद का लक्षण—

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्यहिताहितम् ।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ चरक सू अ. १।४१.

हितकारी, अहितकारी, सुखकारी, दुःखकारी–चार प्रकार की आयु है । इस आयु के लिये पथ्य-अपथ्य का ज्ञान; आयु का प्रमाण जिसमें कहा जाये उसे आयुर्वेद कहते हैं । आयुर्वेद का ज्ञान हेतु लिंग और औषध इन तीन सूत्रों में सीमित है । यह आयुर्वेद ज्ञान स्वस्थ और रोगी दोनों के लिये हितकारी है ।

इस आयुर्वेद की परम्परा का प्रारम्भ ब्रह्मा से है, ब्रह्मा से प्रजापति ने सीखा, प्रजापति से अश्विनौ ने सीखा, अश्विनौ से इन्द्र ने सीखा । इन्द्र से भरद्वाज मुनि ने सीखा । इन्द्र से ही धन्वन्तरी ने आयुर्वेद को सीखा; इन्द्र से ही काश्यप ने सीखा । इस प्रकार से आयुर्वेद की परम्परा इन्द्र से ही भिन्न-भिन्न शाखाओं में विभक्त होती है । इन्द्र से जिसने जो अंग सीखना चाहा, इन्द्र ने वह अंग उसे सिखाया; भरद्वाज को काय चिकित्सा; धन्वन्तरी को शल्यशास्त्र, काश्यप को कौमारभृत्य सिखाया । क्योंकि आयुर्वेद के आठ अंग हैं; यथा-कायचिकित्सा, शल्यतंत्र, शालाक्यतंत्र; कौमारभृत्य; भूतविद्या, विष-गरवैरोधिक-प्रशमन, रसायन और वाजिकरण ।

वर्त्तमान चरक संहिता में शल्य, शालाक्य विषय बहुत संक्षेप में आये हैं, जैसा कि दृढ़बल ने स्वयं कहा है कि 'शालाक्य तंत्र में जिन रोगों का विस्तार से वर्णन-चिकित्सा कही है, उनको वहीं पर देखना ठीक है; क्योंकि दूसरे के अधिकार में विस्तार से कहना उचित नहीं; इसलिये इसमें हमारा प्रयास नहीं है' [चि. अ. २६।१३१] । इसलिये उपलब्ध चरक संहिता में शल्य, शालाक्य

को छोड़कर शूद्र को आयुर्वेद पढ़ाने का मत कुछ आचार्यों का बताया है। काश्यप संहिता में चारों वर्णों को आयुर्वेद सीखने का उल्लेख है। चरक में अन्त में कहा है कि "सामान्यतोवा धर्मार्थकामपरिग्रहार्थं सर्वैः॥" चरक-सूत्र-अ. ३०।२९ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्षेप में है, मुख्यतः कायचिकित्सा का ही वर्णन है; कौमारभृत्य, रसायन, वाजीकरण, अगंद तंत्र और भूत विद्या भी सामान्य रूप में वर्णित है। एक शास्त्र में सब शास्त्रों का समावेश करना भी कठिन होता है, इसलिये चरक संहिता कायचिकित्सा प्रधान है। शारीरिक रोग ही मुख्यतः धर्म-अर्थ, काम-मोक्ष में बाधक हुए थे, इनके कारण दुःखी प्रजाजनों को देखकर ऋषियों के मन में करुणा उत्पन्न हुई थी और आत्रेय ऋषि ने अपने छः शिष्यों को आयुर्वेद का उपदेश किया था। इसी उपदेश को शिष्यों ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार तंत्र का रूप दिया और ऋषियों समेत बैठे आत्रेय ऋषि को सुनाया। उसी में अग्निवेश की बनाई यह संहिता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२

चरकसंहिता कालीन भूगोल

चरक संहिता के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि भगवान पुनर्वसु आत्रेय एक स्थान पर आश्रम या घर बनाकर नहीं रहे, अपितु भगवान बुद्ध की भाँति बराबर घूमते रहे। ये स्थान मुख्यतः दो हैं; एक हिमालय का उत्तर प्रदेश, दूसरा काम्पिल्य नगर।

हिमालय प्रदेश के लिये कई नाम आये हैं; यथा–पंचगंगा, कैलाश, धनेशायतन, चित्ररथ, आदि। ये सब स्थान आधुनिक भूगोल शास्त्र की दृष्टि से हिमालय के ही प्रदेश हैं।

हिमालय प्रदेश के तीन भाग हैं; यथा–उपगिरि, बहिर्गिरि और अन्तर्गिरि। वास्तव में 'हिमालय' शब्द का प्रयोग संसार में सबसे ऊँचे पहाड़ों की शृंखला के लिये किया जाता है। इस शृङ्खला को क्रम से बाहरी शृङ्खला; भीतरी शृंखला और गर्भ शृंखला अथवा उपत्यका, छोटा हिमालय और बड़ा हिमालय कहते हैं। हमारे पूर्वज इस भेद को पहिचानते थे, इसीसे उन्होंने इनको उपगिरि, बहिर्गिरि और अन्तर्गिरि नाम दिए हैं [महाभारत सभापर्व २७।३]। [1]अन्तर्गिरी को नैपाली साहित्य में **महाहिमवन्त** कहा है—क्योंकि सदा हिम जमी रहती है। उपगिरि को पाली साहित्य में **चुल्लगिरि** कहा है।

इनमें उपगिरि जिसे आमतौर पर तराई, भाभर का प्रदेश कहते हैं, वह समुद्र तट से १००० से १२०० फीट तक की ऊँचाई का है, इसका उत्तम उदाहरण हरिद्वार से देहरादून तक प्रदेश है। देहरादून में इस प्रदेश को दून कहते हैं; वास्तव में दून शब्द संस्कृत शब्द द्रोणी का ही एक रूप है, जिसका अर्थ घाटी है। इसके बाद भीतरी शृङ्खला आरम्भ होती है, यहां पर से पहाड़ एकाएक उठ खड़े होते हैं। इन तक पहुंचने के लिये ४००० फीट की ऊंचाई

१ यह अंश मुख्यतः श्री जयचन्द्र विद्यालंकार द्वारा लिखित 'भारत भूमि और इसके निवासी' पुस्तक से लिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चढ़नी पड़ती है। भीतरी शृङ्खला और गर्भ शृङ्खला के बीच में जो घाटी बनती हैं, उसमें हजारा; काश्मीर, मसूरी, कांगड़ा, शिमला, चकरोता; गढ़वाल, कुमाऊं, नेपाल, सिक्कम आदि बसे हैं। इस भीतरी शृङ्खला-वहिर्गिरी की ऊंचाई ४५०० ४५००० से लेकर ८ या ९ हजार फीट तक होती है। इसके आगे सहसा एका-एक गर्भ शृङ्खला या अन्तर्गिरी का भाग आ जाता है। इस पर सदा हिमरेखा जमी रहती है। इस शृङ्खला में नंगा पर्वत, केदारनाथ, नन्दा देवी, धवलगिरी; गौरीशंकर, कांचनजंघा आदि पहाड़ हैं। यह शृङ्खला बीच बीच में टूटी होती है; जिनमें से कई नदियों की घाटियों ने अपने रास्ते बनाये हुए हैं। भारतवर्ष की मुख्य नदियों में से केवल चिनाब, जमना और वितस्ता हिमालय की गर्भ शृंखला में से निकली हैं, सतलुज, गंगा, घाघरा, गंडक, कोसी सब ऊपर से उस शृङ्खला को बीचों बीच काटकर उतरती हैं। गर्भ शृंखला के पहाड़ों पर बस्तीयाँ नहीं हैं। परन्तु इन नदियों ने उस शृङ्खला के आर पार जो घाटियां बनाई हैं– वे सब दूर तक आबाद हैं। इनकी ऊंचाई ९-१० हज़ार से १२-१३ हजार तक है। सिन्ध-कोहिस्तान, मीलम, दार्मा, हुमला, मूंगभोट, और मुक्तिनाथ की घाटी इन वस्तियों के नमूने हैं।

हिमालय की पीठ पीछे उसके नजदीक कई और पर्वत शृङ्खलाय हैं। नदियों की स्थिति से हम उनकी ठीक स्थिति जान सकते हैं। सिन्ध नदी जहां अन्तिमवार दक्खिन की ओर फिरी है, वहां उसके मोड़ के अन्दर से हिमालय की गर्भ शृङ्खला शुरू होती है। चिनाब नदी को पहाड़ में **चन्द्रभागा** कहते हैं। यह **भागा** और **चन्द्रा** दो धाराओं से बनी है [आत्रेय के लिये चान्द्रभागि शब्द भी आया है]। हिमालय की गर्भ शृङ्खला चन्द्रा के पूरब छोर के साथ लगभग सीधे दक्खिन फिर गई है। जहां पर इसके एक तरफ़ पहिले चन्द्रा ओर फिर व्यास की शाखा परवती का पानी है; दूसरी तरफ़ स्पिती नदी है, जो दक्खिन पूरब बहकर सतलुज में मिली है। सतलज के बायें से जमनोत्री के उपर बन्दर पूंछ चोटी तक दक्खिन पूरब जाकर फिर वह शृङ्खला अधिक पूरब फिर गई है। केदारनाथ, बदरीनाथ; नन्दादेवी; धौलगिरी; गौरीशंकर, कांचनजंघा और चुमलारी चोटियां उसकी अगली दिशा को सूचित करती हैं। गंगा, घाघरा, गण्डक, कोसी सब इस शृंखला को बीच में काटकर उतरी हैं।

Gurukula Kangri Library

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय की एक बड़ी श्रृंखला **लदाख श्रृंखला** है–यह श्रृङ्खला हिमालय की बड़ी श्रृंखला के जो कि सिन्ध नदी के अन्तिम दक्खिन मोड़ के अन्दर अर्थात् बायें तरफ से शुरू हुई थी–इसके बगल से सिन्ध और गिल्गित दोनों नदियों के बीच तथा दोनों के दहिने से उठी है। गिल्गित संगम के नीचे सिन्ध को पार कर उसके बायें होती हुई द्रास के संगम पर वह फिर सिन्ध के दाहिने निकल आई है और शिओक-सिन्ध का पानी बांटते हुए लेह के उत्तर से सिन्ध घाटी के दाहिने छोर के साथ सटी हुई दक्खिन पूरब चली गई है। लेह के चारों ओर के प्रदेश को लदाख कहा जाता है। इसलिये इस श्रृंखला को भी आज कल लदाख श्रृङ्खला कहते हैं।

हिमालय की गर्भ श्रृङ्खला और लदाख श्रृंखला के बीचों बीच जंस्कर नदी से कर्णालीन नदी [घाघरा की उपरली धारा] तक चोटियों की एक और परम्परा भी हिमालय की पीठ पीछे चली गई है, इसे **जंस्कर** [जङ्स्कर] श्रृंखला कहते हैं। गुरला मान्धाता के ठीक दक्खिन कर्णाली के दाहिने हिमालय की पीठ से फटकर काली की तीन धाराओं के–काली, धौली गंगा और गौरी गंगा–के स्रोतों को कर्णाली और सतलज के स्रोतों से तथा अलखनन्दा की दो मूल धाराओं–धौली गंगा और विष्णु गंगा और भागीरथी की उपरली धारा, जाह्नवी के पानी को सतलुज के पानी से बांटती हुई शिपकी दर्रे पर वह सतलुज घाटी के उपर जा पहुंची है। विष्णु गंगा के पूरब सुप्रसिद्ध कामेत पहाड़ इसी में है।

कैलाश श्रृंखला या कैलास—लदाख श्रृंखला के भी उत्तर बराबर कैलाश श्रृंखला है। जिसका नाम सुप्रसिद्ध कैलाश पर्वत के नाम पर पड़ा है। गिल्गित नदी की उत्तर पूरवी धारा हुंजा है, जिसकी एक धारा पर इसी नाम की बस्ति है। उस धारा के मोड़ के भीतर से अर्थात् उसके बायें तरफ, कैलाश श्रृंखला पहिले पहल उठी है। सिन्ध और शिओक नदियों के दाहिने जाते हुए नुबरा नदी के जो शिओक के दक्खिनी प्रवाह के समानान्तर उसके पच्छिम बहकर उससे मिली है; दाहिने (पच्छिम तरफ़) पहुंचकर वह ढल गई है। नुबरा और शिओक दोनों के स्रोत कारकोरम में हैं और दोनों कैलाश श्रृंखला को काटकर आई हैं। शिओक के बड़े मोड़ के दक्खिन पूरब फिर उठकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्वत-शृंखलायें

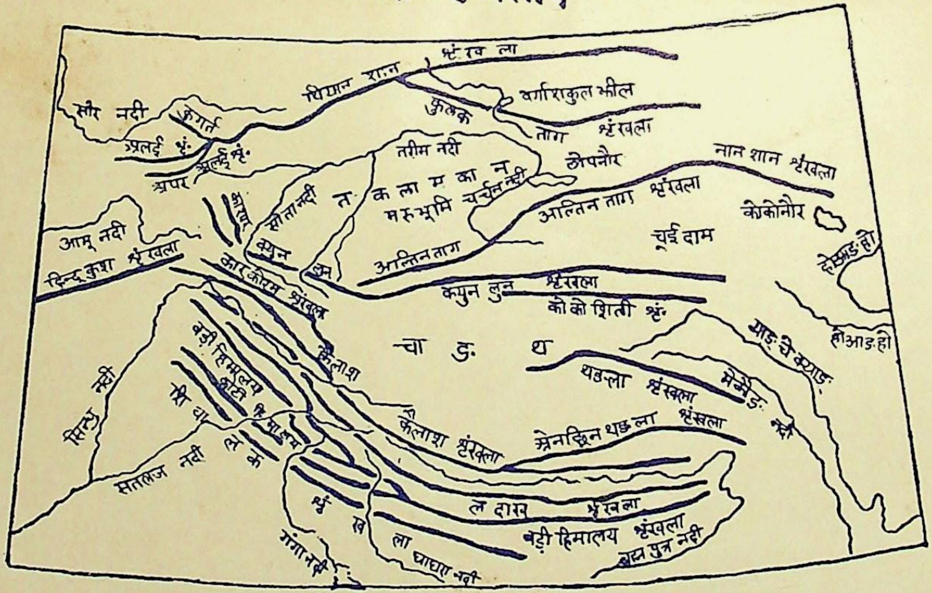

अपगतग्राम्यदोषं शिवं पुण्यमुदारं मेध्यमगम्यमसुकृतिभिः
गंगाप्रभवममरगन्धर्व किन्नरानुचरितमनेकरत्ननिचयमचि
न्त्याद्भुतप्रभावं ब्रह्मर्षिसिद्धचरणानुचरितं दिव्यतीर्थौषधि
प्रभवमति शरण्यं हिमवन्तममराधिपतिगुप्तं जग्मुः ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंगोङ् झील के पच्छिम और दक्खिन घूमने और कुछ दूर सीधे पूरब जाने के बाद एक दम दक्खिन झुककर वह सिन्ध की घाटी पर आती है। वहां उस घाटी के बायें लदाख और दाहिने कैलाश श्रृंखला है। सिन्ध-गारतंग संगम के बाद कैलाश श्रृङ्खला सिन्ध के बायें और गारतंग के दाहिने निकल आई है। वहां भी उसके बराबर गारतंक के बायें लदाख श्रृङ्खला है। गारतंग के उद्गम के दक्खिन पूरब कैलाश पर्वत है। वहां से पूरब तरफ़ ब्रह्मपुत्र घाटी के बायें बायें काठमांडू के ठीक उत्तर से तीस मील पच्छिम तक आकर वह श्रृङ्खला समाप्त हुई है। किन्तु तीस म ल का व्यवधान देने के बाद ञेन-छिन थङ्ला (लम्बकर्ण पठार का घाटा) नाम की एक दूसरी श्रृङ्खला शुरू होकर उत्तर पूरब रूख किये ल्हासा के उत्तर से ब्रह्मपुत्र घाटी के उत्तर बराबर चली आई है; इसे कैलाश श्रृङ्खला का पूरबी बढ़ाव कहना चाहिए।

कैलाश श्रृंखला के भी उत्तर किन्तु केवल उसके पच्छिमी अंश के बराबर कारकोरम श्रृङ्खला है; जिसमें संसार के सबसे भारी गल (ग्लेशियर–कुमाऊँनी शब्द) है।

साधारण रूप से जब हिमालय को भारत की उत्तरी सीमा कहते हैं तब गर्भ श्रृङ्खला के पीठ पीछे की श्रृङ्खलाओं के कम से कम कुछ अंशों को भी हिमालय में गिन लिया जाता है। हिमालय की प्राचीन परिभाषा ठीक ठीक क्या थी सो हम अभी तक नहीं कह सकते। कालिदास ने सतलुज के पच्छिम अंश में कारकोरम से हिमालय की गर्भ श्रृङ्खला तक सभी पर्वतों को हिमालय में गिना है। किन्तु दूसरी तरफ कैलास पर्वत हिमालय से अलग गिना जाता था। [1]इससे यह भी निश्चित है कि आधुनिक परिभाषा की लद्दाख और

१ रावण ने कैलाश पर्वत को उठाया था, हिमालय को नहीं।

ततो गौरी गुरुं शैलमारुरोहाश्वसाधनः।
वर्धयन्निव तत्कूटानुद्धृतैर्धातुरेणुभिः॥ रघुवंश ४।७१

रघु ने हिमालय का प्रदेश तो जीता है, परन्तु कैलाश को नहीं छुआ था–यथा–

परस्परेणविज्ञातस्तेषूपायनपाणिषु।
राज्ञा हिमवतः सारो राज्ञः सारो हिमाद्रिणा॥
तत्राक्षोभ्य यशोराशिं निवेश्यावरुरोह सः।
पौलस्त्य तुलितस्याद्रेरादधान इव ह्रियम्॥ रघुवंश ४।७९-८०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कैलास श्रृंखलायें समूची हिमालय में सम्मिलित हैं। हमारे पुरखा भारतवर्ष की उत्तरी सीमा गंगा के उद्भव को मानते थे। वायु पुराण में कहा गया है कि उत्तर में गंगा का उद्गम भारतवर्ष की उत्तरी सीमा है (वायुपुराण १।४५।८१)। हिमालय में गंगा की चार उपरली धाराये हैं। जिनके नाम अलकनन्दा, भागीरथी, मन्दाकिनी और जान्ह्वी हैं। लोक में ये चारों पर्याय समझे जाते हैं; किन्तु हिमालय के प्रस्रवण क्षेत्र में ये चारों धारायें अलग अलग हैं। देवप्रयाग में इन सबके मिलकर एक हो जाने के बाद गंगा नाम पड़ता है। इनमें मुख्य नाड़ी अलखनन्दा है, जो बदरीनाथ के पास अलका पुरी की बाँक से निकलती है; उसी अलकनन्दा में देवप्रयाग के संगम पर भागीरथी मिलती हैं, जो गंगोतरी की ओर से आई है और रुद्रप्रयाग के संगम पर केदारनाथ से आई हुई मन्दाकिनी मिली है। गंगा की सबसे उपरली धारा जान्ह्वी हैं; जो गंगोतरी से कुछ ही मील नीचे भागीरथी में मिलती है। पर वह हिमालय के उस पार जंस्कर पर्वत श्रृंखला से निकली है, जो सतलुज और गंगा के बीच का जल विभाजक है। जान्ह्वी का उद्गम टिहरी रियासत का सबसे उपरी छोर है। अक्षांश के हिसाब से जान्ह्वी सबसे उपरी धारा है; जिसका जल गंगा में मिला है। इसलिए जहाँ तक गंगा है, वहीं तक उत्तर में भारतवर्ष हैं, यह परिभाषा पुराने समय से बन गई थी।[१]

प्रयाग—का अर्थ तीर्थ है; गंगा के संगम को प्रयाग कहते हैं, गंगा और जमुना के संगम को प्रयागराज कहते हैं। हिमालय में गंगा की उपरली धाराओं के मिलने से बने हुये अनेक प्रयाग इसके उदाहरण हैं; यथाः—(क) विष्णु प्रयाग-बदरीनाथ की ओर से अवतीर्ण विष्णु गंगा—जिसे सरस्वती भी कहते हैं; और द्रोणगिरी के पश्चिम से आई धौली गंगा का जोशी मठ में संगम है। (ख) नन्द प्रयाग—विष्णु प्रयाग से बहकर आई हुई अलखनन्दा और मन्दाकना पर्वत से बहकर आई हुई मन्दाकिनी का संगम। (ग) कर्ण प्रयाग-नन्दाकोट और त्रिशूल के शिखरों के जलों के लाने वाली पिण्डर गंगा और अलखनन्दा का संगम। (घ) रुद्रप्रयाग—केदारनाथ की ओर से आनेवाली

१ भारत की मौलिक एकता—लेखक डा. वासुदेव शरणजी अग्रवाल—पृष्ठ २१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्दाकिनी और अलकनन्दा का संगम। (ङ) देवप्रयाग—गंगोत्री से आनेवाली भागीरथी का अलखनन्दा के साथ संगम। अलखनन्दा की चौड़ी धारा धीर और शान्त है; किन्तु भागीरथी बड़े गर्जन-तर्जन के साथ उछलती हुई अपनी धारा से उसमें मिलती है। देव प्रयाग के नीचे नदी की धारा का नाम **गंगा** पड़ जाता है। यही कनखल के पास पहिली बार मैदान में उतरती है; इसे ही गंगा द्वार कहते हैं।[२] अलखनन्दा की दो धारायें हैं, जिनको विष्णु गंगा और धौली गंगा कहते हैं। ये दोनों धारायें जोशीमठ में आकर एक हो जाती हैं। बदरीनाथ के यात्री सब प्रयागों का दर्शन करके जोशी मठ आते हैं [बदरीनाथ ही पुराना गन्धमादन है, इसे आज भी गन्धमादन कहते हैं]।

इससे स्पष्ट है कि गंगा की मुख्य धारा अलखनन्दा और गौण धारा भागीरथी के सभी मुख्य स्रोत आधुनिक परिभाषा के अनुसार जंङ्स्कर श्रृंखला में हैं। प्राचीन परिभाषा में वह श्रृङ्खला तो निश्चय से हिमालय का ही अंश प्रतीत होती है। इस प्रकार से जङ्स्कर श्रृंखला को हिमालय की गर्भ श्रृंखला की केवल आवृत्ति मानते हुए हम हिमालय को ही भारतवर्ष की ठीक उत्तरी सीमा कह सकते हैं—इसी से कालीदास ने कहा कि—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥ १।१।

हिमालय का महत्त्व

चरक संहिता में विमान स्थान के तृतीय अध्याय में वर्णित काम्पिल्य राजधानी को छोड़ दें तो आत्रेय का सारा समय हिमालय में ही घूमते व्यतीत होता है। यहीं पर कैलाश और पंचगंगा है। यह स्थान महत्त्व का है; महत्त्व का इसलिए कि यह तपोभूमि है; सब ऋषियों ने यहीं पर तप किया।[३] चरक संहिता में वर्णित ऋषि लोग भी प्राणियों के दुखों से दुःखी

---

१ वही पृष्ठ—८९. (२) गंगाद्वारे महातेजा देवगन्धर्वसेविते॥ महा.वन.१०९.
३ एष पार्थो महातेजा हिमवत्पृष्टमाश्रितः।
उग्रेतपसि दुष्पारे स्थितो धूमाययन् दिशः॥ महाभारत वनपर्व ४०।२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर हिमालय की तलैटी पर एकत्रित हुए थे (सू० अ० १।७)। इसके सिवाय शालीन और यायवर ऋषि जब ग्राम्य औषध और आहार के कारण मन्दचेष्टा-वाले, कुछ रोगी हो गये तब वे हिमालय के पास पहुंचे [चि० १।४।३]।

हिमालय का वर्णन—जिस स्थान में ग्राम्य (शहर में रहने के) दोष नहीं, कल्याणकारक, पवित्र, उदार (शत्रु और मित्र के लिए समान) मेध्य, अच्छे कार्य न करने वालों से अगम्य, गंगा के उत्पत्ति स्थान, देवता-गन्धर्व-किन्नरों से सेवित, अनेक रत्नों की खान, अचिन्त्य होने से अद्भुत प्रभाव वाला, ब्रह्मर्षि-सिद्ध और चारणों से सेवित, दिव्य औषधि, दिव्यतीर्थों का उत्पत्ति स्थान अतिशय रूप में शरण जाने योग्य [पाण्डु, धृतराष्ट्र तथा युधिष्ठिर आदि पांचों पाण्डव अन्तिम अवस्था में इसी की ही शरण में गये थे, जिसने भी तप करना चाहा अपने दुःख की शान्ति या उपाय ढूँढ़ना होता था वे सब हिमालय के पास गये] देवताओं के अधिपति इन्द्र से रक्षित हिमालय के पास पहुंचे [चि० चि० अ १।४।३]।

चरक का यह वर्णन कालिदास एवं नावनीतक के वर्णन से बहुत मिलता है, यथा—

भास्वन्ति रत्नानि महौषधींश्च-कु० १।२
अनन्तरत्न प्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्यविलोपिजातम् कु० १।३,
आमेखलं संचिरतां घनानां छायामधः सानुगतानिषेव्य।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते शृंङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः॥

वैदिक साहित्य में मेधा बुद्धि का विशेष महत्त्व है, प्रतिदिन की संध्या में दोनों समय बुद्धि की पवित्रता के लिए प्रार्थना की जाती है; बुद्धि के ऊपर चारों ओर की परिस्थिति का प्रभाव होता है, इसीलिये ऋग्वेद और यजुर्वेद में कहा गया है कि पर्वतों की गुफाओं और नदियों में संगम पर बुद्धिमान ब्राह्मण-विद्वान् होते हैं—

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनां-ऋक्० ८।६।२८
धिया विप्रो अजायत .... यजु० २६।१५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये अवस्थायें मनुष्य की बुद्धि को मन को प्रबुद्ध करती हैं।[1] इस सत्य का अनुभव सभ्यता के उषः काल ऋग्वेद के युग में ही कर लिया गया था; इसी-लिये सब तीर्थों की कल्पना ऐसे स्थान पर की है (इसीसे हिमालय को तीर्थ प्रभव कहा गया है)।

हिमालय प्रदेश ही देवताओं के रहने का स्थान है, इसीसे ब्रह्मचारीरूपी शिव पार्वती को कहता है—

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथाश्रमः पितुप्रदेशस्तवदेवभूमयः–कु० ५।४५
अस्त्युत्तरस्यां दिशिदेवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः कु० १।१
विद्यते हि गिरिश्रेष्ठे त्रिदशानां समागमः॥ महा.वन पर्व० ४०।३०

यहीं पर कैलाश और पंचगंगा प्रदेश हैं, जिनमें कि पुनर्वसु आत्रेय का घूमना होता था। चैत्ररथ वन जिसमें भगवान् अत्रिपुत्र अन्य ऋषियों के साथ रसायन विनिश्चय का निश्चय करते हैं, वह कुबेर का वन भी इसी स्थान में था। इस वन का वर्णन कालिदास और अश्वघोष ने भी किया है, जैसा आगे हम देखेंगे [देखिये पृष्ट २९]।

हिमालय प्रदेश को छोड़कर भगवान् आत्रेय का मैदान में आने का एक ही वर्णन चरकसंहिता में है; वह भी काम्पिल्य राजधानी में; जो कि आज कल फर्रुखाबाद के पास है। इसके सिवाय सारे समय उनका विचरण हिमालय प्रदेश में होता रहा है। हिमालय प्रदेश में विचरण के स्थान निम्न आए हैं—

कैलास

कैलास-हिमालय प्रदेश का ही भाग है, इसी का दूसरा नाम हेमकूट है यथा—

हेमकूटस्तु सुमहान् कैलासोनाम पर्वतः।
यत्र वैश्रवणो राजन् गुह्यकैः सह मोदते॥

---

१ महात्मा मुंशीराम जी (पीछे से स्वामी श्रद्धानन्द जी) ने गुरुकुल कांगड़ी की जो स्थापना गंगा पार हिमालय श्रृंखला–मेखला में की थी उसका बीज यही ऋषि वाक् थे, प्रायः वे इनको कहा करते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही कैलास पर्वत यक्षों के राजा कुबेर का रहने का स्थान है, सम्भवतः हिमालय के इस प्रदेश में अतिशय खनिज निकलते हों, रत्न हों, जिनका कि उपयोग अन्य कार्यों में होता है। आज भी कोयला और लोहे वाले प्रदेश समृद्ध-धन की खान माने जाते हैं, मिट्टी का तेल जिस स्थान में या प्रदेश मिल जाताहै या मिल गया है, वहां का राजा और देश बहुत जल्दी समद्ध हो जाता है, यथा अरब का। इसी प्रकार सम्भवतः हिमालय के कैलास प्रदेश में रत्न खनिज वस्तुवें प्रचुर मात्रा में रहने से इसको कुबेर से अधिष्ठित कहा हो[1]।

कालिदास ने कैलास की समृद्धि का वर्णन किया है, वर्त्तन्तु का शिष्य कौत्स्य गुरु दक्षिणा मांगने के लिए रघु के पास आये; परन्तु जब रघु को सर्वस्व दान करके मिट्टी के पात्र में अर्घ्य देते देखा तो निराश होकर वापिस जाने लगे। इस समय रघु ने उनको दो-तीन दिन और प्रतीक्षा करने के लिए कहा और स्वयं कैलास के अधिपति कुबेर से धन लाने का विचार किया। जब कुबेर को यह पता लगा तो कुबेर ने रातों रात रघु का कोष सोने से भर दिया-यथा—

प्रातः प्रयाणाभिमुखाय तस्मै स विस्मयाः कोष गृहे नियुक्ताः।
हिरण्यमयीं कोषगृहस्य मध्ये वृष्टिं शंशसु पतितां नभस्तः॥
तं भूपतिर्भासुर हेमराशिं लब्धं कुबेरादभियास्यमानात्।
दिदेश कौत्साय समस्तमेव पादं सुमेरोरिव वज्रभिन्नम्॥ रघु ५।२९-३०

इसीप्रकार कालिदास ने मेघदूत में भी वर्णन किया है कि यहां पर अखूट धन राशि थी [अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठैः, उत्तरमेघ ८]।

इस कैलाश में आत्रेय को बहुत बार घूमता पाते हैं, इस कैलाश की उपमा नन्दन वन से दी है; सिद्ध और विद्याधरों से भरा हुआ है [चि. १३।३]। यह कैलास प्रदेश किन्नरों से भरा हुआ है; बहुत सी औषधियां यहां उत्पन्न होती हैं; नाना प्रकार के वृक्षों के फूलों सदा भरा रहता है; चारों ओर सुगन्धित वायु

---

१ अरब का रेगिस्तान और कुवैत का राज्य आज इसी मिट्टी के तेल के कारण धनी हैं; भारतवर्ष में छोटा नागपुर का प्रदेश कोयला और लोहे के कारण समृद्ध हैं। इसी प्रकार प्राचीन काल में पारद-गन्धक, तथा दूसरे खनिज इसी हिमालय घाटी से मिलते थे-इसीसे यह प्रदेश समृद्ध था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहती है; [तुलना कीजिये नावनीतक के वर्णन से–"रम्येषु पुष्पफलद द्रुमसंकटेषु, रात्रौहुताशनवदौषधयो ज्वलन्ति।"–विस्तार के लिये लेखक की पुस्तक **'संस्कृत काव्यों में आयुर्वेद देखें]**। ऐसे स्थान पर भगवान आत्रेय को विहार करता हम पाते हैं [चि. २१।३-४]। इसी तरह इसके लिये घनेशायतन-विशेषण आया है (सि ३।३)। धनेशा कुवेर उसका रहने का स्थान कैलास ही है। कालीदास ने धनपति शब्द कुवेर के लिए बरता है (उत्तर मेघ–१४।१५)। कैलास की स्थिति को स्पष्ट करने के लिये चरक संहिता में इसे हिमालय के उत्तर पार्श्व में बताया है (ंच. अ. १६।३)। इस स्थान पर तथा किन्नरों से सेवित कैलास में ऋषि आत्रेय जब होम विधि से निवृत्त हो चुके तब अग्निवेश ने अपनी जिज्ञासा उनसे की। कैलास स्थान ही ऋषि-मुनियों से सेवित था, इसीलिये इन दोनों स्थानों में [चि. १६।३; चि. २१।५] हम भगवान आत्रेय को ऋषियों से घिरा पाते हैं।

चैत्ररथवन

चैत्ररथ का उल्लेख महाभारत; अश्वघोष और कालीदास के काव्यों में हैं। उद्योग पर्व में उत्तर दिशा का वर्णन करते हुए गालव चित्ररथ ने वन को उत्तर दिशा में बताया है। चित्ररथ वन कुवेर का वन था, इसका दूसरा नाम 'वैभ्राज्य' था।[१] भारतवर्ष में वनों का बहुत रिवाज़ था इसी से महाभारत में बड़े बड़े वनों का उल्लेख है, यथा–काम्यकवन, खाण्डववन, द्वैतवन। बुद्ध के समय जेतवन प्रसिद्ध था। रामायण में दण्डकारण्य का नाम आता है। भगवान बुद्ध का जन्म लुम्बनी वन में हुआ था और मृत्यु सालवन में हुई थी तथा धर्मचक्र सारंगवन में प्रवृत्त किया था।

चैत्ररथ वन को चित्ररथ गन्धर्व ने बनाया था। चित्ररथ गन्धर्व का वर्णन महाभारत में भी आता है। गीता में भी कृष्ण ने कहा है **'गन्धर्वाणां चित्ररथः"** चित्ररथ गन्धर्व का युद्ध दुर्योधन, कर्ण आदि के साथ घोषयात्रा के प्रसंग

---

१ "वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्या सहाया"–उत्तरमेघ; इसकी टीका में मल्लिनाथ ने लिखा है—विभ्राजेन गणेन्द्रेण त्रातं वैभ्राजमाख्यया–इति शम्भु-रहस्ये। चैत्ररथस्यनामान्तरमेतत्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में होता है, जब कि गन्धर्वों ने इन सब को बाँध लिया था, पीछे युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन ने जाकर इनको छुड़ाया था। महाभारत में यह उपाख्यान द्वैतवन के नाम से आया है। चित्ररथ इसी वन में अर्जुन को मिलता है।[1] परन्तु उद्योगपर्व में चैत्ररथ वन नाम से जिस बन का उल्लेख है; वह कुबेर का वन है, उसका वर्णन इस प्रकार से है—

अथ राक्षस यक्षाणां गन्धर्वाणां च गालव।
आधिपत्येन कैलासे धनदोऽप्यभिषेचितः॥
अत्र चैत्ररथं रम्यमत्र वैखानसाश्रमः।
अत्र मन्दाकिनी चैव मन्दरश्चद्विजर्षभ॥
अत्र सौगन्धिकवनं नैर्ऋतेरभिविद्दश्यते।
शाद्वलंकदलीस्कन्धमत्र संतानकानगाः॥
अत्र संयम नित्यानां सिद्धानां स्वैरचारिणाम्।
विमानान्यरूपाणि कामभोग्यानि गालव॥
अत्र ते ऋषयः सप्त देवीचारुन्धती तथा।
अत्र तिष्ठति वै स्वातिरत्रास्या उदयः स्मृता॥
अत्र गायन्तिकाद्वारं रक्षन्ति द्विजसत्तमाः।
धामा नाम महात्मानो मुनयः सत्यवादिनः॥
....
अत्र कैलासमित्युक्तं स्थानमैलविलस्य तत्॥

महा० उद्योग १०६।८।६१०

चरक संहिता में चैत्ररथ का उल्लेख भी—

आत्रेयो भद्रकाप्यश्च शाकुन्तेयस्तथैव च।
पूर्णाक्षश्चैव मौद्गौल्य हिरण्याक्षश्च कौशिकः॥
....

---

१ ततोऽर्जुनचित्रसेनं प्रहसन्निदमब्रवीत्।
मध्ये गन्धर्व सैन्यानां महेष्वासौ महाद्युतिः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एते श्रुतवयो वृद्धा जितात्मनो महर्षयः।
वने चैत्ररथे रम्ये समीयुर्विजिहीर्षवः॥
चरक सू० अ० २६।३।६

चैत्ररथ वन बहुत सुन्दर था—इसीसे कालिदास और अश्वघोष को भी कहना पड़ा इन दोनों के सिवाय दूसरे किसी कवि ने चैत्ररथ का उल्लेख नहीं किया [देखिये–लेखक की पुस्तक 'संस्कृत काव्यों में आयुर्वेद']।

संभाव्य भर्त्तारममुयुवानं मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये।
वृन्दावने चैत्ररथादनूने निर्विश्यतां सुन्दरि यौवनश्रीः॥ रघु० ६।४०
हा चैत्ररथ हा वापि हा मन्दाकिनि हा प्रिये।
इत्यार्त्ता विलपन्तोऽपि गां पतन्ति दिवौकसः॥ सौ. न. ११।५०

इसी से स्पष्ट है कि चैत्ररथ वन बहुत सुन्दर वन था, जो कि उत्तर दिशा में था, कुबेर का उपवन था, कुबेर का स्थान कैलास मान लिया जाये तो वहीं यह उपवन था।

इसी प्रकार रघुवंश के पांचवे सर्ग में अज और प्रियम्वद की जब मित्रता हो गई, तब प्रियम्वद तो कुबेर के चित्ररथ नामक वन की ओर चला गया और अज भी विदर्भदेश की ओर चल पड़े "एकौ ययौ चैत्ररथ प्रदेशान्सौराज्यरम्यानपरोविदेहान्॥" रघु० ५।६०। दैवीभागवत में भी चैत्ररथ का उल्लेख (७।३।८०) आया है।

इसी वन में ऋषियों के साथ बैठकर आत्रेय ने रस-आहार का विनिश्चय किया था। यह वन उस समय सुन्दर तथा ऋषियों से सेवित रहता होगा। यूँ तो हमारे यहाँ कैलास पर्वत या कैलास प्रदेश हिमालय का ही भाग माना जाता है, हिमालय-कैलास पर देवता लोग रहते थे।[२] जिस प्रकार लोग तपस्या के लिए हिमालय पर जाते थे, उसी प्रकार कैलास पर भी जाते थे। सामान्यतः हिमालय प्रदेश वर्फ से सदा आच्छादित रहता है, इसलिये कैलास पर्वत या कैलास का प्रदेश मनुष्यों के रहने का स्थान था, वहीं पर वनस्पतियाँ वृक्ष आदि उत्पन्न होते थे।

---

२ कोऽयं देवोमवेत्साक्षत् रुद्रोयंभक्षाः सुरेश्वरः।
विद्यते हि गिरिश्रेष्ठे त्रिदशानां समागमः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृति में वन विहार नागरिक जीवन का एक अंग था। वहां पर जाकर नागरिक गोष्ठी, क्रीड़ा सुख अनुभव करता था। आज कल धनी लोग जैसे अपनी बगीची या उद्यान बनाते हैं, उसी प्रकार गन्धर्व चित्ररथ ने कुबेर का जो आमोद वन कैलाश में बनाया था वह चैत्ररथ था। चित्ररथ गन्धर्व सब गन्धर्वों में श्रेष्ठ है ऐसा भगवान् कृष्ण ने कहा है [गीता. अ १०।२६],।

पंचगंगा

भगवान पुनर्वसु का भ्रमण कैलाश, चैत्ररथ के साथ पंचगंगा प्रदेश में भी आता है; यथा—

विहरन्तं जितात्मानं पंचगङ्गे पुनर्वसुम्।
प्रणम्योवाचनिर्मोहमग्निवेशोऽग्निवर्चसम्॥ चि. ४।३।

प्राचीन काल में हिमालय या कैलास से निकलने वाली जो नदियां नीचे उत्तर से पूर्व की ओर आती थी—उन सबको गंगा नाम दिया जाता था। बदरीनाथ की यात्रा में गंगा के पर्याय नामों की नदियां आज भी मिलती हैं। जैसे पाँच प्रयाग वहाँ है, वैसे ही पाँच गंगा हैं। प्रयाग का अर्थ तीर्थ है, ये पाँच प्रयाग—नन्दप्रयाग, विष्णुप्रयाग, रुद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग और देव प्रयाग हैं। पाँच गंगा—जान्हवी, मन्दाकिनी, भागीरथी, धौली गंगा और विष्णु गंगा हैं। धौली गंगा और विष्णु गंगा मिलकर अलखनन्दा बनती है।

पंचगगा का प्रदेश बदरीकाश्रम—बदरी का धाम है, इसको ही गन्धमादन आज भी कहते हैं और महाभारत में तीर्थयात्रा के वर्णन में इसी गन्धमादन पर्वत का वर्णन मिलता है, यथा—

कुंजीभूतं गिरिंसर्वमभितो गन्धमादनम्
दीप्यमानौषधिगणं सिद्धगन्धर्वसेवितम्॥
तत्रापश्यम वै सर्वं मधुपीतकमाक्षिकम्।
....
यत्प्राप्यपुरुषोमर्त्योऽमरत्वं नियच्छति॥
अचक्षुर्लभतेचक्षुः वृद्धोभवति वै युवा।
इति ते कथयन्तिस्मब्राह्मणः जम्भसाधकाः॥ महाभारत.

गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पंचगंगा या गन्धमादन

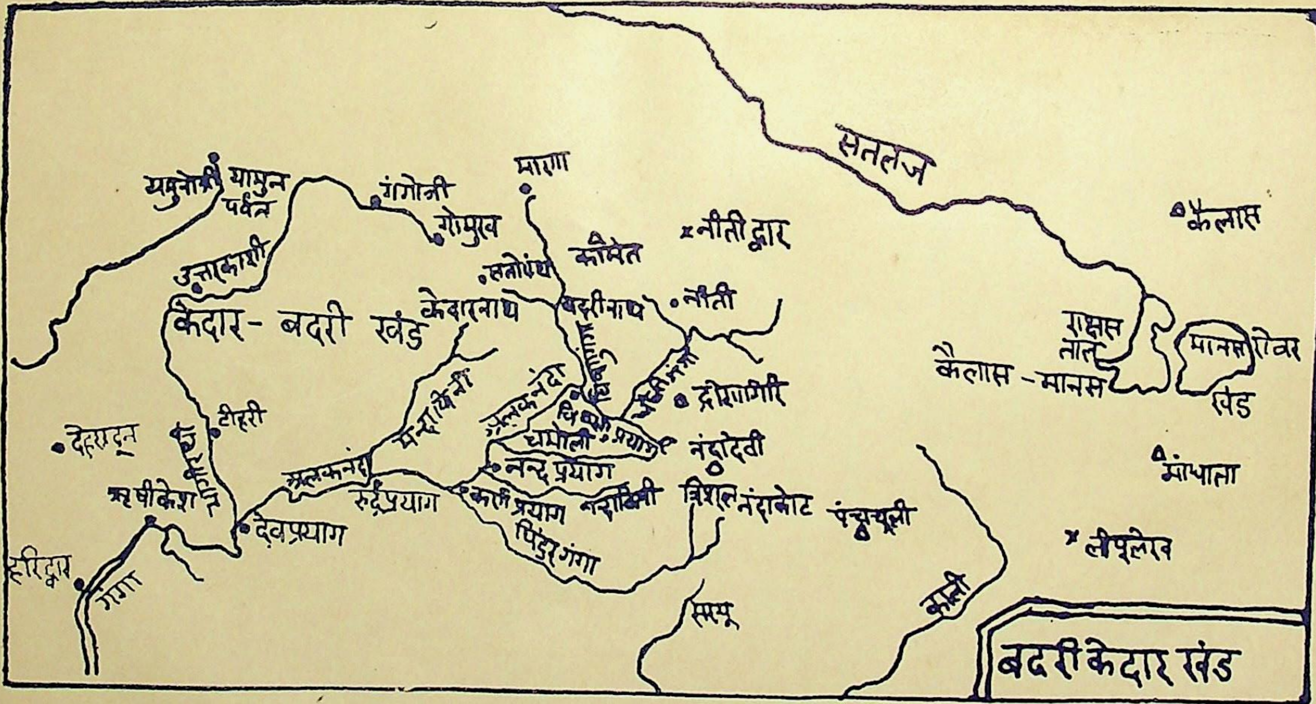

विहरन्तं जितात्मानं पंचगंगे पुनर्वसुम् ।
प्रणम्योवाचनिर्मोहमग्निवेशोऽग्निवर्चसम् ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पंचगंगा प्रदेश में ऋषियों का निवास था, यहाँ पर औषधियां भी पर्याप्त थी, यहां पर दीर्घायु को प्राप्त करने के साधन थे, इसलिये भगवान आत्रेय का यह प्रदेश भी भ्रमण का स्थान रहा।

हिमालय

चरक संहिता में हिमालय का स्पष्ट उल्लेख दो स्थानों पर मुख्य रूप से आया है, ये दोनों स्थान इन्द्र से सम्बन्ध रखते हैं। ऋषियों को जब जब इन्द्र की शरण में जाने की आवश्यकता हुई तब वे हिमालय में पहुँचते हैं। इनमें प्रथम उल्लेख चरक संहिता के प्रारम्भ का ही है।

धर्म-अर्थ-काम मोक्ष के मार्ग में जब रोग बाधा करने लगे तब प्राणियों पर दया करके ऋषिलोग हिमालय के पार्श्व में एकत्रित हुए (पार्श्वे हिमवतः शुभे–१।७]। वहाँ पर एकत्रित होकर वे इन रोगों की शान्ति का उपाय ढूँढने लगे अपने ज्ञान चक्षुओं से उन्होंने देखा कि इन्द्र इसका उपाय बता सकता है, तब भरद्वाज ने ऋषियों से इन्द्र के पास जाने की आज्ञा माँगी। भरद्वाज इन्द्र के पास गये और वहां से दीर्घ जीवन का जो उपाय सीखकर आये—वही यह आयुर्वेद है।

दूसरे उपाख्यान में ऋषियों ने ग्राम्य आहार से जब अपने शरीर में शिथिलता तथा कुछ अस्वस्थता अनुभव की-तब इसकी शान्ति के लिये वे हिमालय में इन्द्र के पास पहुंचे [चि. अ. १।४]।

ऋषियों का वास मुख्यतः हिमालय का प्रदेश था (विद्यते हि गिरि श्रेष्ठे त्रिदशानां समागमः—महाभारत वनपर्व ४०।३०]। इन्द्र का निवास स्थान भी हिमालय ही था। इसलिये ऋषियों को परस्पर एकत्रित होने में यह स्थान सुगम था–वहां से इन्द्र के पास जल्दी और सरलता से पहुंच सकते थे। इसलिये जब जब एकत्रित होकर इन्द्र के पास पहुंचने का प्रश्न आया–तब तब हिमालय में ऋषि एकत्रित हुए। इनमें एकत्रित होनेवालों में अत्रि, भिक्षुआत्रेय, कृष्ण आत्रेय भी थे। वैसे इसके सिवाय आत्रेय पुनर्वसु को कैलास के प्रदेश में ही विचरता देखते हैं, हिमालय में तो केवल सब के साथ एक साथ बैठा पाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिमालय प्रदेश को चुनने का बड़ा कारण यही था कि—पुण्यकर्मा लोग ही वहां पहुँच सकते थे [अगम्यमनुकृतिभिः—चरक. चि.:-१।४।३]। इसलिये यह स्थान देवताओं से, ऋषियों से अधिष्ठित था। इसमें ब्रह्मर्षि-सिद्ध-चारण रहते थे, शक्रद्वारा रक्षित था, इसलिए इस स्थान को उन्होंने पसन्द किया।

काम्पिल्य

चरक संहिता में एक ही स्थान ऐसा है, जहां पर भगवान पुनर्वसु आत्रेय हिमालय प्रदेश को छोड़कर नीचे मैदान में आते हैं। यह समय भी ग्रीष्म ऋतु का है; स्थान भी गंगा का किनारा है। यथा--

"जनपदमण्डले पञ्चालक्षेत्रे द्विजातिवराध्युषिते काम्पिल्य राजधान्यां भगवान् पुनर्वसुरात्रेयोऽन्तेवासीगणपरिवृतः पश्चिमे घर्म मासे गङ्गातीरे वनविचारमनु विचरन् शिष्यमग्निवेशमब्रवीत्।" वि. अ. ३।३।

इस अध्याय का विषय जनपदोध्वंस कारक रोगों से है; सम्भवतः शिष्यों को समझाने के लिए ही भगवान आत्रेय काम्पिल्य राजधानी में आये थे। रोगों से जनपद किस प्रकार नष्ट हो जाते हैं; इसका सही सही ज्ञान कराने के लिये शिष्यों के साथ पंचाल क्षेत्र की राजधानी काम्पिल्य में आये। यह काम्पिल्य नगरी श्रेष्ठ ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्य द्विजों से सेवित थी। क्योंकि अधर्म के कारण ही जनपदों का नाश होता है [सर्वेषामप्यग्निवेश! वाय्वादीनां यद् वैगुण्यमुत्पद्यते, तस्य मूलमधर्मः], इसलिये जिस स्थान पर श्रेष्ठ धार्मिक लोग रहते थे वहां पर आये।

जनपद—अथर्ववेद में मनुष्यों के लिए जन शब्द आया है "जनं बिभ्रति बहुधा विवाचसं नाना धर्माणं पृथिवी यथौकसम्" अथर्व० १२।१।४५; यह पृथिवी नाना प्रकार की वाणी बोलने वाले और भिन्न भिन्न धर्मवाले जनों को घर की भांति रखती है। इसी जन से जनपद बनता है।

भारत भूमि का सर्वोत्तम परिचय उसके जनपदों के रूप में प्राप्त होता है। जनपद प्राचीन समय में विकसित होनेवाले जातीय और सांस्कृतिक जीवन की स्थानीय इकाइयां थी। आज भी इनमें से अधिकांश नाम भौगोलिक सचाई के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

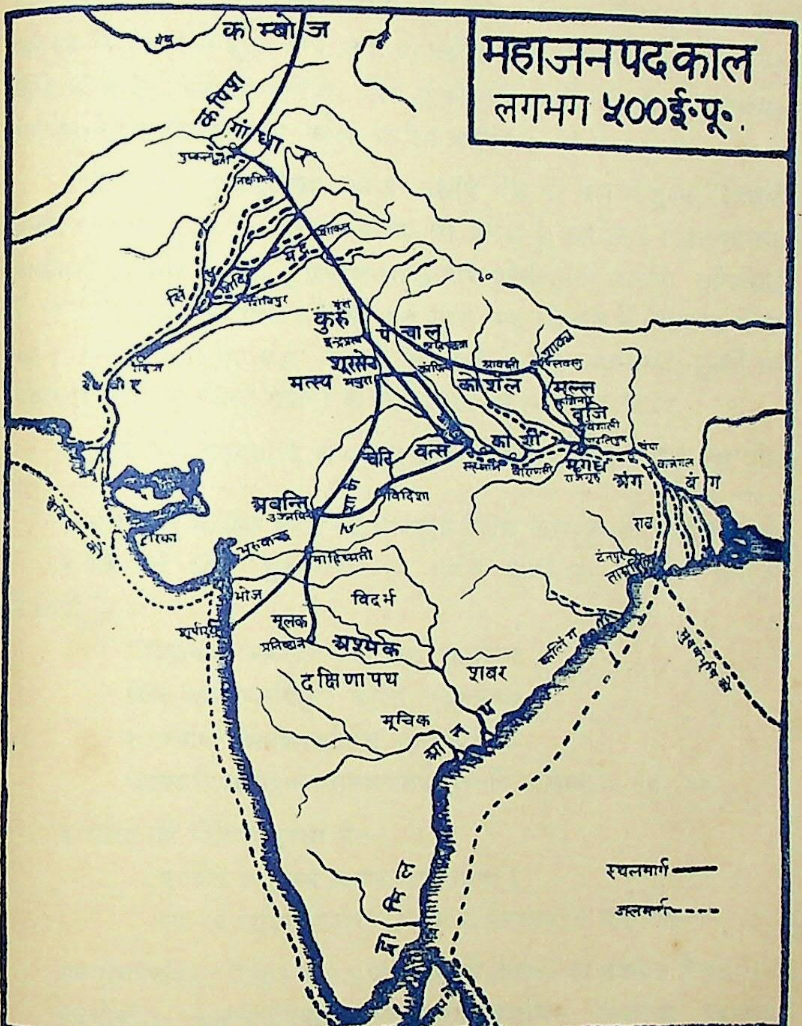

'जनपदमण्डले पञ्चालक्षेत्रे द्विजातिवराध्युषिते काम्पिल्यराजधान्याम्'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में जीवित हैं। पश्चिम से पूर्व तक जनपदों का तांता चला गया था। वस्तुतः देश का शायद ही कोई ऐसा प्रदेश या भाग मिलेगा जिसका नामकरण जनपद के रूप में न हुआ हो। प्रायः दो पड़ौसी जनपदों के नाम के भौगोलिक जोड़े भाषा में प्रसिद्ध हो जाते थे; जैसे--कुरु-पंचाल; काशि-कोसल; अंग-मगध; गान्धार-कैकय; सिन्धु-सौवीर; कपिश कम्बोज आदि[1]।

ब्रह्मावर्त्त की पुण्यभूमिका विस्तार ब्रह्मर्षि देश के रूप में हुआ, जिसमें कुरुक्षेत्र, मत्स्य [जयपुर-अलवर आदि का प्रदेश]; शूरसेन (मथुरा-आगरा अलीगढ़), और पंचाल (कन्नौज-फरुखाबाद-बरेली) के जनपद सम्मिलित थे।[2] गंगा यमुना के उपरी कांठे का यह प्रदेश मनु की दृष्टि से अत्यन्त पवित्र था। इसी के लिए यह कहा गया है कि यहाँ के शिष्ट अग्रजन्मा पुरुषों का सदाचार पृथ्वी के समस्त मानवों के लिए शिक्षा का मानदण्ड था।[3]

सरस्वती और दृसद्वती के बीच की भूमि को ब्रह्मावर्त्त कहते थे। यह देश

---

१ भारत की मौलिक एकता—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल जी की पुस्तक से

२ ब्रह्मावर्त्त और कुरुजनपद का वर्णन कालिदास ने भी मेघदूत में किया है—

"ब्रह्मावर्त्तं जनपदमथच्छायया गाहमान
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः।
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिवकमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥ मेघदूत. पूर्व. ५०.

३ भारत की मौलिक एकता से—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ मनु २।२०।

छान्दोग्योपनिषद में कुरु और पंचाल इन दो जनपदों का उल्लेख है यथा—
मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्यासहजाययोषस्तिर्हचाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास। छान्दोग्य. ३।१०।१.

"श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानां समितिमेयाय"। छान्दोग्य. ७।३।१.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना पवित्र था कि इसको देवनिर्मित देश कहा जाता था। इस देश का आचार अन्य सब देशों के लिए सदाचार का आदर्श माना जाता था।[1]

पंचाल क्षेत्र—इसी ब्रह्मावर्त्त में पंचाल क्षेत्र था--जिसे आजकल फर्रुखाबाद, बरेली तथा रामपुर रियासत का भाग कह सकते हैं। इस क्षेत्र से सटा हुआ कुरु जनपद था। कुरु जनपद के तीन भाग थे कुरु राष्ट्र, कुरुक्षेत्र और कुरुजांगल। ये तीनों इलाके एक दूसरे से सटे हुए थे। थानेश्वर के चारों ओर का प्रदेश कुरुक्षेत्र; हिसार का जंगल कुरुजांगल और हस्तिनापुर का कुरुराष्ट्र था। मोटे तौर पर सरस्वती से गंगा तक का प्रदेश कुरु जनपद के अन्तर्गत था। गंगा यमुना के बीच का लगभग मेरठ कमिश्नरी का इलाका असली कुरुराष्ट्र था, इसकी राजधानी हस्तिनापुर थी।

कुरु जनपद से सटा जनपद पंचाल है; यह मध्यप्रदेश का जनपद था। आज इसकी स्थिति बरेली से कन्नौज तक गंगा के दोनों ओर का प्रदेश है। गंगा ही पंचाल जनपद को दो भाग में विभक्त करती है। पाण्डवों के गुरु द्रोण ने गुरुदक्षिणा में जब द्रुपद को पकड़वा लिया था, तब उससे आधा राज्य लेकर छोड़ा था। उस समय इस राज्य का विभाग गंगा के द्वारा ही हुआ था। गंगा से उत्तर का पंचाल भाग द्रोण ने रक्खा था और दक्षिण का प्रदेश द्रुपद को दिया था। उत्तर पंचाल में रामगंगा का भाग आता है। इसमें उत्तर पंचाल की राजधानी **अहिच्छत्रा** थी और दक्षिण पंचाल की राजधानी **काम्पिल्य** नगर थी। आज पूर्व पंचाल का इलाका बरेली का है, उत्तर दक्षिण पंचाल का देश फरुखाबाद का जिला है।

काम्पिल्य—काम्पिल्य नाम बहुत पुराना है—तैत्तिरीय संहिता (६-४-१६ १), मैत्रायणी संहिता (३।१२।२०), काठक संहिता (अश्वमेधिक-४।८), माध्यन्दिन संहिता। (२३।१८), तैत्तिरीय ब्राह्मण

---

१ सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तंदेवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥ मनु २।१७।
तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्य क्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥ मनु २।१८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३।६।६), शतपथ ब्राह्मण (१३।२।८।३], आदि में इसका नाम आता है। काम्पिल्य नगर पंचाल क्षेत्र की राजधानी थी, इसका स्थान कुरुओं से पूर्व की ओर था; आज इसकी स्थिति फर्रुखाबाद वाली है। इस राजधानी में पुनर्वसु के समय श्रेष्ठ लोग रहते थे।

पंचाल जनपद की सीमा में (यहाँ कुरु जांगल की तरह पंचाल जांगल) पंचाल क्षेत्र के अन्दर (कुरु राष्ट्र की भाँति), काम्पिल्य राजधानी (हस्तिनापुर की भांति) में ज्येष्ठ मास के अन्दर गंगा तीर के वनों में घूमते हुये पुनर्वसु ने अग्निवेश को कहा।

चरक संहिता के चिकित्सा स्थान के तेरहवें अध्याय तक इतने ही भौगोलिक स्थानों का उल्लेख मुझे मिला है। चिकित्सा स्थान के तेरहवें अध्याय के आगे भी कुछ देशों के नामों का उल्लेख है। इनमें एक क्रम है, उस क्रम से सिन्धु नदी के पार के देश प्रारम्भ होकर चीन-मध्य एशिया तक चल गये हैं। ये नाम खान पान के सम्बन्ध में आये हैं; यथा—

वाह्लीकाः पह्लवाश्चीनाः शूलीका यवनाशकाः। च. अ. ३०।३१६. इसमें आया वाह्लीक शब्द पहले भी आया है [काङ्कायनो वाह्लीको वाह्लीक भिषजांवरः। सू. अ. २६।५]। इसलिये आत्रेय को वाह्लीक प्रदेश से परिचिति जरूर थी।

वाह्लीक— भारत देश का हिन्दु नाम करण सिन्धु शब्द के ऊपर से है। ऋग्वेद में सिन्धु शब्द नद की संज्ञा है; जो उत्तर पश्चिमी भारत के भूगोल की सबसे बड़ी विशेषता है। सिन्धु के इस पार का पंचनद या वाहीक प्रदेश था, और सिन्धु के पार का वह कांठा जहाँ का पानी ढलकर सिन्धु में आता है और जिसमें कुभा (काबुल), सुवास्तु (स्वात), गौरी (पंजकोरा), गोमती (गोमल), क्रुमु (कुर्रम); आदि नदियाँ हैं सदैव भारतीय भूगोल का अंग माना जा था। गंधार (तक्षशिला से काबुल तक का प्रदेश); कपिश (हिन्दु कुश का प्रदेश मध्य अफगानिस्तान); कम्बोज (पामीर वदख्शा), आदि अनेक भौगोलिक नाम भारत की देन हैं और उन देशों की प्राचीन संस्कृतीय भी भारती थी। भारतवर्ष का जो सबसे प्राचीन साहित्य है, उसकी पृष्ठ भूमि में कम्बोज, वाह्लीक, कपिश, गंधार ये निश्चित बिन्दु हैं।[1]

१ भारत की मौलिक एकता से उद्धृत.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्य एशिया और अफगानिस्थान के नक्शे को देखने से इन जनपदों की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। हिन्दु कुश के उत्तर पूर्व में कम्बोज; उत्तर पच्छिम में वाह्लीक, दच्छिण पच्छिम में कपिश और दक्षिण पूर्व में गान्धार था। वंक्षु नदी का दक्षिणी भाग तीन जनपदों में बंटा हुआ था। हिन्दु कुश और वंक्षु के बीच का बड़ा जनपद **वाह्लीक** था; जिसे आज भी बल्ख कहते हैं। इसका पूर्वी भाग दो छोटे जनपदों में बंटा था। वाह्लीक से सटा हुआ जनपद मुंजान था; यहां के रहने वाले लोग मौंजायन कहलाते हैं। वैदिक काल में यही प्रदेश मूजवन्त कहलाता था (यजु. ३।६१; अथर्व ५।२।२५)[१]। जो वाह्लीक के पड़ोस में था। आज कल इसको बदख्शां कहते हैं।

पह्लव—वाह्लीक से मध्य एशिया की ओर चलने में पह्लव जनपद पडता था, जिसकी भाषा पहलवी कहलाती है। यह स्थान आज कल पूर्वी परसिया-ईरान के नाम से पहिचाना जाता है। पहलवी भाषा का आर्यन् भाषा से बहुत सम्बन्ध माना जाता है।

चीन—पह्लव से आगे चलकर चीन का प्रदेश आता है। चीन से भारत का सम्बन्ध पुराना है।

शूलीक—चीन से अगला मध्य ऐशिया का प्रदेश शूलीक है; यहां के लोगों की भाषा का नाम शूली है। यह स्थान मध्य एशिया में आता है। आज कल इसको कास्कर करते हैं। **यवन** और **शक** ये नाम जातियों के थे। ये लोग सिन्ध के परे से भारत में आने वाली जातियाँ थी।

---

१ सुश्रुत संहिता में सोम के भेद बताते हुए मुञ्जवान नाम आया है यथा--

अंशुवान् मुञ्जवांश्चैव चन्द्रमा रजतप्रभः।
दुर्वासोमः कनीयांश्च श्वेताक्षः कनकप्रभः॥
एते सोमाः समाख्याता वेदोक्तैर्नामभिः शुभैः।

इन सोमो के मिलने के सम्बन्ध में लिखा है--"उत्तरेण वितस्तायाः प्रवद्धा ये महीधराः। पंचतेषामधो मध्ये सिन्धु नामा महानदः॥ हंसवत् प्लवते तत्र चन्द्रमा सोमसत्तमः। तस्योद्देशेषु चाप्यस्ति मुञ्जवानंशुमानपि॥ सु. चि. अ. २९।२८-२९। यही मुञ्जवान कहीं मूंजवन्त न हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन लोगों का भोजन मांस, गेहूँ, माध्वीक (मद्य), शस्त्र और वैश्वानर (अग्नि से पकाया) से सिद्ध आहार था। शस्त्र से मार कर तथा अग्नि में भून-कर ये भोजन करते थे (इसीसे पाणिनी ने शूलाकृत मांस का उल्लेख किया है)।

इनके अतिरिक्त भारत के देशों का भी खान पान वर्णित है, यथा–**अश्मक** गोदावरी के दक्षिण अहमदनगर एवं दूसरे भी जिले; **अवन्तिका** (मालवा) निवासियों को तैल और अम्ल सात्म्य थे। **प्राच्य देश के** (गौड़ देश-बंगाल के) लोगों को मछलियां सात्म्य थी, **सैन्धव के** (सिन्धु देश ओर सौवीर देश) लोगों को दूध सात्म्य था [आज भी इन प्रदेशों की देशान और सिन्धी गायें बहुत दूध देने वाली हैं]। सिन्धु के साथ सौवीर नाम जुड़ा है। सिन्धु-जहां से सैन्धव आता है; सौवीर–दक्षिण सिन्ध प्रदेश-थारका इलाका जो कि आज भी गायों के लिये उत्तम है। **मलयवासीयों** को (मलयालम-मलय पर्वत-मलय दक्षिण भारत के पर्वतों की संज्ञा थी जिसमें नल्लमलै, अन्नमलै और एलामल्लै आदि कावेरी के दक्षिण की चोटियां सम्मिलित थी) कन्द-मूल-फल सात्म्य थे। दक्षिण देश वालों को पेया (लप्सी की भांति) सात्म्य थी। उत्तर पश्चिम देश (मेरठ के आस पास का प्रदेश) में मन्थ (घुला हुआ सत्तु) सात्म्य था। मध्यदेश (उत्तर प्रदेश और विहार का भाग) वालों को जौ, गेहूं और गोरस सात्म्य था।

जनपदों की गिनती करते समय समस्त देश को मोटे तौर पर इतने हिस्सों में बाँटा गया था—उदीच्य, मध्यदेश, प्राच्य, दक्षिण, अपरान्त, दक्षिण और पर्वतीय प्रदेश। इसी दृष्टि से दृढबल ने लोगों का सात्म्य बताया है, यथा—

सात्म्यं दक्षिणतः पेया मन्थश्चोत्तरपश्चिमे।
मध्यदेशे भवेत् सात्म्यं यवगोधूमगोरसः॥

चरक में वर्णित अन्न-पान

चरक में आये वर्णन से इतना स्पष्ट है कि भगवान् पुनर्वसु आत्रेय का विचरने का मुख्य स्थान हिमालय प्रदेश तथा गंगा का प्रदेश-पांचाल तक ही सीमित रहा था। इसलिये चरक में वर्णित शूक धान्य, शमी धान्य, मांस वर्ग, शाकवर्ग, फलवर्ग ईक्षुवग, जलवर्ग में जिन वस्तुओं का वर्णन है इसी प्रदेश से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धित होना चाहिये। इसी प्रदेश के पशु, पक्षी, चावलों के भेद, ऊख की जातियाँ होनी चाहिये। यथा—

शाली के कई भेद हैं, परन्तु मुख्य भेद तीन हैं; यथा—

शाली—हेमन्त में पकने वाले धान्य—इनकी पौद लगती है; एक स्थान पर बोकर फिर दूसरे स्थान पर ले जाये जाते हैं। इनमें से उत्तम जाती के शाली को दूध से भी सिञ्चित किया जाता था [आसिक्तक्षीरम्—चि० २।२।३] दूध से सिंचन पौद की क्यारी में किया जाता था। इनकी कटाई हेमन्तु ऋतु में मार्गशीर्ष-पौष में होती है।

षष्टिक—साठी जो कि ६० दिन में पकते हैं; प्रायः इनका वपन दिवाली के पीछे जब दूसरे धान्य काट लेते हैं तब बोये जाते हैं। ये धान्य प्रायः वहाँ पर बोये जाते हैं, जहाँ पर बरसात की बढ़ी नदियों का पानी शीतकाल में कम होकर जमीन निकल आती है अथवा जिन गड्ढों या तालाबों का पानी शीतकाल में सूख जाता है। इनकी कटाई ग्रीष्म ऋतु में फाल्गुन-चैत्र में होती है।

व्रीहि—मोटा धान्य है, इसे खेत में छिटक कर बोते हैं; इसकी पौद नहीं लगती, प्रायः करके वर्षा जल से ही पकते हैं। इनकी कटाई शरद्काल में आश्विन-कार्तिक में हो जाती है। इनका चावल मोटा और थोड़ा लम्बा होता है। शाली का चावल पतला, लम्बा और सुगन्धित होता है। सांठी का चावल लाल और मोटा तथा छोटा होता है।

चरक के समय मिलने वाली शाली निम्न थे; यथा—

रक्तशाली-(लालमती), महाशाली (हंसराज प्रायः बरेली के प्रदेश में होता है) कलम (इसका चावल थोड़ा सा पीला रंग लिये होता है; लम्बा कम होता है) शकुनाहृत (इसके लिये टीकाकारों ने भिन्न भिन्न अर्थ दिये हैं; कोई तो इसे उत्तर कुरु प्रदेश आजकल के थ्यानशान स्थान से पक्षियों द्वारा लाया गया कहते हैं[1])। तूर्णक, दीर्घशूक, गौर, पाण्डुल, लाङ्गल (जिन धान्यों की नोक

१ शकुनाहृत—उत्तरकुरुभ्यः हंसैरानीतः; अवन्ति में वक्र नाम से, मगध में पाशक कहते हैं—

वृद्धवैद्य—"द्वीपान्तरात् समानीतोगरुडेन महात्मना।
शकुनाऽऽहृतः सशालिः स्याद् गरुडापरनामकः॥ योगीन्द्रनाथसेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी सी मुड़ी रहती है; वासमती की एक जात है); सुगन्धिक (वासमती) लोहवाल, शारिवा, प्रमोदक, पतङ्ग और तपनीय–ये तथा दूसरी शाली शुभ हैं।

इनके सिवाय-यवक; हायन, पांसु, वाप्य, नैषध आदि शाली उपरोक्त शालियों से विपरीत गुण वाले हैं।

व्रीहि, वरक, उद्दालक, चीन, शारद्, दर्दुरः, गन्धन, कुरुविन्द, और पाटल हैं। आज कल व्रीहि में रामजवायन, राममुनिया, राजभोग आदि कई जातियाँ हैं।

कोरदूष (कोदा) श्यामाक (सांवा) ये कुधान्य हैं। आजकल कंगनी, मण्डुवा आदि धान्य इसी श्रेणी के हैं। इन्ही में हस्तिश्यामाक, नीवार, तोयपर्णी, गवेधुक, प्रशांतिका, अम्भः श्यामाक, लौहित्य, अणु, प्रियंगु, मुकुन्द, झिन्टि, गर्मूटी, वरुक, वरक, शिविर, जूर्णाह्व–जोनार (मक्का या ज्वार) ये सब कुधान्य हैं।

वेणुयव—वांस में लगे फल से निकलते हैं, इनका उपयोग चिकित्सा में होता है, विशेषतः प्रमेह चिकित्सा में (देयास्तथा वेणुयवा यवानां, चि. अ. ६।२४)। क्योंकि ये भेद को, क्रिमि को और विष को नष्ट करते हैं, बलकारक हैं।

गेहूँ—के भेद, नान्दीमुखी, मधूली ये ही दो भेद चरक में हैं।

इन वस्तुवों के समूह का नाम **शूकवर्ग** दिया है, एक दाने वाली वस्तुवें हैं, इन धान्यों में शूक-नोक होती है। ये वस्तुवें दो फाड़ों में नहीं फटती।

शमीवर्ग—इस समूह की वस्तुवें दो फाडों में फट जाती हैं; इसलिये इनको द्विदल कहते हैं। इनमें मुख्य वस्तुवें-मूंग, उड़द, राजमाष (लोभिया-जो कि प्रायः पहाड़ों में होता है), कुलत्थ, अरहर, मोठ, चना, मसूर, मटर, तिल हैं। ये वस्तुवें फली (शिम्बी) में लगती हैं। बड़ी सेम, अलसी, कौंच भी इसी में आते हैं। कौंच हरी होने पर जब उस पर रोयें नहीं आते-तब तक उसे खाते हैं।

मांसवर्ग—को पशु-पक्षियों के स्वभाव के अनुसार आठ भागों में विभक्त किया है; यथा—

क—प्रसह वर्ग-जो कि झपट कर खाते हैं, यथा–गाय, गधा, खच्चर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊंठ, सिंह, चीता, केसरी, सिंह, भालु, बन्दर, आदि, तथा मधुहा; भास, गीध, ऊल्लु, कुलिङ्गक, धूमिका, कुरर आदि।

ख—भूमिशय वर्ग–जो भूमि के अन्दर सोते हैं, यथा-मेंढक, सांप; गोह; सेह, नेवला आदि।

ग—आनूप वर्ग–जल बहुल वाले प्रदेश में रहने वाले–स्टमर, चमर, गेंडा, भैंसा, गवय, गज, न्यङ्कु, सुअर आदि।

घ—वारिशय वर्ग–पानी में रहने वाला समूह-कछुआ, कैंकड़ा, मछली, शिशुमार, मकर आदि।

ङ—अम्बूचारी–पानी के उपर रहने वाला समूह–हंस, कौंच, वलाका, बगला, जलमुर्गी; मानतुण्डक, मृणाल कण्ठ, मद्गु, कदम्ब, उत्क्रोश, मेधरव, नन्दीमुख आदि।

च—जांगल–पृषत, शरभ, राम, मृगमातृका, शश; कुरंग, हरिण, काली जीभ का हरिण, चित्तल; काल पुच्छक आदि।

छ—विष्किर–बखेर के खाने वाले–बटेर, वर्त्तीर, कपिञ्जल, मुर्गा, चकोर, वटेर, तीतर आदि।

ज—प्रतुद–ठोंग मार कर खाने वाले–तोता, जीवञ्जीवक, कटफोड़ा, लट्वा, वभ्रु, जटी, कबूतर; सारिका (मैना); चटक (चिड़िया), अङ्गार चूड़क आदि।

शाकवर्ग—में प्रायः बरती जाने वाली वस्तुवें ही गिनी हैं; यथा–वथुआ, मकोय, चौपतिया; चौलाई; पोथी; मण्डूकपर्णी; नाडी का शाक (ऋषिकेश, मंसूरी में प्रायः मिलता है)। आलुक से कन्द-शकर कन्द या दूसरे कन्द अभिप्रेत हैं, न कि आलु; कचनार; कलम्ब, सिम्बल; ककड़ी, खीरा, चिभड़ा; पका हुआ पेठा, नन्दीमाषक आदि वस्तुवें है।

फलवर्ग—द्राक्षा; खजूर, गूलर, फालसा, ताड़ फल, नारियल, कमरख, वेर; आलु बुखारा, गम्भारी; कैथ, विल्व, जामुन, आम, खिरनी, आंवला, कदम्ब, दाडिम आदि हैं।

फलवर्ग में केले के गुणों का वर्णन चरक संहिता में वर्णित नहीं है। केले से भारतीय परिचित थे, इसमें शंका नहीं। स्त्री के ऊरु की उपमा कदली स्तम्भ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से दी हुई है [यास्यत्यूरुः सरस कदली स्तम्भ गौरश्चलत्वम्-मेघदूत] परन्तु चरक में केले के गुणों का उल्लेख नहीं मिलता, यद्यपि यह एक घरेलु वृक्ष है। बादाम, चिलगोज़ा, अखरोट, पिस्ता इनका उल्लेख है, जबकि ये वस्तुवें बाहर से-वाह्लीक प्रदेश से आती थी। सम्भवतः उस समय आहार की दृष्टि से केले का अधिक महत्त्व नहीं रहा होगा।

हरीतकवर्ग—इसमें उन वस्तुओं की गणना की है, जो कि विना पकाये कच्ची ही (Green Vegatable) खाई जाती हैं; यथा—मूली, धनियां प्याज, लहसुन, निम्बु, अजवायन, आर्द्रक, आदि हैं।

मद्य वर्ग—मद्य (सन्धान विधि) के कई रूप वर्णित हैं, यथा—सुरा, मदिरा, प्रसन्ना, जगल, अरिष्ट, शार्कर आदि। इसमें 'मधु' नामक एक प्रकार का मद्य भी है, [इसका उल्लेख वाल्मीकी रामायण के सुन्दर काण्ड में भी आता है चरक में भी क्षयरोग की चिकित्सा में मधु मद्य का उल्लेख किया है—यथा—प्रसन्नांवारुणीं सीधुमरिष्टानासवान्मधु-[चि. अ. ८।१६५]।[1] सात्त्विक पुरुषों में विधि पूर्वक पीने से अमृत के समान लाभ होता है [यूं चरक में मद्य और मांस सेवन का निषेध भी है; यथा-चि. अ. ६।१०३; चि. १।४।३०]।

जलवर्ग—वर्षा जल और नदी जल के भेद से जल का विभाग है। इसमें वर्षाजल, ऐन्द्र (वर्षा जल) कार जल, (ओले का जल) और हिम (वर्फ का जल) भेद से तीन प्रकार का है। यह जल सबसे उत्कृष्ट बताया है। वर्षा जल के गुण हेमन्त, वसन्त, शिशिर, ग्रीष्म, आंधी आदि के समय बरसे हुए जल के गुण भी वर्णित हैं [उस समय जलवायु की समीक्षा होती होगी]। नदी का जल भी उनके बहने की दृष्टि से वर्णित हैं, यथा—(क) हिमालय से उत्पन्न नदियों का पानी उत्तम है, क्योंकि यह पानी पत्थरों से टकराता हुआ बहता है। (ख) मलयाचल से बहने वाली नदियों का पानी अमृत के समान है,

---

१ परिपक्वान्नसन्धान समुत्पन्नां सुरां जगुः।
सुरामण्डः प्रसन्ना स्यात्, ततः कदम्बरी घना॥
तदधोजगलो ज्ञेयो, मेदको जगलाद्घनः।
बक्कसो हृत्सारः स्यात् सुरा बीजं च किण्वकम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि यह भी पत्थर और रेती में बहता है। (ग) पश्चिम की ओर बहने वाली पंजाब की नदियों का पानी पथ्य है। (घ) पूर्व समुद्र में गिरने वाली नदियां-घाघरा, कोसी, गण्डक आदि नदियों में बहाव धीमा रहने से इनका पानी भारी है। (ङ) पारियात्र पर्वत-(गिरनार) तथा विन्ध्याचल से उत्पन्न नदियों का पानी रोगोत्पादक है। ये कुल पर्वत हैं, यथा—

"महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमान् ऋक्षपर्वतः।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुल पर्वताः॥ भीष्म ६।११

इसके सिवाय सात वर्ष पर्वत बताये हैं जो कि भूमि खण्ड को सात भागों में बाँटते थे। ये पर्वत--

हिमवान् हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च।
चैत्रकर्णा च शृंगी च सप्तैते वर्षपर्वताः॥

गोरसवर्ग—इसमें पशुओं के दूध के गुण-दोष वर्णित हैं। सबसे उत्तम गाय का दूध बताया है, क्योंकि यह दूध ओज के समान गुण वाला है। प्रसंग से दधि, घृत, तक्र का भी उल्लेख है।

ईक्षुवर्ग—इस वर्ग में उस समय के प्रसिद्ध ईक्षु–ऊख के नाम दिए हैं; पौण्ड्र (पौण्डा), वंशक (बांस गन्ना)। यांत्रिक–कोल्हू का उस समय उपयोग रस निकालने के लिये था–इसी से कहा कि 'यंत्र से निकाला रस विदग्ध हो जाता है–अधिक देर तक नहीं रह सकता–खटास आ जाती है। गुड़, क्षुद्रगुड़, मत्स्यण्डिका (राब); खण्ड (खांड), शर्करा, ये उस समय के प्रचलित रूप थे। इसके सिवाय मधु शर्करा, यास शर्करा भी चलती थी।

इसी प्रसंग में चार प्रकार के मधु का वर्णन है। इनमें क्षौद्र मधु सबसे उत्तम है। मधु को थोड़ा ही खाना उत्तम बताया है। मधु योगवाही है।

कृतान्नवर्ग—इस वर्ग में उस समय के प्रसिद्ध बने हुए खाद्यों का उल्लेख है, यथा–पेया, विलेपी, मण्ड, लाजपेया, लाजमण्ड, चावलों के पकाने का क्रम पकाने की विधि से उनके गुणों में अन्तर, कुल्माष (जौ को पीसकर गरम पानी से गीला करके थोड़ा सा उबालकर पूडे बनाये हुए), दाल (सूप) सत्तु यावक, वाट्य, पूप, पूपलिका मधुक्रोड़ा (गुजरात की पूरणपोली जैसा खाद्य),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खील, आदि का उल्लेख है। वेशवार (कुट्टित मांस को पीसकर पिप्पली, सोंठ, मरिच, गुड़ और घी के साथ मिलाकर बनाया], कृशरा, क्षीर पूप, आदि का उल्लेख है। राग, षाडव, पृथुक (चिवड़ा) निर्मदक, रसाला, पानक (शर्बत) का भी उल्लेख इस प्रकरण में किया गया है। जिन वस्तुवों से तेल निकलता था, उन वस्तुवों की सूची भी सूत्र स्थान के तेरहवें अध्याय में दी हुई है।

इस प्रकार से उस समय के परिचित आहार द्रव्यों की समीक्षा कर दी है। सम्पूर्ण आहार द्रव्यों को इस प्रकार वर्ग क्रम में बांट दिया है।

तोल

आयुर्वेद में मागध और कलिङ्ग, दो प्रकार के तोलों का उल्लेख है। चरक में मागध तोल का ही वर्णन है। भारत के उत्तरीय भाग में मगध और कलिंग ये दो राष्ट्र-बड़े समूह थे। कलिङ्ग को जीतने का यत्न नन्दों ने भी किया, परन्तु कुछ समय पीछे यह पुनः स्वतंत्र हो गया था। कलिंग समुद्र के किनारे का देश था, इसलिये पूर्वी किनारे पर समुद्र का सब व्यापार इसी के बन्दर गाह ताम्रलिप्ति से होता था। इस देश का भी अपना ही तोल था।

माप-तोल पहिले भी थे परन्तु उनका पद्धतिसर चलन नन्द ने ही किया।[१] नन्द ने जिस तोल को चलाया वह मागध तोल था—क्योंकि उस समय मगध का राष्ट्र उत्तर में सबसे बड़ा राष्ट्र था, इसीलिये मागध तोल कहते हैं। चरक संहिता में इस तोल को मागध नाम दिया है; कलिंग मान से मागध मान को श्रेष्ठ बताया है [क. अ. १२।१०२]। चक्रपाणि ने इस श्लोक के पाठ के विषय में सन्देह किया है; इसको अनार्ष मानने वाले भी हैं। जो ठीक भी हैं; चरक संहिता की रचना को देखते हुए उसमें यह ठीक बैठता भी नहीं। सम्भवतः दृढ़वल के समय यह विचार रहा हो, उसने अपनी ऊञ्छ और शिल वृत्ति से इसमें मिला दिया होगा। क्योंकि यदि श्रेष्ठता बतानी होती तो कालिंग

१ 'उपक्रमोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम्'—पाणिनी के इस सूत्र का उदाहरण देते हुए काशिकाकारने लिखा है "नन्दोपक्रमाणि मानानि; सिद्धान्तकौमुदी में नन्दोपक्रमं द्रोणः"—इससे अनुमान होता है कि मानों का उपक्रम नन्द के समय से हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान का भी उल्लेख होता; परन्तु चरक में मागध मान है और सुश्रुत में कालिंग मान है; इसमें श्रेष्ठता का कोई प्रश्न ही नहीं।

मान का उल्लेख मनुस्मृति और कौटिल्य में भी आया है, परन्तु चरक में मान का जो उल्लेख है, वह प्रायः करके धान्यों के तोल से है; यथा–धान्यमाष, अण्डिका; कोल, बदर, अक्ष (बहेड़ा) आदि। बहेड़ा उस समय पासे के रूप में जुआ खेलने में बरता जाता था, इसी से इसका नाम 'अक्ष' है [देखिए–लेखक की पुस्तक "संस्कृत काव्यों में आयुर्वेद]।

चरक संहिता में दृढ़बल का दिया हुआ मान बहुत प्राचीन नहीं है, इसमें आये शब्द इसकी नवीनता स्पष्ट करते हैं। शतमान जैसा प्रचलित शब्द भी इसमें नहीं है। भार शब्द आज भी देहात में प्रचलित है; शूर्प, गोणी–शब्द भी प्रचलित हैं।

कौटिल्य अर्थ शास्त्र का मान

१० धान्यमाष = ५ गुञ्जा	= १ सुवर्ण माषक	२०० पल धान्यमाष	= १ द्रोण आयमान
१६ सुवर्ण माषक	= १ सुवर्ण वा कर्ष	१८७½	= १ द्रोण व्यावहारिकी
४ कर्ष	= १ पल	१६५	= १ द्रोण भाजनीय
८८ गौर सर्षप	= १ रूप्यमाषक	१६२½	= १ द्रोण अन्तःपुर भाजनीय
१६ रूप्यमाषक	= १ धरण	तेषामाढक प्रस्थ कुडवाश्चतुर्भागावराः-	
२० तण्डुल	= १ वज्रधरण	१६ आढ़क	= १ खारी
२० तुला	= १ भार	२० खारी	= १ कुम्भ
१० धरण	= १ पल	१० कुम्भ	= १ वह
१०० पल	= १ आयमान		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुस्मृति का मान—

८ त्रसरेणु	=	१ लिक्षा
३ लिक्षा	=	१ राजसर्षप
३ राजसर्षप	=	१ गौरसर्षप
६ गौर सर्षप	=	१ यव मध्य
३ यव	=	१ कृष्णल
५ कृष्णल	=	१ माष
१६ माष	=	१ सुवर्ण
४ सुवर्ण	=	१ पल
१० पल	=	१ धरण

२ कृष्णल	=	१ रौप्यमाषक
१६ रौप्यमाषक	=	१ धरण
१० धरण	=	१ शतमान

४ सुवर्ण	=	१ निष्क

चरक संहिता का मान—

६ वंशी	=	१ मरीचि
६ मरीचि	=	१ राई
३ राई	=	१ लाल सरसों
२ लाल सरसों	=	१ पीली सरसों
८ सरसों	=	१ तण्डुल
२ तण्डुल	=	१ धान्य माष
२ धान्य माष	=	१ रत्ती
२ रत्ती	=	१ अण्डिका
६ रत्ती का	=	१ माषा
४ माषा	=	१ शाण
२ शाण	=	१ द्रंक्षण
२ द्रंक्षण	=	१ कर्ष
२ कर्ष	=	$^1/_2$ पल
२ पलार्ध	=	१ पल
२ पल	=	१ प्रसृत
२ प्रसृत	=	१ कुडव
२ कुडव	=	१ शराव
२ शराव	=	१ प्रस्थ
४ प्रस्थ	=	१ आढ़क
२ आढ़क	=	१ कंस
४ आढ़क	=	१ द्रोण
२ द्रोण	=	१ शूर्प
२ शूर्प	=	१ वाह
४ गोणी	=	१ खारी
१०० पल	=	१ तुला

यह मान शुष्क द्रव्यों का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३

चरक संहिता कालीन शिक्षा व्यवस्था

प्राचीनकाल में विशेषतः वैदिक काल की परम्परा में विद्या ज्ञान देने में बहुत सावधानी बरती जाती थी। विद्या सिखाने से पूर्व-उपनयन-समीप में लाने के कृत्य को करने से पूर्व शिष्य की परीक्षा पूर्णतः की जाती थी। इसके लिये शिष्य को कुछ समय तक गुरु के पास रहना पड़ता था। धौम्य ऋषि तथा सत्यकाम जाबाल के गुरु हारिद्रुमत गौतम का उदाहरण है, धौम्य ऋषि ने अपने शिष्यों अरुणि, उपमन्यु की परीक्षा कड़ाई से ली थी; सत्यकाम जाबाल के हारिद्रुमत गौतम ने उसे कुछ गायें देकर तब तक चराने की आज्ञा दी थी जब तक उनकी संख्या दस हजार न हो जाये। इस सब समय में गुरु शिष्य के सब स्वभाव-आदतों से परिचित हो जाता था। इसलिये आचार्य शिष्य को अपने पास छैः मास रखकर उसकी परीक्षा करले, कि इसे विद्या देना ठीक है या नहीं। क्योंकि शस्त्र, शास्त्र, जल गुणकर या हानिकर होने की दृष्टि से पात्र की अपेक्षा करते हैं। (सू० अ० ६)। ठीक प्रकार से ग्रहण न किया हुआ शास्त्र अज्ञानी को उसी प्रकार से नष्ट कर देता है, जिस प्रकार कि ठीक तरह न पकड़ा हुआ शस्त्र पकड़ने वाले को हानि पहुंचाता है वही शास्त्र और शस्त्र यदि ठीक प्रकार से ग्रहण किया हुआ हो तो ज्ञानी की रक्षा करता है (सि०अ० १२।७६) इसलिये शास्त्र को सिखाने के लिये शिष्य की परीक्षा आवश्यक थी।[1]

बुद्धिमान पुरुष को युक्तिपूर्वक अपने करणीय कार्य की गुरुता या लघुता का तथा उसके तात्कालिक और उत्तर कालीन फल का देश और काल का विचार करके यदि वैद्य बनने का विचार हो तो उसे सर्व प्रथम शास्त्र की और फिर गुरु की परीक्षा करनी चाहिए (वि० अ० ८।३)। शिष्य शास्त्र और गुरु की

१ मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने भी इसी बात को शिष्य के सम्बन्ध में कहा है यथा—

पात्रविशेषेन्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमधातुः।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य॥ १।६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परीक्षा करे और गुरु शिष्य की परीक्षा करे। क्योंकि जब दोनों का संयोग ठीक प्रकार से होगा तभी विद्या सफल होती है; इसीलिये अत्रिपुत्र ने तीनों के गुण दोषों की विवेचना बारीकी से की है, यथा—

शिष्य के गुण—अध्यापन कार्य करने वाले आचार्य को सबसे प्रथम शिष्य की परीक्षा करनी चाहिए। जैसे कि—शान्त, श्रेष्ठ स्वभाव का, नीच कार्य न करने वाला, जिसके नेत्र-मुख-नाक और पृष्ठवंश सीधे हों, जिह्वा पतली, सुर्ख और स्वच्छ हो, दान्त और ओठ भी विकार रहित हों, बोलने में मिन्मिनाता न हो; धीर; अहङ्कार रहित, मेधावी, तर्कशक्ति और स्मरणशक्ति से युक्त, उदारचित्त, वैद्यकुल में उत्पन्न या आचार और स्वभाव से वैद्य बनने के योग्य हो; तत्त्वज्ञान की जिसको धुन हो, जिसके सब अंग ठीक हों, सब इन्द्रियाँ जिसकी स्वस्थ हों, विनीत, भद्रजनोचितवेश को धारण करने वाला, व्यसनों से रहित; वस्तुतत्त्व को समझने की योग्यता रखता हो, क्रोधी न हो, शील (चरित्र), शौच (बाह्यभ्यन्तर शुद्धि) सदाचार-प्रेम-नैपुण्य, अनुकूलता से युक्त, पढ़ने की उत्कट इच्छावाला, अर्थ को समझने और कर्म को देखने में जो दत्तचित हो, लोभी न हो, आलसी न हो, प्राणिमात्र का हितैषी हो, आचार्य के सब उपदेशों एवं आज्ञाओं को पालन करने वाला हो, ऐसे गुणवान शिष्य को अध्यापन के योग्य समझना चाहिये (क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति-रघुवंश)।

इस परीक्षा में शिष्य की शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की परीक्षा का निर्देश स्पष्ट रूप में है। शिष्य का शरीर और मन से पूर्ण स्वस्थ होना आवश्यक है और उसे विद्याध्ययन के लिए समय भी होना चाहिये। इसी से कल्यः और कृतक्षणः ये दो शब्द दिये हैं (वि. ८।७)। शिष्य की परीक्षा करने पर भी गुरु उसे वैद्यक विद्या की शिक्षा देता था। इसी से कालिदास ने कहा है—"वत्से सुशिष्य परिदत्ता विद्येवाशोचनीया संवृत्ता"-शाकुन्तल ४।

आचार्य के गुण—निर्भ्रान्त शास्त्र ज्ञानी, अनुभवी, कर्म कुशल, अनुकूल स्वभाव, सदाचारी, सिद्ध हस्त, साधन सामग्री सम्पन्न, आँख आदि सभी इन्द्रियों से युक्त, लोगों की प्रकृति को समझने वाला, युक्तिज्ञ-व्यवहार कुशल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत से शास्त्रों के अध्ययन से परिष्कृत ज्ञानवाला[१], अहंकार रहित, दूसरे के गुणों पर दोषारोपण न करने वाला, क्रोध न करने वाला, कष्ट सहिष्णु, शिष्य वत्सल, अपने विषय को समझाने में समर्थ; इन गुणों से युक्त आचार्य एक अच्छे शिष्य को शीघ्र ही वैद्य गुणों से भरपूर कर देता है, जिस प्रकार कि उपयुक्त ऋतु का बादल एक अच्छे खेत को धान्य से भर देता है।[२]

शास्त्र की परीक्षा—संसार में कई प्रकार के चिकित्सा शास्त्र प्रचलित हैं। इनमें से जिसको विस्तृत, यशस्वी, धीर पुरुषों से पठित, विभिन्न विषयों से युक्त, योग्य तम अधिकारी जनों से आदृत; तीक्ष्ण, मध्य और साधारण बुद्धिवाले सभी तरह के छात्रों के अनुकूल, पुनरुक्ति दोष से रहित, ऋषि प्रणीत, अच्छे अच्छे सूत्ररूप-भाष्यरूप-संग्रह रूप पाठ्य ग्रन्थों से पूर्ण; सुन्दर या पक्के आधार वाला अथवा अपने ही आधार पर स्थित, भद्दे शब्दों से रहित, कठिन शब्दों से बचा, पाठ्य सामग्री से भरपूर, क्रम बद्ध, निश्चितार्थ का ज्ञापक, विषयों की संगति बिठाने वाला, सम्बद्ध प्रकरण वाला, शीघ्र ज्ञान कराने वाला, विविध परिभाषाओं और उदाहरणों से युक्त समझे, उसी शास्त्र को स्वीकार करे। इस प्रकार का शास्त्र निर्मल सूर्य की तरह अन्धकार को दूर करके सब ज्ञान करा देता है। [वि. अ. ८]।

पढ़ाने योग्य छात्र को पढ़ाते हुए आचार्य शास्त्र दृढ़ता, अभिधान सौष्ठव, अर्थ विज्ञान और वचन शक्ति रूप यथोक्त अध्यापन के फल को प्राप्त करता है तथा अन्य न कहे हुए श्रेयस्कर गुणों से भी शिष्य एवं अपने को युक्त करता है।

१ सुश्रुत में इसी से कहा है कि—"अन्य शास्त्रोपपन्नानां चार्थनामिहोपनीतानामर्थवशात्तेषांतद्विद्येभ्य एव व्याख्यानमनुश्रोतव्यम्—कस्मात्। न ह्येकस्मिन् शास्त्रे शक्यः सर्वशास्त्राणमवरोधः कर्त्तुम् ॥

एकं शास्त्रमधीयानो न विद्याच्छास्त्र निश्चियम्।
तस्माद् बहुश्रुतः शास्त्र विजानीयाच्चिकित्सकः ॥

२ मालविकाग्निमित्र में अच्छे आचार्य का उल्लेख इस प्रकार आया है—
श्लिष्टाक्रियाकस्यचिदात्मसंस्था संक्रान्तिरन्यस्यविशेष युक्ता।
यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव ॥ १।१६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए शिष्य, आचार्य और शास्त्र तीनों की परीक्षा आवश्यक है, जिससे कि किया हुआ श्रम विफल न जाये।

अध्ययन विधि— निरोगी छात्र को चाहिए कि वह पढ़ाई के लिए समय निकाल कर [दृढ़ प्रतिज्ञ बनकर]; प्रातःकाल उठकर या कुछ रात के बचे होने पर उठकर, शौचादि कार्यों से निवृत्त होकर, स्नान करके, देवता, गाय, गुरु, वृद्ध, सिद्ध, आचार्य को नमस्कार करने के बाद, समतल या पवित्र स्थान पर बैठकर अपनी त्रुटियों को दूर करने तथा दूसरे की त्रुटियों को जानने के लिए बुद्धि से अर्थतत्त्व को ठीक से समझकर—मनोयोग पूर्वक, वाणी से सूत्र को आनुपूर्वी क्रम से पढ़ते हुए बार-बार दोहराना चाहिए। इसी तरह दोपहर, दिन ढलते और रात को प्रति दिन समय नष्ट न करते हुए पाठ का अभ्यास करना चाहिए। [वि. ८]

विना गुरु से पढ़े स्वयं नहीं पढ़े, किसी अक्षर को छोड़ते हुए नहीं पढ़ना चाहिये, किसी अधिक अक्षर के साथ या अधिक मात्रा के साथ नहीं पढ़ना चाहिये। बहुत ऊँची आवाज से नहीं पढ़ना चाहिए, विना स्वर के नहीं पढ़े, अनवस्थित पद के साथ नहीं पढ़ना चाहिये, बहुत जल्दी या बहुत देर में (रुक-रुक कर) नहीं पढ़ना चाहिए, मरी हुए वाणी से नहीं पढ़ना चाहिए, रुखी आवाज से नहीं पढ़ना चाहिए, बहुत धीमी-दबी आवाज से नहीं पढ़े [सू. अ. ८।२४]।

अनध्याय— बिना ऋतु के (वर्षाकाल के) विद्युत चमकने पर; दिशाओं में सूर्य का प्रकाश फैला न होने पर [चक्रपाणि के मत से दिशाओं में अग्निदाह होने पर], अग्निदाह होने पर [पास-पड़ोस में आग लग जाने पर], भूकम्प आने पर, किसी बड़े उत्सव के समय, उल्का पात के समय, चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण होने पर, चन्द्रमा की तिथि के लुप्त होने पर; सन्ध्या काल में नहीं पढ़ना चाहिये। (सू० अ० ८।२४)[१]।

---

१ ऐसा ही निर्देश सुश्रुत सु० सू० २ तथा काश्यप संहिता के विमान स्थान में आया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनयनविधि

इस संस्कार के द्वारा शिष्य गुरु के पास रहने का अधिकारी होता है। उपनयन-समीप में लाना गुरु के समीप में रहना ही इस विधि का उद्देश्य है। इस विधि के दो भाग हैं, एक होमविधि और दूसरा अनुशासन या उपदेश विधि। इसमें प्रथम होम विधि हैं—

होमविधि में—पूर्वोक्त शिष्य गुणों से युक्त, अध्ययन के लिये आये हुए तथा गुरु की सेवा में तत्पर शिष्य को आचार्य कहे, कि–सूर्य के उत्तरायण काल शुक्लपक्ष, प्रशस्ततिथि, पुष्य, हस्त, श्रवण-अश्विनी इन नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र के साथ कल्याणकारक भगवान चन्द्रमा का योग होने पर, शुभकरण, और अनुकूल मुहूर्त्त में मुण्डन करवा के, स्नान करके, पूर्व दिन और उस दिन भी उपवास रहकर, कषाय वस्त्र पहिनकर; हाथों में गन्ध द्रव्य लगाकर, समिधा, अग्नि, घी, गोबर आदि लेपन द्रव्य, जलपूर्ण घट, पुष्पमाला, गजरे, दीपक, अघटित और घटित सोना चांदि-रत्न-मोती-मूंगा-वस्त्र-परिधि (हवन कुण्ड के चारों ओर गाड़े जाने वाले एक एक हाथ के पलाश आदि के दण्ड), कुश, लाजा, सरसों, अक्षत, मालारुप में गुथे तथा बिना गुथे-खुले सफेद फूल, पवित्र खाद्य पदार्थ और घिसा चन्दन आदि गन्ध द्रव्य लेकर उपस्थित हो जाना। शिष्य को भी ऐसा ही करना चाहिये।

शिष्य को उपस्थित देखकर समतल पवित्र पूर्व या उत्तर की ओर ढलाव वाले स्थान पर चार हाथ की चौकोर भूमि (वेदी) को गोबर और जल से लीपकर, कुशा विछाकर चारों दिशाओं में पलाश आदि दण्डों की परीधि से भली प्रकार घेर कर यथोक्त चन्दनादि द्रव्यों से अलंकृत तथा भक्ष्यादि द्रव्यों से सुशोभित कर; ढाक, हिंगोट, गूलर या महुए की समिधाओं से अग्न्याधान करने के पीछे, पूर्वाभिमुख एवं पवित्र होकर वेदारम्भ विधि के अनुसार आशीर्वादात्मक मंत्रोद्वारा ब्रह्मा, अग्नि, धन्वन्तरि, प्रजापति, अश्विनीकुमार, इन्द्र और सूत्रकार ऋषियों के नाम से स्वाहा पूर्वक मधु और घृत से अग्नि में तीन तीन आहुतियाँ दे।

शिष्य भी गुरु का अनुकरण करे—वह भी साथ साथ में आहुतियां दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवन के पीछे अग्नि को अपने दाहिने कर के (तीन) परिक्रमा दे। परिक्रमा के पीछे ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करावे और आये हुए वैद्यों का सन्मान करे।

अनुशासन—अब इस शिष्य को अग्नि, ब्राह्मण और वैद्यों के सामने उपदेश दे–तुमको यहाँ ब्रह्मचारी, श्मश्रुधारी, सत्यवादी, अमांस सेवी, पवित्र भक्ष्यसेवी, मत्सर्यरहित, अस्त्रधारी होकर रहना है, मेरे कहने पर केवल राजविरोधि कार्य, हत्याकार्य, अतिशय अधर्मकार्य और अनर्थकर कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य से मुख नहीं मोड़ना चाहिये, तुमको हमेशा मुझे आत्मसमर्पण कर मुझको अपना प्रधान मानते हुए, मेरे को जो प्रिय और हित हो उसी के अनुसार चलते हुए रहना है। मेरे साथ तुमको पुत्र की तरह, भृत्य की तरह, याचक की तरह व्यवहार करते हुए रहना है। तुम्हें उत्सेक (थोड़ी सी सफलता मिलने पर फूल जाना) से रहित, सावधान, एकाग्र मन, विनीत, विचार शील, और असूया रहित होना चाहिए। विना आज्ञा के इधर उधर घूमने नहीं जाना चाहिए, आज्ञा लेकर बाहर जाने पर भी सबसे पूर्व आचार्य के काम की चीज़ लाने का प्रयत्न यथा शक्ति करना चाहिये।

कर्म (चिकित्सा) में सिद्धि, अर्थार्जन में सफलता, कीर्त्तिलाभ और मृत्यु के बाद स्वर्ग की इच्छा रखते हो, तो तुमको ब्राह्मणों पर विशेष दृष्टि रखते हुए प्राणिमात्र के कल्याण की कामना करनी चाहिए। प्रतिदिन उठते बैठते अपनी पूर्ण शक्ति के साथ रोगियों को आरोग्य देने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने प्राणों तक के लिए भी रोगियों से द्रोह नहीं करना चाहिए; मन से भी पर स्त्री या किसी भी प्रकार की पर सम्पत्ति को लेने की इच्छा नहीं करनी चाहिए। विनय भरी–समय और सुसंस्कृत वेश भूषा में रहना चाहिए। मद्यशालाओं में आना जाना, पाप आचरण तथा पापियों का संग नहीं करना चाहिए। बात चीत में कोमल, निर्मल, धर्म संगति, पुनीत, सत्य-सुखकर-हितकर-परिमित शब्दों का व्यवहार करना चाहिए, देश-काल का विचार करना चाहिए, स्मृति सम्पन्न होना चाहिए, ज्ञानोन्नति के साधनों को जुटाने में हमेशा प्रयत्नशील रहना चाहिए। उन लोगों की कभी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए, जिनसे राजा द्वेष रखते हों या जो राजा से द्वेष रखते हों, जिनसे महाजन द्वेष करते हैं या जो महाजनों से द्वेष करते हों उन सबको चिकित्सा से अलग रहना चाहिए, जिनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचरण और उपचर्याविधि अतिशय विकृत दूषित और दुःखकर हो, जिन्होंने अपनी बदनामी का प्रतिकार नहीं किया है या जो मरणासन्न हैं, उनकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त उन स्त्रियों की भी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए, जिनके पति या कोई संरक्षक पास में उपस्थित न हों। पति या संरक्षक की अनुमति के विना स्त्री से दी कोई भी वस्तु कभी नहीं लेनी चाहिए।[1]

रोगी के घर में प्रवेश करते समय तुमको पहिले सूचना देकर-आने की अनुमति प्राप्त होने पर किसी पुरुष को साथ में लेकर अपनी वेश भूषा को ठीक रखते हुए, शिर को नीचा करके, सब बातों का स्मरण रखते हुए, स्थिर मन से सोच सोच कर बुद्धि पूर्वक सब कामों को ठीक से करते हुए, प्रवेश करना चाहिए।[2] प्रवेश करने के पीछे रोगी और रोगी के उपकार सम्बन्धि बातों के अतिरिक्त अन्य किसी बात पर मन, वाणी और बुद्धि तथा इन्द्रियों को नहीं लगाना चाहिए। रोगी के घर की बातों को बाहर नहीं प्रगट करना चाहिए। रोगी के आयु ह्रास को जानते हुए भी किसी ऐसी जगह नहीं करना चाहिये, जहाँ कहने से रोगी या उसके किसी अन्य सम्बन्धी को चोट पहुँचे।

पण्डित होते हुए भी अपने ज्ञान के विषय में अधिक डींग नहीं मारनी चाहिए, क्योंकि आत्म प्रशंसा करनेवाले आप्त पुरुष से भी लोग बहुत घबराने या ऊबने लगते हैं। आयुर्वेद का पार नहीं है, इसलिए निरन्तर तत्परता से

---

१ काश्यप संहिता में स्त्रियों के विषय में विशेष अनुशासन है, यथा—रोगियों के घरों में स्त्रियों या दासियों के भी साथ ठिठोली या हँसी मजाक़ नहीं करना चाहिए। इनका नाम सम्मान के साथ लेना चाहिये। इनके साथ अधिक व्यवहार या प्रेम न रक्खे। पति की विना जानकारी के स्त्रियों से कुछ न ले। विना सूचित किए अन्दर न जाये। प्रेम करती हुई स्त्री की उपेक्षा करे। एकान्त में स्त्री के साथ न बैठे।

नग्न अवस्था में स्त्री को न देखे, न हँसे, स्वयं प्रेम करती हो तो उसकी उपेक्षा कर दे। घर के दोषों को बाहर न कहे। काश्यप, विमान।

२ सुश्रुत संहिता में विशिखानुप्रवेशनीय अध्याय (सूत्र. अ. १०।३) में भी इसी प्रकार का आदेश शिष्य को दिया हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें लगा रहना चाहिए। सारा ही संसार बुद्धिमानों के लिए गुरु और मूर्खों के लिए शत्रु है। इसलिए बुद्धिमान को सब बात देखकर शत्रु की भी उत्तम यश, जीवन, पुष्टि और जनता की दृष्टि से हितकर सीख को सुनना और मानना चाहिए।

इसके बाद यह कहे कि देवता, अग्नि, द्विजाति, (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य), गुरु, वृद्ध, सिद्ध और आचार्यजनों के साथ तुमको हमेशा अच्छा वर्त्ताव करना चाहिए। उनके साथ ठीक व्यवहार करते रहने पर यह अग्नि, गन्धादिक द्रव्य तथा पूर्वोक्त देवगण तुम्हारा कल्याण करें, इनके विपरीत आचरण करने पर अमंगल करें। आचार्य के यह कहने पर शिष्य भी ठीक है, ऐसा कहकर स्वीकृति सूचक वाक्य कहे। नियमानुसार कार्य करे तो पढ़ाना चाहिए अन्यथा नहीं पढ़ाना चाहिए।[3]

तद्विद्यसम्भाषा—(आपस में बात-चीत) वाद विवाद से (उस विषय के) पूर्ण ज्ञान की इच्छा और स्पर्धा उत्पन्न होती है, चतुरता आती है; बोलने का अभ्यास बढ़ता है; नाम होता है; पहिले सुने हुए विषय में यदि संशय रह गया हो तो पुनः उस विषय के सुनने से सन्देह निकल जाता है; ज्ञान में सन्देह न भी हो तो और अधिक दृढ़ निश्चय हो जाता है, कभी न सुनी हुई कुछ नई बात भी कानों में पड़ जाती है और आचार्य शुश्रुषा परायण शिष्य से प्रसन्न होकर रहस्य माने जाने वाली जिस बात को अवसर से बतलाता है, उसको भी परस्पर वाद विवाद करते समय प्रतिवादी को पकड़ में लेकर जीतने की स्पर्धा से कह देता है—इन्हीं सब कारणों से चतुर जन वाद विवाद योजना की–शास्त्रार्थों की प्रशंसा करते हैं। [वि. अ. ८।१५]।

---

३ १–सुश्रुत में तो कहा है "अतोऽन्यथा ते वर्त्तमानस्याऽधर्मोभवति, अफला च विद्या; न च प्राकाश्यं प्राप्नोति ॥ सु. सू. अ. २।

२–तैत्तरीयोपनिषद् में भी स्नातक को अनुशासन दिया है,–इसी तरह वेदारम्भ (उपनयन) में आचार्य शिष्य को उपदेश देते समय कहता है" यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयायंसा ब्राह्मणः तेषा त्वयाऽसनेन भवितव्यम् ॥ तैत्तरीय प्रपा ६। अनु ११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पूर्ण शास्त्र को पढ़ने के बाद, शास्त्र की दृढ़ता में, कहने के सौन्दर्य में, अर्थ को भली प्रकार समझने में और व्याख्यान या प्रवचन शक्ति में बारम्बार अच्छी प्रकार प्रयत्न करना चाहिये। (च. वि. अ. ८)। इसलिये औषधि ज्ञान के सम्बन्ध में निर्देश दिया है कि बन में बकरी पालने वाले, भेड़ चराने वाले, पशु रखने वाले तथा अन्य जंगली लोग जो कि औषधियों को नाम और रूप से पहिचानते हैं, उनसे इनको सीखे। (सू. अ. १)।

सम्भाषा परिषत् के नियम—वैद्य की वैद्य के साथ ही बातचीत होती है। यह बातचीत दो प्रकार की है—१–मिलकर–मित्रता पूर्वक बात चीत करना और २–द्वेष पूर्वक–हार-जीत की दृष्टि से बातचीत–विवाद करना। इसमें मिलकर-मित्रता पूर्वक बात चीत–ज्ञान-विज्ञान-वचन-प्रतिवचन की शक्ति से युक्त; क्रोध रहित–जो विद्या को दिखाना न चाहता हो, निन्दा न करता हो, विनीत तथा नम्रता का आदर करने वाला हो, क्लेश को सहने वाले, प्रिय-मीठा बोलने वाले के साथ मित्रता पूर्वक (अनुलोम संभाषा) बात चीत होती है। इस प्रकार के व्यक्ति के साथ बात चीत करते समय विश्वास के साथ कहना चाहिये और विना किसी हिचकिचाहट के पूछना भी चाहिए। यदि यह कुछ पूछे तो स्पष्ट कहना चाहिये; मेरी त्रुटी होगी या मैं पकड़ा जाऊंगा इसका डर न करे। यदि इसकी कहीं पर भूल मिल जाये तो खुश मत हो; दूसरों में निन्दा न करे। विना जाने हुए अर्थ या विषय का वर्णन न करे। ठीक प्रकार नम्रता से विनीत भाव दिखाये, इसके साथ बर्त्ताव में सावधानी-बरते–ध्यान पूर्वक बर्त्ताव करे।

प्रतिलोम संभाषा–इसके विपरीत दूसरे के साथ झगड़ते हुए बातचीत करे–शास्त्रार्थ करे। इसके साथ झगड़ा या वाद विवाद करने में मेरा कल्याण होगा–प्रतिष्ठा होगी–यह समझ कर ही विगृह्य सम्भाषा में पैर रक्खे। विवाद प्रारम्भ करने से पूर्व ही परिषद्–बैठे हुए लोगों को देख लेना चाहिये। क्योंकि ठीक प्रकार से की हुई परीक्षा ही बुद्धिमानों को कार्य प्रारम्भ करने का या कार्य से हाथ खींच लेने का निर्णय करा देती है। इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति परीक्षा की प्रशंसा करते हैं। परीक्षा करते समय विवाद के गुणों की तुलना अपने में तथा प्रतिपक्षी में करे। ये गुण—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रुत—(सुना-पढ़ा), विज्ञान, धारण, प्रतिभा (तुरन्त सूझ), वचन शक्ति (बोलने की सामर्थ्य), हैं, ये श्रेष्ठ गुण हैं। दोष—क्रोध करना, अवैशारद्य-मूढता, डर जाना, स्मरण न रखना, असावधानता आदि दोष हैं। इन दोनों गुण और दोषों को अपने में तथा प्रतिपक्षी में तोले। यदि अपने को उससे श्रेष्ठ समझे तभी विगृह्य सम्भाषा में पैर रखे; नहीं तो चुप हो जाये।

प्रतिपक्षी तीन प्रकार का हो सकता है, अपने से श्रेष्ठ, अपने से हीन अथवा अपने बराबर। परिषत्-सभा दो प्रकार की होती है, १-ज्ञानवानों की ओर २-मूर्खों की। यही परिषत्-फिर तीन प्रकार की है, १-मित्र परिषत्, २-उदासीन परिषत् और ३-शत्रु परिषत्। इनमें शत्रु परिषद् में अथवा मूढ परिषद् में ज्ञान विज्ञान-वचन-प्रतिवचन शक्ति से युक्त होने पर भी किसी से भी, किसी भी रूप में वाद विवाद-शास्त्रार्थ नहीं किया जाता। मूढ़ या मित्र परिषद् में या उदासीन परिषद में—प्रतिपक्षी यदि ज्ञान-विज्ञान-वचन-प्रतिवचन शक्ति से श्रेष्ट भी हो, परन्तु यदि इसकी प्रतिष्ठा या ख्याति न हो, बड़े लोग यदि इससे द्वेष करते हों, तो इसके साथ विवाद किया जा सकता है। इसके साथ विवाद करते समय-समस्त (समास वाले) लम्बे वाक्य बरतने चाहियें। बहुत प्रसन्न होकर बार-बार हँसते हुए और दूसरों को दिखाते हुए, ईंगित इशारा करते हुए (आकारैः ब्रुवता—मुख बनाकर) इसको बोलने का ही समय नहीं देना चाहिए। कठिन शब्द बोलते हुए (यदि वह कुछ पूछे) कहना चाहिए कि नहीं कहते; अथवा तेरी प्रतीज्ञा हीन है [तू हार गया]। यदि वह पुनः शास्त्रार्थ के लिए ललकारे—तब उसको कहना चाहिए कि अभी एक साल और पढ़ो, तेरे लिए इतना ही बस है, प्रतिपक्षी के एक बार पकड़ में आ जाने पर—मार लिया-मार लिया का शोर कर दे। इसको फिर अवसर नहीं देना चाहिए। कुछ आचार्यों का कहना है कि अपने से श्रेष्ठ के साथ भी विगृह्य सम्भाषा में ऐसा करना चाहिए। परन्तु अपने से श्रेष्ठ के साथ विगृह्य सम्भाषा को भले व्यक्ति पसन्द नहीं करते।

अपने से हीन के साथ या अपने बराबर वाले के साथ जब विगृह्य सम्भाषा करनी हो तब मित्र परिषद् में ही करनी चाहिए अथवा उदासीन परिषद् में करनी चाहिये। उदासीन परिषद के व्यक्ति सुनने में दत्त चित्त, श्रवण, ज्ञान-विज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपधारण-बचन-प्रतिबचन शक्ति से युक्त हों तब विगृह्य सम्भाषा में प्रतिपक्षी के गुण और दोषों की परीक्षा बहुत ही सावधानी से करनी चाहिए। जहाँ पर या जिस विषय में प्रतिपक्षी को अपने से श्रेष्ठ समझे उस विषय में विवाद न करे, उसे बिना किसी प्रकार का आभास कराये–उस विषय से बच जाये–छिटक जाये। जहाँ पर इसको अपने से कमजोर समझे वहां पर इसको पकड़े। प्रतिपक्षी को विशेषतः जो अपने से हीन या कमजोर हो उसको पकड़ने के या परास्त करने के निम्न उपाय हैं–यथा—सुनी हुई बात को जो याद न रख सके, उसको बड़े बड़े सूत्रपाठों से परास्त करे, विज्ञान से हीन व्यक्ति को कठिन शब्द बोलकर, वाक्य को जो याद न रख सके उसको समास वाले-जटिल-लम्बे सूत्र समूह रूपी वाक्य दण्डों से, प्रतिभा हीन व्यक्ति को अनेक अर्थ वाले एक ही प्रकार के शब्द कह कर, बोलने की शक्ति से हीन व्यक्ति को आधे कहे वाक्य को ही पकड़ कर, जो चतुर न हो उसे लज्जा दिला कर, क्रोधी को थका कर, डरपोक को डरा कर, असावधान को पकड़ कर परास्त करे। इन्हीं उपायों से अपने से अवर को भी परास्त करे।

प्रतिपक्षी को पकड़कर युक्ति से कहै, और प्रतिपक्षी की युक्तियुक्त बात को स्वीकार कर ले। परस्पर वाद विवाद की भाषा कई बार द्रोह-दुश्मनी का कारण बन जाती है। क्रोधी व्यक्ति के लिये सब कुछ करना सम्भव है, वह सब कुछ कह सकता है, इसलिये विद्वान व्यक्ति बुद्धिमानों की सभा में कलह-झगड़ा पसन्द नहीं करते। शास्त्रार्थ प्रारम्भ करने से पूर्व इतना कर लेना चाहिये—

परिषद् से मिलकर विवाद का विषय ऐसा चुनना चाहिए—जिसका कि अपने आप खूब अभ्यास किया हो, जिसमें अपना प्रवेश भली प्रकार हो, अथवा यदि दूसरे का विषय बहुत ही कठिन हो या सभा का रुख अपने अनुकूल दिखाई न दे, तब सभासदों से मिलकर कह देना कि इस सभा में बोलना हमारे लिए असम्भव है; यह तो तेरे घर की सभा ही है, इसमें इच्छानुसार अपनी मर्जी से, अपने अनुकूल विषय-वादमर्यादा-शास्त्रार्थ के नियम तुम बनाओगे-ऐसा कहकर चुप बैठ जाये। (वि० अ० ८।१९-२५)

इसके आगे कथनीय, अकथनीय बातों का निर्देश है इस प्रकार करने से पराजित होता है। इस सबका उल्लेख न्यायदर्शन के आधार पर किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें वही नियम या सिद्धान्त वाद-विवाद के हैं जो कि न्यायदर्शन में निर्णीत हैं।

चरक के समय तक शास्त्रार्थ में न्यायदर्शन का सिद्धान्त (जल्प और वितण्डा के नियम) बरते जाते थे। बौद्धकाल में विशेषतः अशोक से पूर्व एवं उसके पीछे भी विवाद की प्रथा बहुत जोर पर थी। शास्त्रार्थ से विषय का स्पष्टीकरण भली प्रकार होता है, इस बात को कवि बाण ने भी अपने हर्षचरित में दिवाकरमित्र के आश्रम में शिष्यों को अध्ययन का वर्णन करते हुए स्पष्ट किया है; यथा—

प्रत्युचरद्भिश्च संशयानैश्च निश्चिन्वद्भिश्च व्युत्पादयद्भिश्च विवदमानैश्चाभ्यस्यद्भिश्च व्याचक्षाणैश्च शिष्यतां प्रतिपन्नैः............अष्ठम उच्छ्वास—

इसका स्पष्टी करण करते हुए डाक्टर वासुदेवशरण जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि "व्युत्पादन के बाद की और उससे भी महत्त्व की सीढ़ी शास्त्रार्थ की थी (विवदमानैः)। शास्त्रार्थ के द्वारा एक व्यक्ति अन्य समस्त विद्वानों को सत्या सत्य का निर्णय करने के लिए चुनौती देता है। शास्त्रार्थ पण्डित के लिए सबसे ऊँची और कठिन स्थिति है, और प्राचीन काल में इस पद्धति का बड़ा मान था। राजा के लिए जो महत्त्व युद्ध का था, वही विद्वान् के लिए शास्त्रार्थ का था। प्राचीन गुरुकुलों में विशेषतः गुप्तकाल में और उसके पीछे के विद्याकेन्द्रों में या दार्शनिक क्षेत्र में विलक्षण और प्रखर बुद्धि का विकास इसी प्रकार से किया जाता था। अंसग, वसुवन्धु, धर्मकीर्त्ति, दिङ्नाग, कुमारिल, शंकर, मण्डन मिश्र (और आधुनिक काल के महर्षि दयानन्द सरस्वती) आदि दिग्गज विद्वान इस प्रकार के गम्भीर शास्त्र-परिमार्जन के फलस्वरूप ही लोक में प्रकाशित हुए।" (हर्षचरित, एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १६३)।

इसलिये शिष्य को शास्त्रार्थ-विवाद के दाँव-पेंच जानने, आवश्यक होने से इसका वर्णन हुआ। गुप्तकाल के समय यह ज्ञान बहुत आवश्यक था। चरक में रोगाभिसर वैद्यों का वर्णन करते हुए लिखा है कि इन वैद्यों ने किसी से कोई विवाद या शास्त्रार्थ किया हो, इसका भी पता नहीं चलता (न चैषामाचार्यः शिष्यो वा स ब्रह्मचारी वैवादिको वा कश्चित्प्रज्ञायते—सू० अ० २९।९)। इससे स्पष्ट है कि शास्त्रार्थ उस समय का एक अंग था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य को ज्ञान दो प्रकार से करवाया जाता था—एक शास्त्रज्ञान, और दूसरा प्रत्यक्षज्ञान, प्रत्यक्षज्ञान को ही सुश्रुत में 'योग्या' कहा है। योग्या का अर्थ कर्म अभ्यास है। शिष्य को चिकित्साज्ञान अपने हाथ से करना चाहिये। इसके लिये गृह (व्रणितागार-आतुरगृह) बनते थे।

व्रणितागार या आतुरगृह

गृह निर्माण में कुशल पुरुष को चाहिए कि वह सबसे पूर्व सर्वोत्तम मकान बनाये; मकान मजबूत हो; सीधी तेज हवा का झोंका न आये; वायु का प्रवेश घर में एक ओर से होता हो; पर्य्याप्त लम्बा चौड़ा हो, जिसमें मनुष्य भली प्रकार से चल फिर सके, अपने से बड़े किसी मकान से मिला या ढँपा न हो; धुँआ, तेज घाम, वर्षा और धूल जहां न जा सके; अहितकर शब्द, स्पर्श, रुप, रस और गन्ध की जहाँ गन्ध भी न हो, उदपान (पानी का स्थान-प्याऊ कुआँ आदि), उखल, मूसल, उपकरण, वर्चस्थान (टट्टीघर), स्नान भूमि और महानस (रसोई) से युक्त हो।

भृत्य—इसके पीछे चरित्र, पवित्रता, सदाचार, स्नेह, निपुणता, अनुकूलता से युक्त; रोगी की परिचर्या में कुशल, सब प्रकार के आवश्यक कार्यों को भली प्रकार जानने वाले, पाचक (भोजन बनाने वाले); स्नापक (स्नान कराने वाले), संवाहक (पगचप्पी करने वाले), उत्थापक (उठाने-बिठाने वाले), संवेशक (लेटाने वाले); औषध तैय्यार करने वाले नौकर चाकर रहें; ये नौकर कामों में अप्रतिकूल रहें-कही हुई बात को मानने वाले हों।

साथी—इसके साथ में गाने बजाने वाले, स्तोत्रपाठ, श्लोकपाठ, कथावाचक; कहानी कहने वाले, इतिहास और पुराण सुनाने में निपुण, मनोभावों को समझने वाले, देशकाल को जानने वाले; लोकानुमत परिषद (मुसाहिब-बैठकीबाज) भी रक्खे।[१]

---

१ सुश्रुत में साथियों के रखने का लाभ बताया है—तस्मिन् सुहृद्भिरनुकूलैः प्रियवदैरुपास्यमानो यथेष्टमासीत्—

'सुहृदोविक्षिपन्त्याशुकथाभिर्व्रण वेदनाः।
आश्वासयन्तो बहुशस्त्वनुकूलाः प्रियंवदाः॥ सू० १९.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोने बैठने आदि स्थानों में ऐसा प्रबन्ध करे कि इनके पास ही में सुराही (या हाथ धोने का पात्र-गंगासागर) पीकदान रहे; चारपाई या पलंग पर तथा बैठने के स्थान चौकी आदि पर अच्छा गद्दा (आस्तरण) और चादर (उत्तरप्रच्छद) तथा तकिया (उपधान) लगा हो।

पशु-पक्षी—बटेर, कपिञ्जल, खरगोश, हरिण, कालपुच्छक, मृग मातरक, मेढ़ा, दूध देने वाली, सरल स्वभाव की (मरखनी नहीं), निरोगी (अनातुर), जिसका बछड़ा जीता हो गाय भी वहां पर रक्खे। इनके लिए भली प्रकार से खाने-पीने का तथा सोने बैठने का प्रबन्ध करे।

अन्य सामग्री—पात्री (गिलास-कटोरी), आचमनीय (चम्मच), उदकोष्ट (पानी की टंकी), मणिक (मटका, गगरा); पिठर (थाली या पतीली), पर्योग (कड़ाही), कुम्भी (बड़ा मटका), भृंगार (गंगा सागर या सुराही), दृषद् (शिला) शिला पुत्र (लोढ़ा), कुश हस्तक (झाडू), कुण्ड (बड़ी टंकी), शराब (प्याला सकोरा), दर्वी (कड़छी), कट (चटाई), उदञ्चन (जलपात्र में से पानी निकालने का पात्र), परिपचन (तवा), चेल (वस्त्र), प्रतिग्रह (पीकदान), मान माण्ड (मापने के पात्र) यह सामग्री भी आतुरागार में रहनी चहिए। इस सामग्री का मुख्य सम्बन्ध पाकशाला से है, इसको आतुर गृह का एक भाग ही समझना चाहिए।

इन आतुर गृहों में शिष्य को कर्माभ्यास प्रत्यक्ष रूप दिखाया जाता था। जो वैद्य शास्त्र को भली प्रकार जानते हैं, कर्मज्ञान में निपुण हैं, जिनका हाथ साफ है, उनको सदा नमस्कार किया है[1]। इस प्रकार का कर्माभ्यास बिना आतुरगृहों के मिलना सम्भव नहीं। यह सत्य है कि चरक संहिता में आत्रेय ने आतुरगृह का वर्णन स्पष्टरूप से नहीं किया, इसका कारण उनका विचरण करना है, जिसमें अपनी शिष्य मण्डली के साथ तथा अन्य ऋषियों के साथ घूमते थे।

घरों में और आतुरलयों में पशुपक्षि रखने की प्रथा बहुत पहिले से है। घरों में तो पशु पक्षी शोभा के लिए रक्खे जाते थे [देखिये मृच्छकटिक]।

१ "ये तु शास्त्र विदोदक्षाः शुचयः कर्म कोविदाः।
जितहस्ता जितात्मनास्तेभ्यो नित्यं कृतं नमः॥ चरक. सू. अ. २९।१२.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आतुरालयों में पशु-पक्षि शोभा के साथ साथ चिकित्सा कर्म के उपयोग के लिये रक्खे जाते थे[१]। इसलिये जिस प्रकार गाय का महत्त्व उपहार और पूजा में था उसी प्रकार इन पशु पक्षियों का उपयोग शोभा और चिकित्सा में होता था।

सूतिकागार (Maternity Home).

सूतिकागार का स्थान—जिस भूमि पर अस्थियां, रेती (भूरभूरी मिट्टी), कपाल (मिट्टी के ठीकरे-टूटे घड़े), न हों, जिस भूमि में रूप-रस-गन्ध उत्तम हो उसमें, पूर्व की द्वार या उत्तर की द्वार का घर बनाये। यह घर बिल्व की लकड़ियों से, तिन्दुक की, हिंगोट की, भिलावे की, वरणा की या खैर की लकड़ियों का बना होना चाहिये। अथर्ववेद को जानने वाले ब्राह्मण जिन अन्य लकड़ियों को बतायें, उनसे घर को बनाये।

इस घर में वस्त्र, आलेपन, आच्छादन-बिछाने-ओढाने के वस्त्र, किवाड़ (अपिधान), ओट करने के लिये परदा-ये सब वस्तुवें तैयार रक्खे। मकान को बनाने की विद्या को जानने वाला व्यक्ति अग्नि-जल का स्थान घर में बनाये,

१ आश्चर्यं भोः इहापि सप्तमे प्रकोष्ठे सुश्लिष्टविहङ्गवाटी सुखनिषण्णान्यन्योन्यचुम्बनपराणि सुखमनुभवन्ति पारावत मिथुनानि। दधिभक्तपूरितोदरो ब्राह्मण इव सूक्तं पठति पञ्जरशुकः। इयमपरा संमाननालब्ध प्रसरेव गृहदासी अधिकं कुरकुरायते मदनसारिका। अनेकफल रसास्वाद प्रहृष्ट कण्ठा कुम्भदासीव कूजति परपुष्टा। आलम्बिता नागदन्तेषु पञ्जरपरम्परा। योध्यन्ते लावकाः। आलाप्यन्ते कपिञ्जलाः। प्रैष्यन्ते पञ्जरकपोताः। इतस्ततो विविधमणि चित्रित इवायं सहर्षं नृत्यन्रविकिरण संतप्तं पक्षोत्क्षेपैर्विधुवतीव प्रासाद गृह मयूरः। इतः पिण्डिकृता इव चन्द्रपादाः पदूगतिं शिक्षमाणानीव कामिनीनां पश्चात्परिभ्रमन्ति राजहंस मिथुनानि। एतेऽपरे वृद्ध महल्लका इव इतस्ततः संचरन्ति गृहसारसाः। आश्चर्य भोः प्रसारणं कृतं गणिकया नानापक्षि समूहैः। यत्सत्यं खलुनन्दनवनमिव मे गणिकागृहं प्रतिभासते॥ मृच्छकटिक.

सन्निकृष्यंस्ततः कुर्याद् राज्ञस्तान् मृगपक्षिणः।
वेश्मनोऽथविभूषार्थं रक्षार्थं चात्मनः सदा॥" सु. क. अ. १।३४.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊखल (कूटने-पीसने) का स्थान, मल त्याग का स्थान, स्नान गृह, महानस-रसोई बनाये, यह घर ऋतु के अनुकूल सुखदायक होना चाहिये[3]।

सामग्री—सूतिकागार में घी, तैल, मधु, सैन्धव; वसा, सौवर्चल; काल लवण, विड्लवण; विडङ्ग, कुष्ठ; देवदारु; सोंठ, पिप्पली, पिप्पलीमूल; गज-पिप्पली; मण्डूकपर्णी; इलायची; लांगली; वच; चव्य, चित्रक, करंज; हींग, सरसों; लहसुन; कतक; चावलों की कणियां; चावलों के टुकड़े; कदम्ब, अलसी; बल्वज, भूर्जपत्र, कुलत्थी, मैरेय, सुरा, आसव पास में रक्खे।

दो पत्थर, दो छोटे हल्के मूसल; दो ऊखल; गधा और बैल या सांड; दो सूइयां और उनके रखने के घर; ये सूइयां नोकदार सोना और चाँदी की बनी

---

३ सुश्रुतमें—"नवमेमासिसूतिकागारमेमां प्रवेशयेत् प्रशस्ते तिथ्यादौ। तत्रारिष्टं ब्राह्मण क्षत्रिय-वैश्यशूद्राणां श्वेत रक्त पीत कृष्णेषु भूमिप्रदेशेषु विल्वन्यग्रोधतिन्दुमल्लातक निर्मितसर्वागारं यथा संख्यं तन्मयपर्यङ्कं समुपलिप्तभित्ति सविभक्तपरिच्छदं प्राग्द्वारं दक्षिणद्वारं वाऽष्टहस्तायतं चतुर्हस्तविस्तृतं रक्षामंगल-संपन्न विधेयम्॥ सु. शा. अ ८।५।

कादम्बरी में भी सूतिकागार का वर्णन आया है—"तत्र च सुकृत रक्षा-संविधानेनव सुधानुलेपनधवलिते प्रज्वलित मंगलप्रदीपे–पूर्णकलशाधिष्टित-पक्षके,............आबिद्धविविधौषधिमूलमंत्र पवित्रम् अवस्थापितरक्षाशक्ति-वलयम् इतस्ततो विप्रकीर्णगौरसर्षपम्......आसक्तहरिताष्टपल्लवम्;.......गर्भो-चितं शयनतलमधिशयानां............शीतलप्रदीपैर्गोरोचनामिश्र गौरसर्षपैश्च सलिलाञ्जलिमिश्राचारकुशलेनान्तःपुरजरतीजनेन क्रियमाणावतरणक मंगलम्, ...विलासवतीं ददर्श।

१–ततः क्रमेण समीहित गर्भदोहदसंपादन प्रमुदिता पूर्णे प्रसवसमये पुण्येऽहनि............विलासवती सूतमसूत। २–पार्थिवस्तु तनयाननयनदर्शन महोत्सवहृतहृदयोऽपि दिवसवशेन मौहूर्त्तिकगणोपदिष्टे प्रशस्तेमुहुर्त्ते निवारित निखिलपरिजनः शुकनासद्वितीयो...............सूतिकागृह मण्डल मंगलानि संपादयता पुरंध्रिवर्गेण समधिष्टितम्............अनेकवृद्धाङ्गनारब्धसूतिका मंगल गीतिका मनोहरम्......क्रियमान शिशुरक्षाबलिविधानम्......सूतिका गृहमदर्शत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होनी चाहिऐं। लोहे के बने शस्त्र; बिल्व के बने दो पलंग; अग्नि को जलाने के लिए तिन्दुक और हिंगोट की लकड़ियाँ; एवं बहुत सी स्त्रियां; जिन स्त्रियों ने बहुत से प्रसव किए हों; मैत्री परायण-स्नेह भाव रखने वाली; निरन्तर प्रेम भाव वाली; सेवा कार्य में कुशल; तुरन्त सूझ वाली; स्वभाव से ही ममतावाली; आलस्य न करने वाली; दुःख को झेलने वाली होनी चाहियें। अथर्व वेद को जानने वाले ब्राह्मण [दैव चिकित्सा-जप-होम-वलि-प्रायश्चित आदि कर्म जानने वाले] जो अन्य बतायें वह भी तथा वृद्ध स्त्रियां जो अन्य बतायें वह भी रखना और करना चाहिए।

कुमारागार

सूतिकागार की भांति बच्चों के रहने के लिये कुमारागार का भी उल्लेख चरक संहिता में है। वास्तु विद्या-घर निर्माण की विद्या को जानने वाला व्यक्ति प्रशस्त-देखने में रमणीय, प्रकाश युक्त, सीधी वायु के झोंके से बचा, एक पार्श्व से वायु प्रवेश होने योग्य, मजबूत; कुत्ते, शृगाल, पशु, गाय-भैंस आदि, दंष्ट्रि-बिल्ली-शेर-चीता आदि; चूहे, पतंग-मच्छर-कीट आदि से बचा हुआ, पानी-कूटने-पीसने का स्थान-मूत्र स्थान-मल स्थान, स्नान गृह-रसोई आदि पृथग् पृथक् ऋतु के अनुकूल बने हों, जिसमें प्रत्येक ऋतु के अनुसार सोने-बैठने के बिछौने की व्यवस्था हो; ऐसा घर बनाये। इस घर में भली प्रकार रक्षा विधि, बलि, मंगल, होम, प्रायश्चित करे, पवित्र, वृद्ध वैद्य; स्नेही मित्र वर्ग रहें [च. शा. अ. ८।६३]।

वस्त्रों को जन्तुघ्न बनाना—जो वस्त्र मल मूत्र आदि से खराब हो जायें, उनको भली प्रकार जौ, सरसों, अलसी; हींग, गुग्गुलु, वच, चोरक; हरीतकी, गोलोभी, जटामांसी, गुग्गुलु कटुरोहिणी-सांप की केंचुली से धूप देनी चाहिये। विशेषतः विस्तर के वस्त्रों को अवश्य धूप देनी चाहिये।

बच्चे के बिछाने के बिठाने के (गद्दी आदि); ओढ़ने के वस्त्र कोमल-हल्के-पवित्र गन्ध युक्त होने चाहिये। जिन वस्त्रों में पसीना, जूं आदि हो जाये; मल-मूत्र से बिगड़ जायें उनको हटा देना चाहिए। यदि नये दूसरे वस्त्र न हों तब इनको ही भली प्रकार धोकर अच्छी प्रकार धूप देकर-निर्मल करके, सूखा कर उपयोग में लाना चाहिए [च. शा. अ. ८।६४]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार से शिष्य को शास्त्र का सिद्धान्त ज्ञान और प्रत्यक्ष ज्ञान दोनों प्रकार से कराया जाता है। सुश्रुत संहिता में और चरकसंहिता में शिष्यों के अध्यापन कराने में अन्तर है। चरक संहिता में शिष्य गुरु के साथ बराबर घूमते रहते हैं सुश्रुत संहिता में शिष्य काशीराज के पास पहुंचकर वहीं पर रह कर शिक्षा लेते हैं; इनको विचरना नहीं पड़ता। चरक संहिता के उपदेष्टा निरभिमानी-वानप्रस्थी ऋषि हैं, उनके एक भी वचन में कहीं भी अभिमान की झलक नहीं है। सुश्रुत संहिता का उपदेष्टा राजा है; उसमें अभिमान की उक्ति है यथा—"मया तु प्रदेय मर्थिभ्यः प्रजाहित हेतोः"—मांगने वालों को प्रजाहित कामना से देना है, उपदेश देना नहीं। चरक में सर्वत्र उपदेश दिया है।

इसके सिवाय ज्ञान के लिये चरक संहिता में स्थान स्थान पर परिषदों का वर्णन होता है—परिषदों की परिपाटी उपनिषद् में भी आती है (श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानांसमितिमियाय—छान्दोग्य)। परिषदों में विषय का निर्णय होता है, इसी से चरक में कहा है कि वैद्य समूह-संशय को नष्ट करने वाला होता है। इसीलिये रसाहार विनिश्चय के लिये (सूत्र० २६ वां अध्याय) पुरुष की उत्पत्ति तथा रोग की उत्पत्ति का विचार (सूत्र० २६) तथा वात-पित्त-कफ का विचार (सूत्र० १२ अध्याय) ऋषि लोग मिलकर करते हैं। यह परिपाटी ज्ञान-तथ्य का निश्चय करने की थी। इसके अतिरिक्त आत्रेय और भरद्वाज का परस्पर शास्त्रार्थ भी शरीर स्थान (अध्याय ३ में) में वर्णित है, जहाँ पर भारद्वाज की शंकाओं का समाधान किया है, इसी प्रकार मैत्रेय की शंका का समाधान भी सूत्र स्थान (१० अध्याय में) में मिलता है।

सामान्यतः शिक्षण व्यवस्था दो प्रकार की है—एक में शिष्य पूछता है और आचार्य उत्तर देता है, उसका स्पष्टीकरण करते हैं। यथा विमान० अ० ३ में अग्निवेश का यह पूछना कि हे भगवन्—ज्वर रोगी को वैद्य लाग गरम पानी क्यों देते हैं। आचार्य इसका समाधान करते हैं। दूसरी विधि में गुरु स्वयं शिष्य को उपदेश करते हैं—यथा—हे सौम्य! नक्षत्र-ग्रहसमूह सूर्य चन्द्र-वायु-अग्नि और दिशाओं के अस्वाभिक वैकारिक भाव दीख रहे हैं (वि० अ० ३।४)। इस तरह के उपदेश में आचार्य समयानुसार या जैसा उनको जंचता था वैसा उपदेश करते थे। यह सब उपदेश ज्ञान वृद्धि के लिए होता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस परिपाटी में सब शिष्य प्रश्न करते नहीं दीखते, न सब शिष्यों को सम्बोधन करके आचार्य उपदेश करता है। सुश्रुत संहिता में तो स्पष्ट है कि सब शिष्यों ने मिलकर सुश्रुत को अपना प्रतिनिधि या अग्रणी चुना था—उसी को सम्बोधन करने को कहा था। चरक संहिता में ऐसी कोई बात नहीं मिलती। चरक संहिता में तो स्पष्ट है कि ऋषि के उपदेश में कोई अन्तर नहीं था (सू० अ० १।३२)। अथवा प्रिय होने से एक का नाम विशेष रूप में लिया जाता है; यथा भगवान् बुद्ध के उपदेश मुख्यतः आनन्द को सम्बोधन किये मिलते हैं।

वर्ण व्यवस्था जन्म से नहीं–अपितु गुण कम से—विद्या समाप्त होने पर वैद्य का दूसरा जन्म होता है, विना पढ़े किसी को वैद्य नहीं कहा जाता; जन्म से कोई वैद्य नहीं होता। विद्या समाप्त होने पर व्यक्ति में ब्राह्म या आर्ष सत्त्व का प्रवेश होता है; इसलिए वैद्य को द्विज कहा जाता है।[1]

द्विज का अर्थ द्विजन्मा है; जन्म से सब शूद्र उत्पन्न होते हैं (जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विजउच्यते–मनु)। वेदाभ्यास से ही वह ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य बनता है। इसी कारण इनको द्विज-द्विजन्मा कहते है। उपनयन संस्कार में—संस्कार का अर्थ ही अन्य गुणों का आधान करना है। आचार्य के पास रहने से उसमें गुण आते हैं, इसलिये वह द्विजन्मा या द्विज कहाता है।

शिष्य को गुरु के पास विद्या समाप्ति पर्यन्त रहना होत है। इसके पीछे भी उसे इसमें निरन्तर अभ्यास एवं ज्ञान वृद्धि करनी रहती है (सम्पूर्ण शास्त्र को पढ़ने के पीछे भी शास्त्र की दृढ़ता में; कहने के सौष्ठव में, अर्थ को भली प्रकार समझने में, व्याख्यान या प्रवचन शक्ति में बार बार अच्छी तरह प्रयत्न करना चाहिए (वि० अ० ८)।

---

१ विद्यासमाप्तौ भिषजो द्वितीया जातिरुच्यते।
अश्नुते वैद्यशब्दो हि न वैद्यः पूर्वजन्मना॥
विद्यासमाप्तौ ब्राह्मं वा सत्त्वमार्षमथापि वा।
ध्रुवमाविशति ज्ञानात्तस्माद् वैद्यो द्विजः स्मृतः॥ चि० अ० १।४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४

चरक संहिता में दार्शनिक विचार

सम्पूर्ण चरक संहिता में वेद सम्मत विचारों का प्रतिपादन है। वेद विरुद्ध विचार वालों को नास्तिक कहा है, तथा इस प्रकार की बुद्धि का त्याग करने को कहा है। जो लोग केवल प्रत्यक्ष को ही ज्ञान का आधार मानते हैं, उनको 'नास्तिक' कहा है। आत्रेय का कहना कि नास्तिक बुद्धि को छोड़ देना चाहिए [सू. अ. १०।६]।

उस समय भी कई प्रकार के उपाय ज्ञान के लिये प्रवृत्त थे। चरक में प्रत्यक्ष, अनुमान, युक्ति और आप्तोपदेश इन चार को ही परीक्षा का साधन बताया है; इन चार से की हुई परीक्षा अन्यथा नहीं होती। इनमें—

प्रत्यक्ष—आत्मा-इन्द्रिय-मन और अर्थ (विषय) इन चार का परस्पर सन्निकर्ष होने पर जो सत्य बुद्धि उस समय उत्पन्न होती है, वह प्रत्यक्ष है [सू. अ. १०।२०]।

आप्तोपदेश—तप और ज्ञान के बल से जो व्यक्ति रज और तम इन मानसिक दोषों से निवृत्त हो गये, जिनका कि भूत, भविष्य और वर्त्तमान तीनों कालों का निर्मल ज्ञान सदा ही अबाधित होता है; वे आप्त हैं; उनका वाक्य सदा संशय रहित होता है; वे सदा सत्य ही कहेंगे; [1]क्योंकि जो व्यक्ति रज और तम से छुट गये वे फिर झूठ क्यों कहेगें।

ऐसे लोगों से कहा हुआ वेद आप्तशास्त्र है; इसके सिवाय जो भी कोई वेद के अर्थों के अनुकूल; परीक्षकों से बनाया; सज्जनों से अनुमोदित, लोक के कल्याण के लिये प्रवृत्त हुआ शास्त्र रुप वाद होता है; वह भी आप्तशास्त्र-आप्त-वाक्य है [सू. अ. १०।२७]। इसी को आगे विमानस्थान में (अ. ८।४१) ऐतिह्य शब्द से कहा है।

---

१ कालीदास ने रघुवंश में कहा है—

पुरुषस्य पदेष्वजन्मनः समतीतं च भवच्च भावि च
स हि निष्प्रतिघेन चक्षुषा त्रितयं ज्ञानमयेन पश्यति ॥ रघुवंश. ८।७८.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्ति— का अर्थ योजना है। जिस बुद्धि द्वारा बहुत कारणों में योग होने से विषयों का ज्ञान होता है, वह युक्ति है; इसी बुद्धि से–तीनों कालों का ज्ञान होता है और धर्म-अर्थ काम की परीक्षा होती है। यथा जल; हल चलाना; बीज, ऋतु इनके संयोग से सत्य-अन्न उत्पन्न होता है; पृथ्वी-अप-तेज-वायु-आकाश और चेतना धातु के मिलने से गर्भ होता है।[1]

अनुमान—प्रत्यक्ष पूर्व (व्याप्ति ग्रहण पूर्व) ज्ञान से भूत, भविष्य, वर्त्तमान तीनों प्रकारका अनुमान होता है; यथा–गर्भ को देखकर मैथुन का (भूत काल का); बीज को बोया देखकर फल का अनुमान (भविष्य) और धूम को देखकर छिपी वह्निका (वर्त्तमान काल का) अनुमान होता है।

इन चार से की हुई परीक्षा अन्यथा नहीं होती। रोग परीक्षा में युक्ति की जरूरत नहीं मानी, वहाँ पर प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्तोपदेश इन तीन से ही परीक्षा करने को कहा है [वि. अ. ४।३]। यह तीन तरह की परीक्षा सांख्य-दर्शन सम्मत है यथा—

दृष्टमनुमानमाप्तवचनं च सर्वं प्रमाण सिद्धत्वात्।
त्रिविधं प्रमाणमिष्टं प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि ॥ सांख्य कारिका

चरक के विमान स्थान के आठवें अध्याय में न्यायदर्शन (गौतममुनि प्रणीत) का उल्लेख मिलता है और शरीर स्थान के प्रथम अध्याय में सांख्य-दर्शन का अच्छा परिचय आता है। मुख्यतः सांख्य और न्यायदर्शन इन दो का ही विषय चरक में आता है; कुछ झलक योग दर्शन की भी है। सामान्यतः आयुर्वेद या चरक ने किसी एक दर्शन को आधार नहीं माना है, उन्होंने सब दर्शनों से अपने लिये जो आवश्यक समझा उतना अंश ले लिया। साथ ही

१ युक्ति का अन्तर्भाव अनुमान में हो जाता है; इसी से आगे परीक्षा के साधन तीन ही बताये हैं–यथा-त्रिविधं खलु रोग विशेष विज्ञानं भवति; तद्यथा-आप्तोपदेशः, प्रत्यक्षं अनुमान चेतिः वि. अ. ४। ३।

अनुमान के सिवाय उपमान को भी प्रमाण माना है, यथा–"औपम्यं नाम-यदन्येनान्यस्य साद्दश्यमधिकृत्य प्रकाशनम्; यथा दण्डेन दण्डकस्य; धनुषा धनुस्तम्भस्य। वि. अ. ८।४२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके शब्दों को अपने अर्थ में ग्रहण किया। इसलिये बहुत से विचारों का समन्वय इसमें मिलता है; हैं ये सब विचार वेद सम्मत-वैदिक-आस्तिक। यथा-पुनर्जन्म के सम्बन्ध में जो विप्रत्तिपत्तियाँ थी वे निम्न है—

मातरं पितरं चैके मन्यन्ते जन्मकारणम्।
स्वभावं परनिर्माणं यदृच्छां चापरे जनाः॥ च. सू. अ. १०।६

कोई लोग जन्म का कारण माता-पिता को मानते हैं, कोई स्वभाव को जन्म का कारण मानते हैं, कोई दूसरे के निर्माण को जन्म का कारण मानते हैं; और कोई यदृच्छा को जन्म का कारण मानते हैं।[1] इन सब विप्रत्तिपत्तियों का आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष, युक्ति और अनुमान द्वारा खण्डन करके पुनजन्म के अस्तित्व को सिद्ध किया है। इसी से तीन ऐषणाओं में परलोक ऐषणा को स्थान दिया है, यहाँ से मर कर फिर इस संसार में आयँगे वा नहीं। क्योंकि संसार में पुनः जन्म लेना ही होगा, इसलिये सज्जनों से आदृत, सम्पूर्ण सुख को देने वाले श्रुति से अनुमोदित जो कर्म हों उनको करना आरम्भ करे, ऐसा करने से मनुष्य को इह लोक में यश और मृत्यु के पीछे स्वर्ग मिलता है [चि. सू. अ. १०।३३]।

रोगों के उत्पत्ति और पुरुष की उत्पत्ति के निश्चय सम्बन्ध में भी भिन्न भिन्न ऋषियों के विचार आये हैं—

---

१ सुश्रुत में भी ठीक यही विचार आये हैं—
स्वभावमीश्वरं कालं यदृच्छां नियतिं तथा।
परिणामं च मन्यन्ते प्रकृतिं पृथुदर्शिनः॥ सु. शा. अ. १।११

स्वभाव—कांटों में तीक्ष्णता स्वभाव से ही है। मनुष्य जड़ है आत्मा-सुख दुःख का स्वामी है, ईश्वर की प्रेरणा से मनुष्य का जन्म होता है। काल-काल ही सृष्टि की स्थिति, प्रलय का कारण है। यदृच्छा—जिस प्रकार कि बांसों की परस्पर रगड़ से अग्नि उत्पन्न हो जाती है, इसी प्रकार यह संसार बन जाता है। नियति—धर्म-अधर्म ही उत्पत्ति में कारण हैं। परिणाम—प्रकृति ही महद्-अहंकार में बदलकर इस सबको उत्पन्न करती है। आयुर्वेद में इन सब विचारों का समन्वय स्थान स्थान पर मिल जाता है, परन्तु स्थूलबुद्धि वाले इनमें से एक को ही सृष्टि का कारण समझते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काशिपति वामक ने पूछा कि जिससे पुरुष उत्पन्न होता है, क्या उसी से रोग उत्पन्न होते हैं ? इस प्रश्न पर उपस्थित सब ऋषियों के विचार को समझने के लिये पुनर्वसु ने ऋषियों से कहा कि आप सब अमित ज्ञान वाले हैं; इसलिये काशिराज के संशय को दूर करें।

इस प्रसंग में उपस्थित ऋषियों ने जो विचार उस्थित किए हैं; उनसे देश के उस समय के विचार स्पष्ट हो जाते हैं। यथा—

पारीक्षिमौद्गल्य ने कहा कि—पुरुष आत्मा से उत्पन्न होता है और रोग भी आत्मा से उत्पन्न होते हैं क्योंकि चेतना धातु के विना सुख दुःख की प्रवृत्ति सम्भव नहीं। **शरलोभा** ने कहा कि यह ठीक नहीं, क्योंकि आत्मा अपने आप को रोग-दुःखों में क्यों फँसायेगा—वह स्वयं दुःखों से द्वेष रखता है। रोग और पुरुष की उत्पत्ति का कारण रज और तम से युक्त मन है। **वार्योविद** ने कहा, नहीं; अकेला मन ही रोग और पुरुष की उत्पत्ति में कारण नहीं है; शरीर के विना शारीरिक और मानसिक रोग नहीं हो सकते। भूत-प्राणि-पुरुष रस से उत्पन्न होते हैं; नाना प्रकार की व्याधियां भी रस से ही उत्पन्न होती हैं; जल-रसवाले हैं; इसलिए ये जल ही रोगों की उत्पत्ति में कारण हैं।

हिरण्याक्ष ने कहा—आत्मा रस से उत्पन्न नहीं होता; अतीन्द्रिय मन भी रस से उत्पन्न नहीं होता; शब्द आदि जन्य रोग (ऊंचा शब्द सुनने से उत्पन्न कर्ण रोग) रस से उत्पन्न नहीं होते; इसलिये पुरुष और रोग छैः धातुवों से-पृथ्वी अप-तेज-वायु-आकाश और चेतना से उत्पन्न होते हैं; प्राचीन सांख्यों ने (कपिल आदिने) छैः धातुओं से उत्पन्न पुरुष को राशि पुरुष कहा है [राशिः पुरुष संज्ञकः-शा. १।३५]। इस प्रकार कहते हुए हिरण्याक्षको **कौशिक** ने कहा-माता-पिता के विना षट्धातुओं स उत्पन्न पुरुष कैसे हो सकता है। पुरुष से पुरुष; गौ से गौ, अश्व से अश्व होता है। प्रमेह आदि रोग भी पिता से ही होते हैं; इसलिये पुरुष और रोग की उत्पत्ति में माता-पिता ही कारण हैं।

भद्रकाप्य ने कहा कि-ऐसा नहीं; क्योंकि अन्धे पिता से अन्धा पुत्र नहीं होता। माता-पिता को किसने उत्पन्न किया, इस प्रकार से अनन्त परम्परा दोष है। इसलिये मनुष्य कर्मजन्य है, और रोग भी कर्मजन्य हैं। कर्मों के विना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोग और पुरुष का जन्म नहीं हो सकता। भरद्वाज ने कहा कि–यह ठीक नहीं; क्योंकि कर्म से पहिले कर्त्ता है; ऐसा कोई अकृत कर्म नहीं देखा जाता, जिसका कि फल पुरुष हो। पृथ्वी आदि महाभूतों का स्वभाव ही रोग और पुरुष की उत्पत्ति में कारण है। काङ्कायन ने कहा कि–यह ठीक नहीं; क्योंकि यदि पृथ्वी आदि महाभूतों के स्वभाव के कारण ही सिद्धि और असिद्धि हो, तब इस सृष्टि के प्रारम्भ करने का कोई फल नहीं। इसलिये इस जगत के सुख-दुःख को; चेतना-अचेतना को बनाने वाला-अपरिमित संकल्प वाला प्रजापति है।

भिक्षु आत्रेय ने कहा कि प्रजापति अपनी संतान को एक असाधु पुरुष की तरह किस लिए दुःखों से युक्त करे; वह तो प्रजा का हित चाहने वाला है। इसलिए पुरुष काल जन्य हैं और रोग भी काल जन्य हैं। सम्पूर्ण जगत काल के अधीन है, सबका कारण काल ही है।[1]

इस प्रकार के अनेक वादों का प्रतिपादन ऋषियों ने किया। इस तरह परस्पर विवाद करते हुए ऋषियों ने उस समय देश और शास्त्र में चर्चा होने

१ महाभारत में काल को ही कारण बताया है–यक्ष के पूछे हुए प्रश्नों में से "का वार्त्ता" का दिया युधिष्ठिर का उत्तर इसकी साक्षी है-यथा––

"अस्मिन्महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
मासर्त्तुदर्वी परिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्त्ता॥ वनपर्व

पंचतंत्र में भी काल के लिए वचन हैं—

रामस्य व्रजनं बलेर्नियमनं पाण्डोः सुतानां वनं
वृष्णीनां निधनं नलस्यनृपतेः राज्यात्परिभ्रंशनम्।
नाट्याचार्यकमर्जुनस्य पतनं संचिन्त्य लंकेश्वरे
सर्वं कालवशाज्जनोऽत्र सहते कः कं परित्रायते॥
मान्धाताक्वगतस्त्रिलोकविजयी राजाक्वसत्यव्रतो
देवानां नृपतिर्गतः क्व नहुषः सच्छास्त्रवान्केशवः।
मन्यन्तेसरथाः सकुञ्जरवरा शक्रासनाध्यासिनः
कालेनैव महात्मनात्वनुकृताः कालेन निर्वासिताः॥

सुश्रुत में काल को–भगवान् स्वयम्भू शब्दों से कहा है "कालो हि नाम भगवान् स्वयम्भूरनादिमध्य निधनः॥ सु. सू. अ ६। ३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले वादों को उपस्थित किया। यहि सब वाद श्वेताश्वेतरोपनिषद् और महाभारत में भी आते हैं। यथा—

"कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छाभूतानियोनिः पुरुष इति चिन्त्यम्।
संयोग एषां नत्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुख दुःख हेतोः॥
ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥

आयुर्वेद में-विशेष रूप से इन सब वादों का समन्वय मिलता है; किसी एक कारण को ही पकड़ा नहीं गया। इसीलिये ऋषियों से प्रतिपादित सब वादों का स्वीकार करते हुए पुनर्वसु आत्रेय ने कहा कि—"इस वाद विवाद को छोड़कर वास्तविक अर्थ की चिन्ता करो, विना अन्धकार को दूर किए सत्यवस्तु का ज्ञान नहीं होता। एक एक पक्ष का आश्रय लेकर बैठ जाने से उसी के चारों ओर घूमते रहोगे—किसी निर्णय पर नहीं आसकोगे [सू अ. २५।२७।२८]। आयुर्वेद में इन सब वादों का समर्थन हैं यथा—

पुरुष और गर्भ की उत्पत्ति बताते हुए इन सब वादों का एक साथ उल्लेख किया है—"माता से, पिता से, आत्मा से, सात्म्य से; रस से सत्त्व से इन छैः भावों के समुदाय से गर्भ उत्पन्न होता है [शा. अ. ४।४]। इसी प्रकार सांख्य मत का अनुसरण करके आकाश-वायु-अग्नि-जल और पृथ्वी ये पांच महाभूत और छट्टी चेतना धातु को पुरुष कहते हैं, अकेली चेतना धातु को भी पुरुष कहते हैं। फिर आठ प्रकृति और सोलह विकृति इन चौबीस को पुरुष कहते हैं [शा. अ. १७][1]।

इसके अतिरिक्त पृथक्-पृथक् रूप में भी इन वादों का उल्लेख आता है, यथा-

१-स्वभाव कारण है—मूंग स्वभाव से ही लघु हैं, बटेर और कपिञ्जल स्वभाव से ही लघु गुण वाले हैं। माष, वराह और भैंस स्वभाव से ही गुरु हैं

१ सांख्य दर्शन में यद्यपि पुरुष को मिलाकर पच्चीस तत्त्व माने हैं, परन्तु यहाँ पर पुरुष की उदासीनता से प्रकृति और विकृत को गिनकर २४ कहा है, यथा सांख्यकारिका में—

मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिपुरुषः॥ सांख्यकारिका ३.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

[सू अ २७।३३८]। प्रकृति को ही स्वभाव कहते हैं—यह आहार औषध द्रव्यों में गुरु लघु आदि गुणों के रूप में मिलता है, यथा उड़द और मूंग में [वि. अ. १।२६]।

२–कर्म कारण है—कोई बड़ा कर्म ऐसा नहीं जिसका फल नहीं होता, कर्म जन्य रोग क्रिया चिकित्सा कर्म को नष्ट करते हैं। कर्म के क्षय होने पर रोग शान्त होते हैं [शा. अ. १।११७]। पूर्वजन्म में किए हुए कर्म को दैव शब्द से कहते हैं। यह कर्म भी काल वश रोगों का कारण होता है [शा. अ. १।११६-११७]। कोई भी कर्म विना भोगे क्षीण नहीं होता, किए हुए कर्म का अवश्य भोग करना होता है।[1]

३–मन कारण है–रज और तम मन से सम्बन्धित दो दोष हैं। इनके विकार से काम क्रोध लोभ मोह ईर्ष्या-मान-मद शोक, चिन्ता, उद्वेग, भय, हर्ष आदि होते हैं [वि. अ. ६।५]। ज्ञान का होना और ज्ञान का न होना, यह मन का लक्षण है, अणुत्व और एकत्व ये दो गुण मन के हैं [शा. अ. १।१८।१६]।

४–काल कारण है—अन्येद्युष्क, तृतीयक, चतुर्थक आदि जो ज्वर अपने अपने समय पर प्रवृत्त होते हैं; वे सब काल जन्य हैं। काल के परिणाम से ही बुढ़ापा, मृत्यु होती है; स्वाभाविक रोग भी कालजन्य हैं, स्वभाव का प्रतिकार सम्भव नहीं [शा. अ. १।११३-११५]।

५–माता पिता कारण हैं—अदूषित वीर्यवाले पुरुष का अदूषित योनि-रक्त और गर्भाशय वाली स्त्री के साथ ऋतुकाल में जब संसर्ग होता है, तब इनके मैथुन करते हुए शुक्र-शोणित के गर्भाशय के अन्दर मिलने पर मन से प्रेरित-मन के साथ जीव आता है [शा. अ. ३।५]।

६–छै धातुयें कारण है—पृथ्वी-जल-वायु-तेज और आकाश तथा चेतना धातुवों से पुरुष उत्पन्न होता है [शा. अ. १।१६]।

७–रस कारण है—शुक्र की उत्पत्ति छैः रसों से है; यही शुक्र गर्भ की उत्पत्ति में कारण होता है; इस शुक्र में वायु-अग्नि-भूमि और जल के गुण रहते

१ नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं [शा. अ २।४]; अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः अन्न से शुक्र होता है, शुक्र से पुरुष होता है, उपनिषद ।

८-आत्मा कारण है—यह आत्मा चारों सूक्ष्म भूतों के साथ; मन के वेग से एक शरीर से दूसरे शरीर में आती है। इसका आना कर्म के कारण होता है, इस आत्मा का दर्शन विना दिव्य दृष्टि के सम्भव नहीं है। यह आत्मा सर्वत्र-गामी; सब प्राणियों के शरीर को धारण करता है; विश्वकर्मा-विश्वरुप, चेतनाधातु और अतीन्द्रिय है [शा अ २।३१-३२]।

प्रजापति कारण है—परमात्मा की उत्पत्ति नहीं होती, अनादि होने से [शा. अ. १।५३]। यदि पुरुष-प्रजापति न हो, तब प्रतिमा, अन्धकार मोह; सत्य, झूठ, वेद, शुभ अशुभ कर्म भी न हों, न विज्ञान हो, न ज्ञान हो, न जन्म और न मृत्यु हो, न बन्धन और न मोक्ष हो। इसलिए कारण को जानने वालों ने पुरुष को कारण कहा है। कुम्भकार के बिना मिट्टी, दण्ड और चक्र ने मिलकर घड़ा बनाया; घर बनाने वाले के बिना घर को मिट्ट-तिनके और लकड़ी ने मिलकर बनाया है, ऐसा जो [मूर्ख] कह सकता है वही मूर्ख यह कह सकता है कि बिना कर्त्ता ईश्वर के, साधनों ने मिलकर पुरुष को बनाया है। सब प्रमाणों से पुरुष-प्रजापति कारण जाना जाता है [शा. अ. १।३६-४५]।

इस प्रकार से भिन्न भिन्न सब वादों का स्थान स्थान पर चरक संहिता में उल्लेख मिल जाता है। इसलिए किसी एक दर्शन या वाद को पूर्णतः नहीं पकड़ा गया। इतना सब रहने पर भी वैदिक सिद्धान्त, वैदिक प्रक्रिया एवं वैदिक आर्ष विचारों का ही प्रतिपादन चरक में मिलता है, पुनर्जन्म, ईश्वर, योग प्रवृत्ति, मोक्ष के उपाय-मोक्ष का मार्ग यह सब आस्तिक सम्मत वर्णित है। इसी से कहा है-योग और मोक्ष से सब वेदनायें दूर हो जाती है, योग-मोक्ष में प्रवृत्ति देता है, मोक्ष से सम्पूर्ण रूप में निवृत्ति होती है [शा. अ. १।१३७][1] रज और तम [मानसिक दोष] के अभाव से बलवान कर्मों के क्षय हो जाने से मोक्ष होता है, कर्मों का संयोग न रहने से पुनर्जन्म नहीं होता [शा. अ. १।१४२]।

१ भिद्यते हृदय ग्रन्थिः छिद्यन्त सर्व संशयः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ उपनिषद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरक संहिता में न्याय दर्शन के अनुसार द्रव्य, गुण, कर्म, समवाय, सामान्य और विशष का वर्णन है [सू, अ. १।४८-५१]; इसके सिवाय विमान स्थान में न्याय दर्शन के आधार पर वाद मार्ग के ज्ञान के लिए वाद, प्रतिज्ञा, स्थापना, प्रतिष्ठापना, हेतु, दृष्टान्त, उपनय, निगम, उत्तर, सिद्धान्त, शब्द, प्रत्यक्ष, अनुमान, ऐतिह्य, औपम्य, संशय, प्रयोजन, सव्यभिचार, जिज्ञासा, व्यवसाय, अर्थ प्राप्ति-संभव, अननुयोज्य, अनुयोग, प्रत्यनुयोग, वाक्य दोष, वाक्य प्रशंसा, छल, अहेतु, अतीतकाल, उपालम्भ, परिहारः प्रतिज्ञा हानि, अभ्यनुज्ञा, हेत्वन्तर, अर्थान्तर, निग्रहस्थान इनको विस्तार से समझाया है। इस प्रकार महर्षि गौतम के न्याय दर्शन के आवश्यक अंश का उल्लेख चरक में मिलता है।

सांख्य दर्शन का सिद्धान्त भी चरक में बहुत अंश में मिलता है। सांख्य शब्द का उल्लेख चरक में कई स्थानों में आया है [सू. अ १३।३]।[1] चरक में चौबीस तत्त्वों की प्रकृति और विकृति को मिलाकर पुरुष की उत्पत्ति मानी है [चतुर्विंशक इत्येष राशिः पुरुष संज्ञकः—शा. अ. १।३५]। पुरुष को चरक में पृथक् नहीं गिना, उसको प्रकृति में मिलाकर अव्यक्त में ही गिना है। क्योंकि पुरुष और अव्यक्त के धर्म समान हैं।

चरक संहिता में शरीर स्थान के प्रथम अध्याय में किए गए प्रश्नों का उत्तर बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, यथा—

पुरुष (ईश्वर) को कारण किसलिए कहते हैं, इस पुरुष की उत्पत्ति कैसे होती है, यह अज्ञ है या ज्ञानी है, नित्य है या अनित्य, प्रकृति क्या है, विकार क्या है, पुरुष के चिह्न क्या हैं ? आत्मा को जानने वाले आत्मा को निष्क्रिय, स्वतंत्र, वशी, सर्वग, विभु, क्षेत्रज्ञ, साक्षि कहते हैं, फिर इस निष्क्रिय आत्मा में क्रिया कैसे होती है ? आत्मा स्वतंत्र है—फिर किस लिए अनिष्ट योनियों में जन्म लेता है ? यदि वह वशी है, तो क्यों दुःखदायक भावों से हठात् आक्रमित होता है ? सर्वगामी होने से सब वेदनाओं को क्या वह नहीं जानता ? आत्मा विभु सर्वत्र व्यापी है, तो दिवार या पहाड़ से आवृत्त वस्तु को क्यों नहीं जान लेता ? आत्मा क्षेत्रज्ञ है, तब क्या इससे पूर्व क्षेत्र था ? क्योंकि क्षेत्र के विना

१ संख्यात धर्मैः सांख्यैश्च मुक्तेर्मोक्षस्य चायनम्—शा. अ. १।११

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षेत्रज्ञ नहीं हो सकता; इसलिये क्षेत्र पहिले होगा ? यदि क्षेत्र पहिले हो तो क्षेत्रज्ञ अनित्य हो जाता है। [१]जब दूसरा कर्त्ता नहीं, तब यह किसका साक्षी हो सकता है ? अविकारी होने से इसमें वेदनाजन्यविकार कैसे हो सकते हैं ?

भगवान्! वैद्य रोगी की अतीत, वर्त्तमान् और भविष्य की तीन वेदनाओं में से किसकी चिकित्सा करता है; क्योंकि भविष्य में होने वाली वेदनायें अभी आई नहीं, इसलिए उनकी चिकित्सा व्यर्थ है; जो वेदनायें बीत गई हैं उनकी चिकित्सा का कोई लाभ नहीं; वे फिर नहीं आयेंगी ? वर्त्तमान् कालीन वेदनायें भी क्षणिक-थोड़े समय के लिये ही हैं; इसलिए चिकित्सा में संशय है। वेदनाओं का क्या कारण है; वेदनाओं का अधिष्ठान क्या है और ये सब वेदनायें कहाँ पर पूर्णतः शान्त होती हैं ? सववित्, सर्वसन्यासी, सब प्रकार के संयोग से निकला, प्रशान्त, भूतात्मा किन चिह्नों से प्राप्त होता है ?

इन प्रश्नों के उत्तर सांख्य दर्शन के आधार से देने के साथ साथ सामान्य तर्क और बुद्धि से भी दिये हैं। इसी में बुद्धि, स्मृति-स्मृति की उत्पत्ति के आठ कारण, आठ प्रकार का योगियों का ऐश्वर्य (योग दर्शन सम्मत), धृति आदि की विवेचना भली प्रकार की है; मोक्ष और सन्यास का विचार भी कर लिया- और अन्त में भूतात्मा जब ब्रह्म भूत-ब्रह्म में लीन हो जाता है (अहं ब्रह्मास्मि इस भाव को प्राप्त हो जाता है) तब इसकी पहिचान नहीं होती; सब भावों से यह पृथक् हो जाता है; जिसका कोई चिह्न नहीं रहता। ब्रह्म को जानने वालों की ब्रह्म ही गति है; यह ब्रह्म अक्षर, बिना लक्षण का है; ब्रह्म को जानने वाले ही इसे जान सकते हैं; अज्ञ व्यक्ति इसको नहीं जान सकता।[२]

---

१ गीता में भी यह प्रश्न आता है—

"क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतंमम्।" गीता. १३.

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।

भूतप्रकृति मोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥ गीता. १३।३४

२ "अतः पर ब्रह्मभूतो भूतात्मानोपलभ्यते"—चरक. शा. अ. १।१५५- इसके साथ गीता का यह वचन पूरा मिलता है—

"ब्रह्मभूता प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वी-अप-तेज-वायु-आकाश और चेतना इन छैः धातुवों को पुरुष कहते हैं। अकेली चेतना धातु को भी पुरुष कहते हैं। और फिर धातु भेद से पुरुष २४ तत्त्वों वाला है, जिसमें, बुद्धि, अव्यक्त अहंकार और पंचतंन्मात्र यह आठ प्रकृति और मन; दस इन्द्रियां और पांच इनके विषय इस प्रकार २४ तत्त्वों वाला है। मन का लक्षण-ज्ञान का होना और न होना है; आत्मा, इन्द्रिय और विषय इनके साथ मन का सम्बन्ध रहने से ज्ञान होता है; इनके साथ मन का संयोग न रहने पर ज्ञान नहीं होता। अणुत्व और एकत्व ये दो गुण मन के हैं। मन का विषय-चिन्त्य, विचार, ऊहना-संभावना; भावना विषयक ज्ञान, गुण-दोष की दृष्टि से विचारना है। मन का कार्य इन्द्रियों को वेश में करना तथा अपने को वश में करना; संभावना और विचारना है; इसके आगे बुद्धि प्रवृत्त होती है।

इन्द्रिय, इन्द्रिय के विषय को मन के साथ ही मिलकर ग्रहण करती है; इसके पीछे मन गुण और दोष की दृष्टि से इस ज्ञान का विचार करता है; इसके बाद निश्चय रूप जो बुद्धि उत्पन्न होती है, मनुष्य उसी के अनुसार कार्य करना चाहता है।

पंचमहाभूतों में आकाश में एक गुण है, इसके बाद प्रत्येक महाभूत में एक एक गुण की वृद्धि होती जाती है–जिससे वायु में–वायु और आकाश का; अग्नि में–तीन गुण-वायु-आकाश और अग्नि का; जल में–जल का अपना गुण और आकाश, वायु और अग्नि का भी, पृथ्वी में– अपना गुण और शेष चार भूतों के गुण भी रहते हैं। यहाँ पर न्यायदर्शन के 'विष्टं ह्यपरं परेण'– इस सूत्र का उल्लेख है।

कार्य और इन्द्रियों के विषयों के बहुत भेद होने से बुद्धि भी बहुत प्रकार की है; यह बुद्धि आत्मा, इन्द्रिय-मन और विषय इनके परस्पर संयोग से उत्पन्न होती है। जिस प्रकार कि अंगुली-अंगुष्ठ करतल से एवं तंत्री-वीणा और नख से शब्द उत्पन्न होता है, इसी प्रकार से बुद्धि भी आत्मा इन्द्रिय मन और विषय के संयोग से उत्पन्न होती है।

रज और तम से युक्त पुरुषों में बुद्धि-इन्द्रिय-मन और विषय इनका संयोंग अनन्त रहता है, रज और तम से मुक्त पुरुषों में सत्त्व के बढ़ने से यह संयोग समाप्त हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि पुरुष (ईश्वर) इस संसार का कारण न हो कर्त्ता न हो तो प्रतिभा, मोह, सत्य, अमृत, वेद, शुभकर्म और अशुभ कर्म भी न हों। न विज्ञान न शास्त्र, न जन्म और न मरण हो, बन्धन, मोक्ष भी न हो, यदि पुरुष न हो। इसलिये कारण को जानने वालों ने पुरुष को कारण बताया है। जिस प्रकार कि बिना कुम्हार के चक्का-मिट्टी और दण्ड मिलकर घट को नहीं बना सकते, इसी प्रकार कर्त्ता के विना सब कारण मिलकर इस सृष्टि को उत्पन्न नहीं कर सकते।

जो लोग आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, उनके मत से इस शरीर में पृथ्वी जल आदि भाव पहिले वाले नहीं रहते अपितु उसी प्रकार के अन्य हैं; ये दूसरे भाव परम्परा से उत्पन्न होते हैं [जिस प्रकार कि पानी में फेंके पत्थर से उठी तरंग अपने आप को नष्ट करके अपनी जैसी दूसरी तरंग उत्पन्न करती है; दूसरी-तीसरी को, तीसरी-चौथी तरंग को उत्पन्न करती है, इसी प्रकार परम्परा से ये भूत उत्पन्न होते हैं]। उन भावों का सत्त्व संज्ञक समुदाय विना स्वामी के है; प्रमान न तो कर्त्ता है और न भोक्ता है। इनके मत में अन्य भावों के किए कर्म का अन्य भाव फल भोगते हैं; परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि बिना फल की प्राप्ति के कोई दूसरा प्रवृत्त नहीं होता। । [1] करण—साधनकर्त्ता से सदा अलग रहते हैं; कर्त्ता-करणों से युक्त होकर ही सब कर्मों का कारण होता है।

शरीर के नष्ट होने पर पलक झपकने में जितना समय लगता है, उतने समय में अति शीघ्रता से सब भाव–पृथ्वी आदि तत्त्व नष्ट हो जाते हैं, नष्ट हुए भाव फिर नही आते; एक का किया कर्म दूसरे को नहीं पहुंचता, दूसरा नहीं भोगता।

परमात्मा के अनादि होने से उसकी उत्पत्ति नहीं होती; राशि संज्ञक पुरुष-मोह-इच्छा द्वेष और कर्म से उत्पन्न होता है।

आत्मा ज्ञानी है, इन्द्रियों के साथ संयुक्त होने पर इसको ज्ञान होता है; इन्द्रियों के निर्मल न होने से या इनके साथ से योग न होने से ज्ञान नहीं होता। जिस प्रकार कि मलिन दर्पण में रूप दिखाई नहीं देता या मन के अन्यत्र लगे होने पर ज्ञान नहीं होता।

---

१ यहाँ पर क्षणिक वाद (बौद्धों) मत का खण्डन है—इसी तरह का विचार सूत्र स्थान अध्याय १६ में २७-२८ श्लोक में व्यक्त हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचतन्मात्र, महान, अहङ्कार और बुद्धि ये आठ तो भूत प्रकृति [स्थावर और जंगम सृष्टि की प्रकृति) हैं। पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय और मन ये ग्यारह इन्द्रियां और पांच विषय-शब्दादि ये सोलह विकृति हैं। इन चौबीस तत्त्वों को क्षेत्र कहते हैं; और इस क्षेत्र को जानने वाले अव्यक्त को क्षेत्रज्ञ कहते हैं।[1]

प्रलय काल में पुरुष भोगार्थ बुद्धि आदि इष्ट भावों से अलग हो जाता है, अव्यक्त से व्यक्त रुप में आता है और व्यक्त से फिर अव्यक्त रूप में हो जाता है। रज और तम से आविष्ट पुरुषों में यह क्रम चक्र की भांति घूमता रहता है। सुख-दु.ख, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वो में जो फँसे हैं; अहंकार युक्त पुरुषों में उदय और प्रलय होता है, दूसरों का नहीं [वेदान्त के वाक्य– यथोर्ण नाभि सृजते गृह्वते च'–पृथिव्यामौषधयः संभवन्ति–का प्रतिपादन है–मकड़ी जिस प्रकार सूत्र-जाले को अपने में से ही उत्पन्न करती है और अपने में ही समेट लेती है; जिस प्रकार कि औषधियां पृथ्वी से ही उत्पन्न होती हैं और पृथ्वी में ही लीन हो जाती हैं; उसी प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति और लय इन में हो जाती है][2]।

पुरुष के चिन्ह–(आत्मा के लक्षण)—प्राण-अपान वायु का संचरण, पलक मारना, जीवन, मन की गति, मनका प्रेरण, धारण, स्वप्न में मन का

---

१ गीता में भी क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ की विवेचना है, यथा—

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्योवेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥ १३।१-२
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा।
भूतप्रकृति मोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम्॥ १३।३४

२ गीता में—अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे। रात्र्यागमे प्रलीयन्ते
तत्रैवाव्यक्त संज्ञके॥ भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे॥ ८।१७–१८
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिदेवना॥ २।२८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य देश में जाना, दायीं आँख से देखी वस्तु का वाम आँख से ज्ञान, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न, धृति, बुद्धि, स्मृति, अहंकार, ये सब लक्षण आत्मा के हैं, ये लक्षण जीवित पुरुष में ही मिलते हैं, मृत पुरुष में नहीं। आत्मा के शरीर से निकलकर शून्यागार–आकाश में चले जाने पर केवल पंच महाभूतों के शेष रह जाने से पञ्चत्व हुआ कहा जाता है।

आत्मा चेतनावान् है परन्तु साक्षात् क्रियाशील नहीं है, मन के आत्मा से युक्त होने पर आत्मा में क्रिया कही जाती है। क्योंकि आत्मा चेतना वाला है, इसलिए कर्त्ता कहा जाता है। मन अचेतन है, इसलिए क्रियाशील होने पर भी कर्त्ता नहीं कहा जाता। यही आत्मा अपने धर्म-अधर्म के कारण अपने को सब योनियों में ले जाता है, अत्मा-धर्म-अधर्म से नियन्त्रित रहता है, इसको नियंत्रित करने वाला दूसरा नहीं है। आत्मा जो कर्म करता है, उसका फल भोगता है, कर्म करने में आत्मा स्वतंत्र है, यही अनिष्ठ विषय में मनको रोकता है, क्योंकि यह वशी है·वश में करने वाला है। वशी होकर ही शुभाशुभ फल को छोड़कर मोक्ष के लिए प्रवृत्त होता है। यह आत्मा विभु है, क्योंकि यह सब में व्याप्त है, महान् है।[1] देह-कर्म के अनुसार बनाने वाले मन के साथ इसका सदा सम्बन्ध रहता है, एक योनि में स्थित रहने पर भी सब योनियों में जाता है।

आत्मा का कोई आदि नहीं, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ की परम्परा अनादि है, अनादि होने से कौन पहिले है, यह नहीं कहा जा सकता। ज्ञानवान ही साक्षी हो सकता है, अज्ञानी साक्षी नहीं होता, आत्मा ज्ञानी है; इसलिए वह साक्षी है [साक्षी चेतः केवलो निर्गुणश्च]। सुख दुःखादि वेदना के कारण ही पुरुष का संयोग इच्छित है। ये सुख दुःख आदि बुद्धि में ही स्थित हैं, पुरुष में नहीं।

वैद्य तीन प्रकार की वेदनाओं को किस प्रकार शान्त करते हैं उसे भी सुनो– यह फिर पुराना शिर दर्द आ गया, यह फिर पहिले वाला ज्वर है, ऐसे लोक

---

१ आत्मा के लिये–यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते। सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥ यथा प्रकाशत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः। क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत॥ आनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः। शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते॥ अ १३।३१–२३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसिद्ध वचनों से अतीत काल की वेदनाओं का पता चलता है। इन अतीत काल की वेदनायों को देखकर जो चिकित्सा की जाती है, वह भूतकाल के रोगों की चिकित्सा है। जिस प्रकार की पहिले इसी पानी के आने से शहर या खेती का नाश हुआ था, वही पानी फिर आकर शहर का नाश न करे, उसके लिए जैसे प्रबन्ध करते हैं उसी प्रकार इन वेदनाओं की चिकित्सा करते हैं। यह भविष्य की वेदनाओं की चिकित्सा है। सुख के कारण के उपचार से दुःखों की परम्परा का नाश हो जाता है, और सुख भी होता है। शरीर के धातु सदा हेतु के समान होते हैं, समान हेतु से समान और विषम हेतु से विषम हो जाते हैं। जिस प्रकार कि रेशम का कीड़ा (कोशाकार) स्वयं ही अपने मारने वाले तन्तुओं को उत्पन्न करता है, उसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति विषयों में तृष्णा को उत्पन्न करता है। धर्म-अधर्म ही शरीर और दुःख तथा सुख के मूल कारण हैं। सब प्रकार के धर्म-अधर्म का छोड़ना ही; दुःखों से मुक्त होने का कारण है। [1]जो व्यक्ति इन विषयों को अग्नि के समान समझकर इनसे अलग रहता है; उसे दुःख नहीं होता।

धी (बुद्धि), धृति, स्मृति इनका भ्रंश; काल सम्प्राति, कर्म सम्प्राप्ति, असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग—ये रोग के कारण हैं। नित्य-अनित्य, हित और अहित वस्तुओं में अयथार्थ रूप में जानना बुद्धि भ्रंश है; उचित बुद्धि वस्तु को यथार्थ रूप में समझती है। विषयों में फँसा हुआ मन धृतिभ्रंश के कारण अहित विषयों से रोका नहीं जाता; क्योंकि धृति ही मन को नियमित करती है। रज-मोह से आवृत्त जिस व्यक्ति की स्मृति तत्त्वज्ञान में—च्युत होती है वह स्मृति भ्रंश है; स्मृति में स्थित वस्तु का स्मरण करना चाहिये।[2]

---

१ गीता में—प्रजाहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थमनोगतान्। आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितः प्रज्ञस्तदोच्यते ॥ दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतराग-भय क्रोधः स्थितिधीर्मुनिरुच्यते ॥

२ बुद्धि और धृति के सम्बन्ध में गीता में कहा है—
बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु।
प्रोच्यमानशेषेण पृथकत्वेन धनंजय ॥ १८।२९.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धी-धृति-स्मृति से विभ्रष्ट व्यक्ति जो अशुभ कार्य करता है; उसको प्रज्ञा-पराध ही जानना चाहिये; यह प्रज्ञापराध सब दोषों का प्रकोपक है। बुद्धि से विषम रूप में जानना; विषम रूप में प्रवृत्त होना-प्रज्ञापराध है; क्योंकि यह मन का कार्य है।

सुख और दुःख का कारण न तो इन्द्रियां हैं, और न इन्द्रियों के विषय कारण हैं; सुख-दुःख का कारण तो इन्द्रिय और विषयों का चार प्रकार का संयोग है। यथा दुःख का कारण-असात्म्य इन्द्रिय-अर्थ सयोग-अति योग, अयोग और मिथ्यायोग; सुख का कारण समयोग-(सुख हेतुः समस्त्वेकः समयोगः सुदुर्लभः चरक. शा. अ. १।१२६; गीता में-समत्वं योगमुच्यते) है।

योग और मोक्ष में सब वेदनायें निवृत्त हो जाती हैं। मोक्ष में सब वेदनायें निवृत्त हो जाती हैं-फिर नहीं होती; योग-मोक्ष में प्रवृत्ति कराता है।

योग-आत्मा-इन्द्रिय मन और विषय इनके सन्निकर्ष से सुख और दुःख होते हैं, जब मन आत्मा में ही स्थिर हो जाता है, तब सुख और दुःख नहीं होते। सुख और दुःख से पृथक् हो जाने पर (गीता के शब्दों में स्थित प्रज्ञ हो जाने पर) इसमें वशित्व उत्पन्न हो जाता है। योग को जानने वाले ऋषि इस अवस्थाको शरीर सहित योग कहते हैं।

योगी का ऐश्वर्य-आवेश-दूसरे के शरीर में प्रवेश होने की विद्या; दूसरे के चित्त का ज्ञान; इच्छानुसार विषयों-चेष्टाओं का करना; अतीन्द्रियश्रवण; तत्त्व स्मरण; अमानुषी कान्ति; चाहने पर दिखाई न देना; यह योगीयों का आठ प्रकार का बल ऐश्वर्य है। रज और तम के निकल जाने पर मन के आत्मा में स्थिर हो जाने पर यह सब हो जाता है।

रज और तम के अभाव से; बलवान कर्मों के क्षय होने से मोक्ष प्राप्त होता है; कर्म का संयोग न होने से आत्मा अलग हो जाता है; इसी को अपुनर्भव कहते हैं (ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्त्तन्ति भूयः,-गीता १५।४; यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परं मम-गीता १५।६)। स्मृति से पदार्थों के स्वभावों का स्मरण करते हुए मनुष्य दुःखों से छुट जाता है।

आठ कारण जिनसे स्मृति उत्पन्न होती है-निमित्त ज्ञान-कारण ज्ञान से; कराण को देखकर कार्य का स्मरण होता है; सादृश्य से; अति विपरीत वस्तु के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखने से; मन के लगाने से; अभ्यास से; तत्त्व ज्ञान से; पुनः सुनने से; रूप-आकार के देखने से—इन आठ कारणों से स्मृति उत्पन्न होती है। देखे सुने और अनुभव किये हुए ज्ञान का स्मरण करना स्मृति कहाती है। जिन्होंने धर्म को भली प्रकार जान लिया है, ऐसे सांख्यों ने मुक्ति और मोक्ष का यह मार्ग बताया है।

सम्पूर्ण कर्मों के-कर्म फल के छोड़ देने पर मूल सहित सब वेदनायें नष्ट हो जाती हैं, संज्ञा सविकल्पज्ञान; ज्ञान निर्विकल्पज्ञान; विज्ञान-बुद्धि व्यवसाय आदि से सम्पूर्ण रूप में निवृत्त हो जाते हैं।

यहाँ पर चरम सन्यास से अभिप्राय-कर्मफल के सन्यास से है; जैसा गीता में कहा है—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुंमाश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥
एषा ब्राह्मीस्थिति पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥ २।७१-७२।
तस्माद्सक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तोह्याचन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः॥ ३।१९

इसके पीछे भूतात्मा ब्रह्म रूप होने से अलग अस्तित्व नहीं रखता; वह सब भावों से अलग हो जाता है, ब्रह्म को जानने वालों की ब्रह्म ही गति है; यह ब्रह्म अक्षर-कभी नष्ट नहीं होता; इसका कोई लक्षण नहीं। ब्रह्म को जानने वाले ही ब्रह्म को जानते हैं; मूर्ख व्यक्ति इसको नहीं जान सकता।

चरकसंहिता का शरीर स्थान मुख्यतः दर्शन विषय से ही सम्बन्ध रखता है; इसमें एक विशेष बात यह है कि आवश्यकतानुसार आयुर्वेद की दृष्टि से इसमें हम परिवर्तन देखते हैं; यथा—पुरुष गर्भ की उत्पत्ति (प्रभव) किससे होती है; इसके उत्तर में वायु-अग्नि-भूमि और जल इन चार भूतों से और छैः रसों से उत्पत्ति बताई है [शा. अ. २।४] इसी प्रकार भूतों के जाने के प्रकरण में आकाश को छोड़ दिया है [शा. अ. २।३१]।

उपनिषद में पंचमहाभूतों से प्रभव बताया है; यथा—परमात्मा-ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु; वायु से अग्नि, अग्नि से जल; जल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ; औषधियों से अन्न; अन्न से रेत; रेत से पुरुषः; यह पुरुष ही अन्न रसमय है [तैतरीय । १]। आयुर्वेद में चार भूत और छैः रस इसी से प्रभव बताया है। अश्वघोष ने भी चार भूतों से उत्पत्ति बताई है।

साथ में उस समय की मिथ्या धारणा को कि गर्भ को राक्षस हर लेते हैं; उसका भी स्पष्ट रूप में उत्तर दिया है कि कई बार स्त्री में ऋतु का रक्त वायु के कारण रुक जाता है। ऋतु स्राव न होने से मूर्ख लोग स्त्री को गर्भवती समझने लगते हैं। यही रक्त अग्नि-सूर्य-श्रम-शोक-रोग या गरम खान पान से फिर प्रवृत्त हो जाता है। ऋतु स्राव को चालु हुआ देखकर अज्ञ व्यक्ति कहने लगते हैं; कि गर्भ को भूतों ने-राक्षसों ने हर लिया है। इसी के उत्तर में आत्रेय ने समझाया कि ओज को खाने वाले राक्षसों को अपने आहार के लिए शरीर अपेक्षित नहीं है; यदि वे गर्भ का हरण आज करते हैं, तब समय मिलने पर माता का भी हरण वे कर सकते हैं। इसलिए यह विचार ठीक नहीं है [शा. अ. २।२८-३०]।

आत्मा का आना जाना—मन का सम्बन्ध रज और तम के साथ जुड़ा हुआ है; ज्ञान के द्वारा ही मन के ये दोनों दोष दूर होते हैं। देहान्तर गमन धर्म-अधर्म क्रिया में प्रवृत्ति के कारण रज और तम से युक्त मन और बलवान कर्म हैं। आत्मा अतीन्द्रिय और अति सूक्ष्म रूपों से कभी भी अलग नहीं होता; न कर्मों से, न मन से, न मति से तथा अहंकार जन्य विकार के दोषों से कभी भी अलग नहीं होता। इसलिये मन के वेग से प्रेरित आत्मा जन्म-मृत्यु के बन्धन में बँधता है [शा. अ. २।३७-३८]।

इसी से गर्भ को माता जन्य, पिता जन्य, आत्माजन्य, सात्म्य जन्य और रसजन्य बताया है इसमें सत्त्व मन; आत्मा का दूसरे शरीर से सम्बन्ध कराने का कारण है [शा, अ. ३।३] इस प्रसंग में भरद्वाज द्वारा की हुई चर्चा बहुत महत्व की है; इस चर्चा में देश में प्रचलित विचारों की अच्छी झांकी मिल जाती है। भरद्वाज ने एक एक कारण को लेकर उसमें शंका उठाई है, और यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि गर्भ न माता से होता है, न पिता से, न सात्म्य से न आत्मा से, न रस से और न मन इसमें औपपादिक कारण हैं [शा. अ. ३।१०]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका उत्तर भगवान पुनर्वसु आत्रेय ने फिर युक्ति पूर्वक दिया है—कि गर्भ की उत्पत्ति से सब समुदाय–सम्मिलित रूप में कारण होते हैं, जिस प्रकार कि कूटागार नाना द्रव्यों के समुदाय से बनता है, जिस प्रकार कि रथ-रथ के भिन्न अंगों के समूह से बनता है, उसी प्रकार इन सबके समुदाय रूप में एकत्रित होने से गर्भ बनता है।

भरद्वाज ने इस समुदाय के विषय में भी शंका उठाई, आत्रेय ने इसका भी निराकरण किया है–मन के लिए जीवस्पक् (जीव-आत्मा से छूने वाला) शब्द चरक संहिता के अतिरिक्त मेरे देखने में नहीं आया। साथ ही मनुष्य के शरीर का ढाँचा कैसे ढलता है, इसके लिए दिया हुआ उदाहरण बहुत ही शोभनीय है, जिस प्रकार की मोम के बने हुए साँचों में स्वर्ण-चांदी-ताम्र सीसक-रांगा पिघला कर ढालने पर साँचे के रूप के बन जाते हैं, उसी प्रकार से मनुष्य भी समुदाय रूप में उत्पन्न हो जाता है [शा. अ. ३।२४][1]।

इसके आगे मनुष्य में विकृति होने और न होने का उल्लेख जिस युक्ति से दिया वह बहुत ही महत्त्व की है प्रजननशास्त्र की दृष्टि से यह सिद्धान्त बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि स्त्री और पुरुष के मैथुन कार्य में जिस जिस अंग के बीज में जो जो बीज भाग दुषित होता है, गर्भ निर्माण में उस उस अंग के उस उस अवयवांश में विकृति होती है और दूषित न होने से विकृति नहीं होती (च. शा. अ. ३।२५)। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अन्धे माता-पिता की संतान अन्धी क्यों नहीं होती, और सुजाखे माता-पिता की संतान अन्धी क्यों होती है। जिस प्रकार कि कुम्हार मिट्टी के विना घट नहीं बना सकता, उसी प्रकार आत्मा इन्द्रियों के अभाव में कार्य नहीं कर सकता।

गर्भाशय में-शुक्र-शोणित और जीव का संयोग होने से गर्भ बनता है। इसमें सबसे प्रथम चेतना धातु-आत्मा (चेतनावान् यतश्चात्मा ततः कर्त्ता

---

१ प्राचीन काल में मुद्रा दो प्रकार से बनती थी, एक ठप्पे से जिसे आहत मुद्रा कहते थे; दूसरी प्रकार मुद्रा-धातु को साँचे में ढालकर बनाई जाती थी, यहाँ पर दूसरी प्रकार की मुद्रा का उल्लेख है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Library

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरुच्यते–शा. अ. १) भूतों को ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त होता है, आत्मा-मन के द्वारा अपना कार्य करता है। गुणों के–भूतों के उपादान काल में सबसे प्रथम आकाश को ग्रहण करता है, क्योंकि यह सबसे सूक्ष्म है, इसके पीछे क्रम से वायु-अग्नि जल-पृथ्वी आदि अधिक व्यक्तगुण वाले तत्त्वों को ग्रहण करता है। यह सब कार्य बहुत ही अल्प काल में हो जाता है।

पुरुष-लोक संमित (तुल्य) है—लोक के अन्दर पंचमहाभूतों के जो गुण धर्म-काय हैं, वे ही कार्य महाभूतों के इस शरीर में हैं, यथा–आकाश का धर्म शब्द है, श्रोत्र, लघुता, सूक्ष्मता और विरेक है। वायु का स्पर्श, स्पर्शन, रूक्षता प्रेरण, धातुओं की रचना और वर्णन, शरीर सम्बन्धि चेष्टायें हैं। अग्निका-रूप, दर्शन, पक्ति, प्रकाश और उष्णता धर्म है। जल का रस, रसना, शैत्य [उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रयोगाच्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य–रघु. ५।५४], मार्दव, स्नेह और क्लेद धर्म है। पृथ्वी का–गन्ध, घ्राण, गौरव, स्थिरता और मूर्त्ति धर्म है [शा. अ. ४]।

इस प्रकार से लोक और पुरुष के समता देखने पर पुरुष में सत्य बुद्धि उत्पन्न होती है, सब लोक को अपने में और अपने को सब लोक में देखने से सत्य ज्ञान (अभेद ज्ञान) होता है। छै धातुओं के समुदाय का नाम पुरुष है, इस पुरुष में जो काठिन्य है, वह पृथ्वी है, जो क्लेद है, वह जल है, जो सन्ताप है, वह अग्नि है, जो प्राण हैं वह वायु है, जो सुषिरता है वह आकाश है, जो आत्मा है वह ब्रह्म है, जिस प्रकार लोक में ब्रह्म का ऐश्वर्य है, उसी प्रकार से पुरुष में भी आत्मा की विभूति है। लोक में जो इन्द्र है, पुरुष में वही अहंकार है, लोक में जो आदित्य है, पुरुष में वही आदान है, लोक में जो रुद्र है, पुरुष में वही रोष है, लोक में जो सोम है, पुरुष में वही प्रसाद है, लोक में जो कृतयुग है, वही पुरुष का बाल्यपन है, लोक में जो त्रेता है, पुरुष में वही यौवन है, लोक में जो द्वापर है, पुरुष में वही बुढ़ापा है, लोक में जो कलियुग है, वही पुरुष में बीमारी है, लोक में जो युग समाप्ति है, पुरुष में वही मृत्यु है, इस प्रकार से अन्य बातों में भी दोनों की समानता देखनी चाहिए [शा. अ. ५।५]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता में भी पढ़ते हैं—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

गीता. ६। २९-३०।

इस पुरुष में हेतु (उत्पत्ति कारण); उत्पत्ति (जन्म); वृद्धि (बढ़ना); उपप्लव (दुःख का आना) वियोग (मृत्यु)–ये पांच वस्तुवें होती हैं। इन पांचों का मूल कारण ही सब दुःखों में प्रवृत्ति होती है; इन पांचों से पूर्णतः निवृत्ति ही उपरम या सुख है। प्रवृत्ति ही दुःख है और निवृत्ति ही सुख है। सब लोक में सामान्य ज्ञान देखने से सत्य ज्ञान होता है (आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ गीता. ६।३२)।

प्रवृत्ति और निवृत्ति के उपाय—प्रवृत्ति-मोह, इच्छा, द्वेष और कर्म के कारण होती है। प्रवृत्ति के कारण अहंकार-संग-संशय-अभिसप्लव-अभ्यवपात-विप्रत्यय अविशेष- अनुपाय हैं। यह प्रवृत्ति ही पाप का मूल है (शा अ. ५।१०)।

निवृत्ति–ही मोक्ष है; यह अतिशय शान्त है, यही अक्षर है, यही ब्रह्म हैं और यही मोक्ष। मोक्ष चाहने वाले के लिये उपाय–लोक में दोष देखने वाला पुरुष जो कि मोक्ष की चाह रखता हो उसे सबसे प्रथम आचार्य के पास जाना चाहिये।[1] आचार्य के उपदेश के अनुसार चलना; अग्नि की उपासना, धर्म-शास्त्र के अनुसार व्यवहार, धर्मशास्त्र के अर्थ का ज्ञान, उससे धैर्य उत्पन्न करना, उसमें कहे अनुसार बरतना। सज्जनों का सत्संग असज्जनों का परित्याग, दुर्जन के साथ असंगति, सत्य-सब प्राणियों के लिए हितकारी, अकठोर-समय

(१) अयमधिकारी जननमरणादि संसारानलसंतप्तो प्रदीप्त शिराजलराशि मिवोपहारपाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्टं गुरुमुपसृत्य तमनुसरति "समित्पाणि श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्टं इत्यादि श्रुतेः॥" वेदान्तसार। ५। (२) परीक्ष्य लोकाः कर्म चिता-न्ब्राह्मणो निर्वेदमायन्तास्त्यकृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। मुण्डक १२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर—जांचकर बोलना, सब प्राणियों में अपनापन समझना, स्त्रियों का स्मरण-संकल्प-प्रार्थना-बात चीत न करना, किसी से कुछ न लेना, गुह्य अंगों के आवरण के लिए ही कौपीन मात्र (शेष शरीर पर वस्त्र न पहिनना) धारण करना, कन्था को सीने के लिये सूई और सूई रखने की नलिका रखनी चाहिए। शौच कार्य के लिये जलपात्र रक्खे। जो मिले उससे ही भोजन करे। थकान दूर करने के लिये—वृक्ष से गिरे-सूखे पत्तों पर ही सोना, समाधि के लिए ही शरीर को स्थिर रखना, वन में विना घर के रहना, तन्द्रा-निद्रा-आलस्यादि से बचना, इन्द्रियों के अभिलषित विषयों से मन को रोकना, सोने-उठने-चलने-देखने-आहार-विहार-अंगों की चेष्टा में स्मृति पूर्वक प्रवृत्ति, सत्कार-स्तुति-अपमान-तिरस्कार में सम बुद्धि (मानापमानयोस्तुल्यः—गीता), भूख-प्यास, श्रम, परिश्रम, शीत, उष्ण-वायु-वर्षा-सुख दुःख का सहन करना, शोक, दैन्य-मान-उद्वेग, मद-लोभ-राग-ईर्ष्या भय-क्रोध में भी विचलित न होना, मोक्ष के लिये बुद्धि-धृति-स्मृति का उपयोग, सब प्रवृत्तियों में पाप बुद्धि रखना, सब के सन्यास में—छोड़ने में सुख है, यह धारणा बनाना; यह मार्ग मोक्ष के लिए है, इसके विपरीत करने से संसार के जन्म-मरण के बन्धन में बँधता है (शा. अ. ५।१२)।

इन उपायों से मन निर्मल बन जाता है, जिस प्रकार कि तैल-वस्त्र आदि से पूँछने पर दर्पण निर्मल बन जाता है। ग्रहण-बादल-धूल-धूम कोहरे से स्वच्छ जैसा सूर्य चमकता है, वैसा मन भी चमकने लगता है। इन्द्रियों से निवृत्त, आत्मा में ही रुका हुआ मन शुद्ध-स्थिर-प्रसन्न हो जाता है, जिस प्रकार कि गृह में या दीपाशय में (दीवट में) दीपक स्थिर बन जाता है (यथा दीपो निवातस्थोनेङ्गते सोपमा स्मृताः। योगिनो यतचितस्य युञ्जतो योग-मात्मनः ॥ (गीता ६।१८)।

मन के निर्मल होने से सत्या बुद्धि उत्पन्न होती है, इस सत्य बुद्धि ज्ञान से महा मोह मय तम का भदेन कर देता है। अब पुरुष सब पदार्थों के स्वभाव को सही रूप में जानकर उनके प्रति निःस्पृह बन जाता है, निःस्पृह बन कर योग को सिद्ध करता है, योग को सिद्ध करके सांख्य-तत्त्वज्ञानी बन जाता है (एकं सांख्यं च योगश्च यः पश्यति स पश्यति—गीता ५।५)। मन के शुद्ध हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाने पर पुरुष संयोग से मुक्त हो जाता है, अब वह ब्रह्म रूप (अहं ब्रह्मास्मि) हो जाता है (ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद् भक्तिं लभते पराम्–गीता १८।५४) । इसीको अमृत, शान्ति, ब्रह्म, निर्वाण कहते हैं । इसको जान कर मुनि लोग-मोह-रज-स्पृहा से मुक्त बने ।

इस प्रकार चरक संहिता में न्यायदर्शन, सांख्यदर्शन योगदर्शन और वेदान्त के सिद्धान्तों का समन्वय रूप में उल्लेख मिलता है । कहीं पर भी इन दर्शनों का नाम नहीं–यह सत्य है कि वैदिक मर्यादा के अनुसार ही जो कि उस समय प्रचलित थी या जिसका उस समय प्राधान्य था–चरक संहिता में उनका उल्लेख किया है । देश में उस समय भी नास्तिक विचार तथा भिन्न-भिन्न बाद प्रचलित थे, पुनर्जन्म के विषय में विवाद था, पुनर्जन्म की सत्ता को स्वीकार न करने वाले भी लोक थे, जो कि आस्तिक दर्शनों को नहीं मानते थे । चरक संहिता में इन सब वादों की उपयोगिता तथा नास्तिक बुद्धि का निषेध आस्तिक-वेद सम्मत विचारों से किया गया है ।[1]

चरक संहिता में देवता-गौ-ब्राह्मण के प्रति सदा भक्ति दिखाई है [सू ८।१२०] सूतिकागार में प्रवेश के लिए जो विधान बताया है-वह कितना आस्तिक है–देखिये—'इसके पीछे नवां मास लगने पर पवित्र दिन में–प्रशस्त भगवान चन्द्रमा का प्रशस्त नक्षत्र के साथ योग होने पर; कल्याणकारी करण के; अनुकूल मूहुर्त्त में; शान्ति पाठ करके, गाय-ब्राह्मण-अग्नि और जल को पहिले घर में प्रविष्ट करके, गायों के लिये घास और जल देकर-मधु और लाजा

---

१ चरक संहिता में आये शब्द–रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव-शब्द भी संस्कृत साहित्य में आये इन शब्दों से भिन्न नहीं है, यथा—वीर्य के लिये–१ "तुतोष-वीर्यातिशयेन वृत्रहा" कालिदास, २–अतिवीर्यवतीवभेषजे-भारवि ।

विपाक के लिये–१ हन्त हा विधिविलसितानां हि विचित्रो विपाकः–माव. २ भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः–भारवि । ३ प्रभाव–अहो प्रभावस्त-पसां–बाण ४ रस–सहस्रगुणमुत्स्त्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः–कालिदास । विशेष जानकारी के लिए लेखक की लिखी–भेषज्यकल्पना-हिन्दी साहित्य संम्मेलन से प्रकाशित देखें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से गायों की पूजा करके; ब्राह्मणों की अक्षत, फूल और फल से अर्चना करके, आसन पर बैठे पूज्यों को नमस्कार करके; फिर स्वस्ति पाठ करे। फिर पुण्य-कारी वचनों के साथ; गाय ब्राह्मणों के साथ साथ चलते हुए सूतिकागार में प्रवेश करे [शा अ ८।३७]।

चरक संहिता में सब विचारों का समन्वय आयुर्वेद की दृष्टि से किया हुआ है। उसमें न्यायदर्शन का नाम भले ही न हो, परन्तु न्यायदर्शन के प्रमाणों को, उसमें वर्णित वादमर्यादा वाद के नियमों का उल्लेख इसमें उसी रूप से है। इसलिए चरक संहिता का सम्बन्ध आस्तिक दर्शनों से ही है। आवश्य-कतानुसार देश में प्रचलित दूसरे वादों का भी उल्लेख मिलता है।

काल मृत्यु और अकाल मृत्यु

मृत्यु विषयक विचार चरक में दो स्थान पर आये हैं—एक विमान स्थान में [अध्याय ३ में] और दूसरा शारीरस्थान में [अध्याय छै: में] हैं। प्रत्येक आदमी जो मरता है; वह काल में ही मरता है। परन्तु जिस प्रकार काल में वर्षा होती है और विना समय के भी वर्षा होती है; जिस प्रकार कि काल-ऋतु में पुष्प होता हैं और बिना ऋतु समय के भी पुष्प होता है, उसी प्रकार मृत्यु काल में भी हाती है और अकाल में भी होती है। जिस प्रकार कि एक गाड़ी पर उचित भार रखकर ठीक रास्ते से ले जाया जाये तो वह अपने समय पर जाकर टूटती है, इसी प्रकार जो मृत्यु ठीक प्रकार-नियम पूर्वक जीवन यापन से समय पर होती है, वह काल मृत्यु है; और जब वही गाड़ी अधिक भार भरकर ऊँचे-नीचे रास्ते से ले जाने के कारण टूट जाती है, तब यह अकाल भंग है, इसी प्रकार जब जीवन अहितकारी आहार-विहार से समय से पूर्व नष्ट होता है, तो यह अकाल मृत्यु है। वास्तव में जो व्यक्ति मरता है, वह काल में ही मरता है; काल में कोई छेद अवकाश नहीं है; काल निरवयव है, उसमें छिद्रता नहीं है। इसलिये अकाल मृत्यु नहीं है, परन्तु यदि सबकी आयु का प्रमाण निश्चित हो—काल मृत्यु हो—तो हिताहित का ज्ञान व्यर्थ हो जाये; प्रत्यक्ष-अनुमान-उपदेश—ये सब प्रमाण व्यर्थ होजायें—आयुष्य और अनायुष्य सम्बन्धि ज्ञान व्यर्थ हो जाये इसलिये अकाल मृत्यु नहीं है, यह केवल कथनमात्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही [वाग्वस्तुमेतद् ऋषियो मन्यन्ते यदुच्यते नाकालमृत्युरस्ति=शा. अ. ६।२८]। इस काल में आयु का प्रमाण एक सौ वर्ष है; इससे पूर्व मृत्यु होना अकालमृत्यु है।

अश्वघोष और चरक-संहिता[1]

अश्वघोष कवि, उपदेशक, आचार्य और सन्यासी थे। ये साकेत के रहने वाले थे, इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। इनका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। इन्होंने वेद, उपनिषद् रामायण, महाभारत का अध्ययन किया था। बौद्ध धर्म की दीक्षा पूर्णयशस से ली थी, जो कि पार्श्व के शिष्य थे। बौद्ध धर्म में दीक्षित होने पर बौद्ध धर्म के प्रचार में इन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। इसके लिए इन्होंने काव्य और संगीत की सहायता ली थी।

चीनी परम्परा के अनुसार अश्वघोष कनिष्क के समकालीन थे। किंवदन्ती है कि पाटलीपुत्र के राजा ने कनिष्क से हार मानकर शुल्क के रूप में कवि अश्वघोष कनिष्क को दे दिया था। अश्वघोष ने अपनी शेष आयु कनिष्क को बौद्ध धर्म का उपदेश देने में बिताई थी। इसलिए अश्वघोष का समय ईसा की पहिली शताब्दी का उत्तरार्द्ध या दूसरी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। क्योंकि कनिष्क का यही समय आज मान्य है।

अश्वघोष की दो रचनायें मुझे मिली, एक सौन्दरानन्द महाकाव्य और दूसरा बुद्ध चरित। बुद्धचरित संस्कृत में अपूर्ण मिला। इन्हीं की सहायता से अश्वघोष के बचनों की चरक संहिता के वचनों से तुलना की है, यथा—

आयुर्वेद को आत्रेय ने बनाया—चरक संहिता में आयुर्वेद का क्रम जो दिया है, उसमें भरद्वाज मुनि आयुर्वेद को इन्द्र से सीख कर आये, और उन्होंने इस आयुर्वेद ज्ञान को अन्य शिष्यों को दिया [सू. अ. १।२५–२६]। जिन ऋषियों ने भरद्वाज मुनि से आयुर्वेद सीखा, उनमें एक ऋषि पुनर्वसु भी थे। पुनर्वसु ने आयुर्वेद का उपदेश अपने छः शिष्यों को दिया [सू. अ. १।३०]। इसी से इस शास्त्र को पौनर्वसव शास्त्र [पुनर्वसुना मुनिना प्रोक्तमा-

---

१ विशेष जानकारी के लिए लेखक की पुस्तक 'संस्कृत काव्यों में आयुर्वेद' में कवि अश्वघोष देखिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युर्वेदमधीते पौनर्वसव इति] भी कहते हैं, जैसा कि बाण भट्ट ने हर्षचरित में कहा है—

"तेषां तु भिषजांमध्ये पौनर्वसवो युवाष्टादशवर्षदेशीयस्तस्मिन्नेव राजकुले कुलक्रमागतागतः पारमष्टांगस्यायुर्वेदस्य भूभुजा सुतनिर्विशेषं लालितः प्रकृत्यैवातिपटीयस्या प्रज्ञया यथावद् विज्ञाता व्याधि स्वरुपाणा रसायनो नाम वैद्यकुमारकः सास्नतूष्णीमधोमुखोऽभूत । पृष्टश्च राजसुनूना-सखे रसायन, कथय तथ्यं यद्यसाध्विवपश्यसि इति । हर्षचरित, पंचम ऊछ्वास ।

पुनर्वसु नाम आत्रेय का था, सम्भवतः इनका जन्म पुनर्वसु नक्षत्र में हुआ था [पृष्ठ ४]। आत्रेय से अभिप्राय अत्रिपुत्र से है (पृष्ठ १)। इन्होंने ही आयुर्वेद का उपदेश किया था; इसी को कवि ने कहा है—

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ यन्नच्यवनो महर्षिः ।
चिकित्सितं यच्च चकार नात्रि पश्चात्तदात्रेय ऋषिर्जगाद ।। बुद्ध चरित

उपमायें—चरक में दी हुई उपमायें अश्वघोष ने भी अपने काव्यों में उसी प्रकार से दी हैं, यथा—

चित्रप्रदीप—चित्र में बना प्रदीप केवल दर्शनीय ही होता है, उससे कोई कार्य नहीं होता, नया दीपक भी उससे जलाया नहीं जा सकता, इसी प्रकार से निःसन्तान पुरुष भी बेकार है, केवल नाम मात्र का वह पुरुष होता है—

चित्रप्रदीपः सरः शुष्कमधातुर्धातुसन्निभः ।
निष्प्रजस्तृणपूलीति मन्तव्यः पुरुषाकृतिः ।। चरक. चि. २।१।१७.

अश्वघोष की रचना में—

पाणौकपालमवधाय विधाय मौण्ड्यं मानं निधायविकृतं परिधाय वासः।
यस्योद्भवो न धृतिरस्ति न शान्तिरस्तिचित्रप्रदीपइवसोऽस्ति च नास्तिचैव॥

घट की उपमा—अत्रिपुत्र ने काल मृत्यु और अकाल मृत्यु का स्पष्टीकरण करने के लिये उदपान घट और चित्रघट का उदाहरण दिया है। यदि चित्रघट या पीने के पानी वाली घड़े को सम्भाल कर रक्खें तो वह देर तक सुरक्षित रहता है, और अपने पूर्ण समय में नष्ट होता है। परन्तु यदि इनको ठीक प्रकार से सुरक्षित न रक्खें तो असमय में ही नष्ट हो जाते हैं, इसी प्रकार से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य की आयु है; यदि ठीक प्रकार से रक्षा की जाये तो मृत्यु समय पर होती है; अन्यथा असमय में ही समाप्त हो जाती है। [चरक. वि. अ. ३।४२]

अश्वघोष ने इसी बात का इस प्रकार कहा है—

शरीरमामादपि मृन्मयाघटादिदं तु ते सारतमं मतं मम ।
चिरं हि तिष्ठेत् विधिवद् धृतो घटः समुच्छ्रयोऽयं सुधृतोऽपि भिद्यते ।।

दार्शनिक विचार—चरक में पुनर्भव [पुनर्जन्म]; प्रवृत्ति के कारण शरीर निर्माण का विचार किया है। अश्वघोष ने भी इसी प्रकार से, इसी रूप में इनका उल्लेख किया है। यथा—

(१) **जन्म का कारण**—कुछ लोग जन्म का कारण माता पिता को मानते हैं; दूसरे स्वभाव को, तीसरे परनिर्माण को, चौथे यदृच्छा को कारण मानते हैं। [चरक. सू अ. ११।६]। इसी तरह सूत्र स्थान के पच्चीसवें अध्याय में मनुष्य और रोग की उत्पत्ति का कारण निर्णय करते हुए भिन्न भिन्न ऋषियों के मत बताये हैं, वहाँ पर काल, प्रजापति, यदृच्छा, माता पिता, आत्मा आदि को कारण बताते हुए परस्पर प्रतिवाद दिखाया है [सू. अ. २५] सुश्रुत में भी स्वभाव, ईश्वर, काल, यदृच्छा, नियति परिणाम को कारण मानने वाले पृथुदर्शियों का उल्लेख मिलता है [शा. अ. १।११] श्वेताश्वेतर उपनिषद् में इन सब वादों का उल्लेख है [श्वेताश्वेतर १।३] देखिये पृष्ठ ६९ से ७२ इसी में। अश्वघोष ने भी इन सबका उल्लेख इसी प्रकार से किया है—

प्रवृत्तिर्दुखस्य च तस्यलोके तृष्णादयो दोषगणा निमित्तम् ।
नैवेश्वरो न प्रकृतिर्नकालो नापि स्वभावो न विधिर्यदृच्छा ।।
केचित् स्वाभावादिति वर्णयन्ति शुभाशुभं चैव भवाभवौ च ।
स्वाभाविकं सर्वमिदं च यस्मात् अतोऽपि मोघो भवति प्रयत्नः ।।
अद्भिः हुताशः शमसभ्युपैति तेजोसि चापो गमयन्ति शोषम् ।
भिन्नानि भूतानि शरीरसंस्थान्यैक्यं च गत्वा जगद् उद्वहन्ति ।।
यत्पाणिपादोदर पृष्ठ मूर्ध्नां निर्वर्त्तते गर्भगतस्य भावः ।
यदात्मनस्तस्य च तेन योगः स्वभाविकं तत्कथयन्ति तज्ज्ञा ।।
कः कण्टकस्य प्रकरोतितैक्ष्ण्यं विचित्रभावं मृगपक्षिणां वा ।
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं न कामकारोऽस्ति कुतः प्रयत्नः ।।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्गवदन्तीश्वरस्तथान्ये तत्र प्रयत्ने पुरुषस्यकोऽर्थः।
य एवहेतुर्जगतः प्रवृत्तौ हेतुर्निवृत्तौ नियतः स एव॥[१]
केचित्वदन्त्यात्मनिमित्तमेव प्रादुर्भवं चैव भवक्षयं च।
प्रादुर्भवं तु प्रवदन्त्ययत्नाद्यत्नेन मोक्षाधिगमं ब्रुवन्ति॥

(२) **पुनर्जन्म**—चरक में परलोकैषणा का वर्णन करते हुए लिखा है कि परलोक के विषय में संशय है, क्योंकि यहां से मरने के पीछे फिर हमारा जन्म होगा भी वा नहीं, यह सन्देह रहता है। क्योंकि कुछ लोग प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं, पुर्नजन्म परोक्ष की बात है, इसलिये वे नास्तिक मत को स्वीकार करते हैं (अस्ति नास्ति दृष्टं मतिः-पाणिनि)। दूसरे विद्वान शास्त्र वचन से पुनर्जन्म को मानते हैं। इसलिये सन्देह है कि पुनर्जन्म है वा नहीं।

इसमें बुद्धिमान को चाहिये कि वह नास्तिक बुद्धि को छोड़ दे और इसमें सन्देह भी न करे। क्योंकि प्रत्यक्ष वस्तु बहुत थोड़ी है, और अप्रत्यक्ष बहुत है, जिसको शास्त्र अनुमान और युक्ति के द्वारा निश्चय किया जाता है। जिन इन्द्रियों से हम प्रत्यक्ष करते हैं, वे स्वतः अप्रत्यक्ष हैं (आंख-आंख को नहीं देखती, कान को आंख नहीं देखती)। इसी प्रकार दृश्य के आंख के बहुत नजदीक रहने से या बहुत दूर रहने से, बीच में परदा होने से, इन्द्रिय की

१ तुलना कीजिये चरक के निम्न श्लोकों से—

जायन्ते हेतु वैषम्याद् विषमा देह धातवः।
हेतुसाम्याद् शमस्तेषां स्वभावोपरमः सदा॥
प्रवृत्तिहेतुर्भावानां न निरोधेऽस्ति कारणम्।
केचित् तत्रापि मन्यन्ते हेतुं हेतोरवर्त्तनम्॥ चरक. सू. अ. २५

२ काल को कारण कामसूत्र में कहा है—

तत्सर्वं कालकारितमिति कालएव पुरुषानर्थानर्थयोर्जयपराजययोः सुखदुःखयोश्च स्थापयति। कालेन बलिरिन्द्रकृतः कालेनव्यवरोपितः, कालएव पुनरप्येनं कर्त्तेतिकालकारणिकः॥ कामसूत्र—

कालः पचतिभूतानि कालः संहरतिप्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥ जयमंगल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्बलता से, मनके अन्यत्र लगा रहने से बहुत सी वस्तुओं के एक समान रहने से, अति सूक्ष्म होने से, किसी वस्तु से तिरस्कृत रहने पर प्रत्यक्ष का ज्ञान नहीं होता। इसलिये जो यह कहते हैं कि प्रत्यक्ष ही सब कुछ है, उनकी बात ठीक नहीं, सत्य नहीं है।

जो श्रुति तुम कहते हो कि—माता पिता जन्म के कारण हैं स्वभाव, पर निर्माण, यदृच्छा को दूसरे कारण मानते हैं, यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि इसमें युक्ति नहीं बैठती। आत्मा का संचरण दो प्रकार से हो सकता है, सर्व रूप में या अंश रूप से। सम्पूर्ण रूप में माता पिता की आत्मा पुत्र में आये तो एक की मृत्यु अवश्यभावी है। आंशिक रूप में वह आ नहीं सकती, क्योंकि आत्मा निरवयव एवं अतीन्द्रिय है। अनादि चेतना धातु को दूसरा बनाने वाला भी नहीं, यदि किसी को बनाने वाला स्वीकार करते हो तो उसे बनाने वाला दूसरा मानना पड़ेगा, इस प्रकार से अनन्त परम्परा दोष आता है। इसलिये नास्तिक बुद्धि को छोड़ कर आस्तिक बुद्धि को स्वीकार करके पुनर्जन्म मानना चाहिये (चरक सू. अ. ११।६-३३)।

अश्वघोष ने भी इसका उल्लेख इसी रूप में किया है—

पुनर्भवोऽस्तीति च केचिदाहुर्नास्तीति केचिन्नियत प्रतिज्ञाः।
एवं यदासंशयितोऽयमर्थः तस्मात्क्षमं भोक्तुमुपस्थिता श्रीः ॥[1]

---

१ मोक्ष का मार्ग चरक में बताया है, यथा—

पुनर्जन्म के लिये धर्म द्वार कहे जाते हैं; गुरुशूश्रूषा, अध्ययन, व्रतचर्या, गृहस्थाश्रम (कालोह्ययं सक्रमितु द्वितीय सर्वोपकारक्षममाश्रमते—रघुवंश), सन्तान उत्पन्न करना, भृत्यों का पोषण; अतिथि पूजा; दान; अनभिध्या, तप, अनसूया; शरीर-मन वाणि से बुरा काम न करना; देह-इन्द्रिय-मन-अर्थ बुद्धि आत्म-परीक्षा में, मन को समाधि में लगाने का यत्न करे। इसी प्रकार के जो दूसरे कर्म सज्जनों से अनिन्दित; स्वर्ग को देने वाले; वृत्ति-पुष्टि का करने वाले हों, उनको करना प्रारम्भ करें। इस प्रकार करने से इस लोक में यश मिलता है; और मरने पर स्वर्ग मिलता है। (सू. अ ११।३३)। मोक्ष के उपाय चरक॰ शा. अ. ५ में वर्णन किए हैं—"मुमुक्षुणामुदयनानि व्याख्यास्यामः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्तीति केचित्परलोकमाहुर्मोक्षस्य योगं न तु वर्णयन्ति।
अग्नेर्यथाह्यौष्णमपांद्रवत्वं तद्वत्प्रवृत्तौ प्रकृतिं वदन्ति॥

(३) **प्रवृत्ति हेतु**—मोह, इच्छा, द्वेष, कर्म इनके कारण प्रवृत्ति (मनुष्य का जन्म) होती है, मनुष्य संसार में जन्म लेता है। इनके कारण से उत्पन्न अहंकार, संग, संशय, अभिसंप्लव, अभ्यवपात, विप्रत्यय, अविशेष और अनुपाय ये पुरुष को घेर लेते हैं, जिस प्रकार से कि एक छोटे वृक्ष को बड़ी शाखाओं वाला वृक्ष घेर कर अपने में लीन कर लेता है। इनके कारण से तिरस्कृत मनुष्य अपनी सत्ता को भूल जाता है। इस प्रकार अहंकार आदि दोषों से घुमाया जाता हुआ मनुष्य अपनी प्रवृत्ति को नहीं छोड़ता और यह प्रवृत्ति पाप का मूल है (शा. अ. ५।१०)।

अश्वघोष ने भी इनको ठीक इसी प्रकार से कहा है—देखिये—

विप्रत्ययादहङ्कारात्संदेहादभिसंप्लवात्।
अविशेषानुपायाभ्यां संगादभ्यवपाततः॥
तत्र विप्रत्ययो नाम विपरीतं प्रवर्त्तते।
अन्यथाकुरुते कार्यं मन्तव्यं मन्यतेऽन्यथा॥
ब्रवीम्यहं वेद्मि गच्छाम्यहमहं स्थितः।
इतीहैवमहंकारस्त्वनहंकारवर्त्तते॥
यस्तु भावानसंदिग्धानेकी भावेन पश्यति।
मृत्पिण्डवदसंदेह संदेहः स इहोच्यते॥
य एवा हं स एवेदं मनोबुद्धिश्च कर्म च।
यश्चैवेष गणः सोऽहमिति यः सोऽभिसंप्लवः॥
अविशेषं विशेषज्ञ प्रतिबुद्धाप्रबुद्धयोः।
प्रकृतीनां च यो वेद सोऽविशेष इति स्मृतः॥
नमस्कार वषट्कारौ प्रोक्षणाभ्युक्षणादयः।
अनुपाय इति प्राज्ञैरुपायज्ञः प्रवेदितः॥
सज्जते येन दुर्मेधा मनोवाग्बुद्धिकर्मभिः।
विषयेष्वनभिषङ्ग सोऽभिष्वङ्ग इति स्मृतः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ममेदमस्येति यद्दुःखमभिमन्यते।
विज्ञेयोऽभ्यवपातः सः संसारे येन पात्यते ॥ बुद्धचरित.

इन शब्दों को स्पष्टीकरण ठीक इसी प्रकार चरक संहिता में मिलता है ये शब्द इन दो ग्रन्थों के सिवाय इसी अर्थ में मुझे अन्यत्र नहीं मिले।

(४) चारभूत—चरक में लिखा है कि गर्भ में आत्मा चार भूतों के—वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के साथ प्रविष्ट होती है भूतैश्चतुर्भिः सहितः ससूक्ष्मैः मनोजवोदेहमुपैति देहात्। [शा. अ. २।३१]। आकाश तो इन सब तत्त्वों में विद्यमान ही रहता है, इसलिये उसको नहीं गिना।[1]

अश्वघोष ने भी इन्हीं चार भूतों काउल्लेख किया है—

यदम्बुभूवाय्वनलाश्चधातवः सदाविरुद्धा विषमा इवोरगाः।
भवन्त्यनर्थायशरीरमाश्रिताः कथं बलं रोगविधो व्यवस्यति ॥

इसके सिवाय, दो प्रकार के रोग, आहार की विवेचना, चैत्ररथ वन आदि विषय जो चरक संहिता में हमको मिलते हैं, वे सब इसी रूप में अश्वघोष की रचना में मिलते हैं [देखिये-मेरा लिखा—संस्कृत काव्यों में आयुर्वेद]।

इन सब प्रमाणों के आधार पर इतना स्पष्ट है कि दोनों का समय बहुत दूर का नहीं है चैत्ररथवन का उल्लेख अश्वघोष और कालीदास को छोड़कर किसी दूसरे कवि ने नहीं किया। चरक के वचन या सिद्धान्त जितने अधिक रूप में अश्वघोष की रचना में मिलते हैं, उतने किसी दूसरे कवि की रचना में नहीं हैं। अश्वघोष को बहुत से विद्वान कालिदास से पूर्व मानते हैं, कोई पीछे; क्योंकि दोनों की रचना में बहुत समता है। परन्तु चरक संहिता के साथ अश्वघोष की रचना मिलने से अश्वघोष अवश्य कालिदास से पहिले के प्रतीत होते हैं। चरक संहिता का ढांचा, उसके मंतव्य वैदिक प्रक्रिया सम्मत रहने से अश्वघोष

---

१ चार्वाक दर्शन में भी ये ही चार भूत माने हैं, यथा—

अत्रचत्वारि भूतानिभूमिवार्यनलानिलाः।
चतुर्भ्यः खलुभूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते ॥ सर्वदर्शन संग्रह

एक प्रकार से चार्वाक सम्मत दर्शन को भी चरक में स्थान मिला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पूर्व के हैं; परन्तु बहुत पूर्व के नहीं। अश्वघोष पहिले ब्राह्मण था, वैदिक प्रक्रिया को मानता था, इसलिए उसका इन मन्तव्यों से परिचित होना स्वाभाविक हैं; इसीसे उसकी रचना में यह सब इसी प्रकार से प्रति विम्बित मिलते हैं। अश्वघोष कनिष्क के समकालीन थे, इसी से चरक संहिता का उपदेश भी इसीके आस-पास आत्रेय ने किया होगा।

चरक संहिता में जहां सांख्य और न्यायदर्शन के सिद्धान्त मिलते हैं, वहां पर चार्वाक और बौद्धदर्शन सम्बन्धित बचन भी मिलते हैं। इस प्रकार आयुर्वेद का कम से कम ऋषि अत्रिपुत्र का दर्शन-दृष्टि एक अपनी विशेषता लिए हुए है, उसमें सभी उपादेय सिद्धान्तों का समन्वय है, उन सबके लिये स्थान है भले ही वे सिद्धान्त किसी भी दर्शन के हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५

चरक संहिता की भाषा

संहिता छन्द में ही लिखी जाती है; छन्द का अर्थ सामान्य रूप में ढांपना है; छन्द रचना गद्य और पद्य दोनों में होती है। गद्य के छन्दों में अक्षरों की गणना का महत्त्व है, पद्य के छन्दों में मात्रा का महत्त्व रहता है। संहिताओं में प्रयुक्त होनेवाले छन्द, और उनके भेद तथा अक्षर संज्ञा निम्न प्रकार से है—

छन्दनाम— अक्षरसंज्ञा—

गायत्री—इसके नौ भेद हैं—

	प्रथमपाद.	द्वितीयपाद	तृतीयपाद.	चतुर्थपाद.
गायत्री.	८	८	८	
पाद निचृत्	७	७	७	०
अतिपाद निचृत्	६	८	७	०
नागी	९	९	६	०
वाराही	६	९	९	०
वर्द्धमाना	६	७	८	०
प्रतिष्ठा	८	७	६	०
त्रिपाद विराट्	११	११	११	०
द्विपाद् गायत्री	१२	८	०	०

अनुष्टुभ—पांच प्रकार का है—

अनुष्टुप	८	८	८	८
त्रिपाद अनुष्टुप	१२	८	१२	०
पुरा अनुष्टुप	८	१२	१२	०
मध्येऽनुष्टुप	१२	८	८	०
अन्तेऽनुष्टुप	१२	१२	८	०

उष्णिक्—चार प्रकार का है—

उष्णिक्	७	७	७	७
परो उष्णिक्	८	८	१२	०
ककुदुष्णिक्	८	१२	८	०
पुर उष्णिक्	१२	८	८	०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहती—सात प्रकार का है—

पुरस्ताद् बृहती	१२	८	८	८
पथ्या बृहती	८	८	१२	८
न्यङ्कुसारीणी	८	१२	८	८
उपरिष्टाद् बृहती	८	८	८	१२
क्वचिद् बृहती	६		६	६
ऊपरबृहती[क्वचिद्बृहती]	१०	१०	८	८
महा बृहती	१२	१२	१२	०

त्रिष्टुप ज्योतिष्मती—तीन प्रकार का है—

पुरस्तार ज्योति	११	८	८	८	८
मध्ये ज्योति	८	८	११	-	८
उपरिष्टा ज्योति	८	८	८	८	११

जगती ज्योतिष्मती—तीन प्रकार का है—

पुरस्ता ज्योति	१२	८	८	८	८
मध्येज्योति	८	८	१२	८	८
उपरिष्टाज्योति	८	८	८	८	१२

पंक्ति—पन्द्रह प्रकार का है—

पंक्ति छन्द	१२	१२	८	८	०	०
स्वतः पंक्ति	१२	८	१२	८	०	०
आस्तारपंक्ति	८	८	१२	१२	०	०
प्रस्तारपंक्ति	१२	१२	८	८	०	०
विराट् पंक्ति	८	१२	१२	८	०	०
अक्षर पंक्ति	५	५	५	५	०	०
षड् विद्या	५	५	४	४	०	०
,,	४	४	५	५	०	०
,,	५	४	४	५	०	०
,,	५	४	५	४	०	०
,,	४	५	४	५	०	०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद पंक्ति	५	५	५	५	५	०
पंक्ति	४	६	५	५	५	०
पथ्यापंक्ति	८	८	८	८	८	०
जगतीपंक्ति	८	८	८	८	८	८

जिन छन्दों में पाद की कमी रहती है, वे छन्द इक्कीस हैं—

उत्कृतिः	१०४	अक्षरसंख्या	अष्टि	६४	अक्षर संख्या
अतिकृति	१००	,,	अतिशक्करी	६०	,,
सङ्कृति	९६	,,	शक्करी	५६	,,
विकृति	९२	,,	अतिजगती	५२	,,
आकृति	८८	,,	जगती	४८	,,
प्रकृ'त	८४	,,	त्रिष्टुप	४४	,,
कृ'त	८०	,,	पंक्ति	४०	,,
अतिधृति	७६	,,	बृहती	३६	,,
धृतिः	७२	,,	अनुष्टुप	३२	,,
अत्यष्टिः	६८	,,	उष्णिक्	२८	,,
			गायत्री	२४	,,

गायत्री आदि छन्दों में पाद में निर्दिष्ट अक्षर संख्या में एक अक्षर की न्यूनता रहे तो **निचृत्** संज्ञा होती है; यदि एक अक्षर अधिक रहे तो **भूरिक्** संज्ञा होती है; दो अक्षरों की न्यूनता रहने में **विराट्** संज्ञा; दो अक्षरों की अधिकता रहने पर **सराट्** संज्ञा होती है[१]।

जिस प्रकार पद्य रचना में छन्द के नियमों का पालन करना होता है; वैसा प्रायः गद्य रचना में नहीं किया जाता; विशेषतः वैदिक साहित्य से अन्य साहित्य में गद्य के अन्दर पर्याप्त छूट से काम लिया जाता है।

---

१ कविराज गंगाधर की जल्पकल्पतरु टीका से तथा सारस्वती सुषुमा (भाद्र पूर्णिमा २०११) में श्री युधिष्ठिर मीमांसक जी के लेख के आधार पर।

छन्द का लक्षण—यदक्षर परिमाणं तच्छन्दः।

अथवा—छन्दोऽक्षरसंख्या व्यवच्छेदकमुच्यते ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरकसंहिता में गद्य और पद्य दोनों मिलते हैं, इसलिये इसका समावेश 'चम्पू' में होता है। मुख्यतः गद्य भाग ही वर्णित है, इसका कारण यही है कि गद्य के अन्दर वक्ता अपनी बात को अधिक स्वतन्त्रता से कह सकता है, और शिष्य भी अपनी शंकाओं को सरलता से उपस्थित कर पाता है। इसीलिये प्रवचन या उपदेश मुख्यतः गद्य द्वारा ही किया हुआ मिलता है, यही स्वाभाविक है। इसमें किसी प्रकार का बन्धन बोलने वाले के लिये नहीं रहता [वृत्तबन्धोज्झितं गद्यम्], गद् धातु का अर्थ बोलना है। इसलिये गद्य स्वाभाविक है, भाषा का मुख्य काम भावों को व्यक्त करना है, यह कार्य पद्य की अपेक्षा गद्य में सुगमता से होता है। वाक्य के द्वारा मनुष्य अपने विचारों को दूसरों तक पहुंचता है, पद के समूहों का नाम वाक्य है [पद समूहो वाक्यम्-], सुप् और तिङ् की समाप्ति से पद बनता है [सुप्तिङन्तं पदम्]। इसलिये वाक्यों या पदों के समूहों का नाम गद्य है। वाक्य में कम से कम दो शब्द होने आवश्यक हैं, जिसमें एक कर्त्ता और दूसरा क्रिया हो और उनमें पापस्परिक सम्बन्ध भी रहना चाहिए। ये वाक्य या पद व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने चाहियें। व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध वाक्य को भी उपस्थित करने में अन्तर आजाता है। एक में शब्दों के विन्यास में लालित्य लगता है और दूसरे में नहीं लगता। यथा—बाण के पुत्रों के सम्बन्ध में प्रचलित वाक्य—"सूखा वृक्ष सामने खड़ा है" इसके लिए एक पुत्र ने कहा कि—"शुष्कः वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे"; दूसरे पुत्र ने कहा कि—"नीरसतरुरिहविलसति पुरतः"। एक ही बात कहने की भिन्नता से सुनने वाले के मन में भिन्न भाव उत्पन्न कर देती है। इसलिये वाक्य के लिये उपस्थित करना (Expression) का रूप भी बहुत महत्त्व का है। यथा—बाण के हर्ष चरित में प्रसिद्ध वाक्य—आप किस देश के निवासी हैं; इसके लिये "कस्मिन् देशे भगवान् निवसति" न कहकर बाण ने कहा—"कं देशमलङ्करोतिभगवान्" का प्रयोग किया है। आप किस देश से आये हैं; ऐसा सीधा न पूछ कर 'किस देश के निवासियों को आप दुःखी करके आ रहे हैं'; कहिए कैसे आये न पूछ कर 'आपकी क्या सेवा करें', या 'कहिए क्या आज्ञा है'; आदि वाक्यों का प्रयोग उपस्थित करने के रूप में सौन्दर्य लाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्यतः गद्य की जाँच तीन बातों से की जाती है; अर्थात्—शुद्धता; अच्छाई और सुन्दरता से।

शुद्धता के लिये—संज्ञा शब्द और क्रिया शब्द तथा शब्दों को रखने का क्रम (Syntax) वाक्य की शुद्धता के लिये देखना आवश्यक होता है। सामान्यतः शब्दों के रखने का क्रम कर्त्ता, कर्म और क्रिया है।

कर्म के लिये—उपादेयता प्रधान—वाक्य में मुख्य उद्देश्य रहना चाहिए।

वाक्य का अभिप्राय अपने विचार प्रगट करना है। सामान्य रूप में वाक्य का अच्छा होना—छोटापन (Brevity); शुद्धता (Clarity); स्पष्टता (Lucidity) पर निर्भर करता है। ये तीनों गुण वाक्य के छोटे या बड़े होने में भी आवश्यक हैं। वाक्य विचारों के अनुसार सादा-सरल, मिश्रित भी हो सकता है।

वाक्य में शब्द विन्यास तथा शब्द रचना (क्रम), विशेषण, क्रियापद (तिङन्त या कृदन्त) बहुत महत्त्वपूर्ण है; इसीसे वाक्य में सुन्दरता, लालित्य, मधुरता आती है। यह सौन्दर्य-लालित्य (Aesthetic) वाक्य की तीसरी परीक्षा है। शब्द रचना या विन्यास का नाम है शैली-रीति (Style) है।

वाक्य या पद की रचना—चरक संहिता में लम्बे और छोटे दोनों प्रकार के वाक्य मिलते हैं; लम्बे वाक्यों में उदाहरण के लिये नीचे के एक दो सुन्दर उदाहरण लिए जा सकते हैं—

१—विविधानि हि शास्त्राणि भिषजां प्रचरन्ति लोके; तत्र यन्मन्येत् सुमहद्यशस्वि धीरपुरुषासेवितमर्थबहुलमाप्तजनस्य पूजितं त्रिविध शिष्य बुद्धिहितमपगतपुनरुक्तदोषमार्षं सुप्रणीत सूत्र भाष्य संग्रहक्रमम् स्वाधारमनवपतितशब्दमकष्टशब्दम् पुष्कलाभिधानम् क्रमागतार्थमर्थतत्त्वविनिश्चय प्रधानम् संगतार्थमसंकुल प्रकरणमाशु प्रबोधकम् लक्षणवच्चोदाहरणवच्च तदभिप्रपद्येत् शास्त्रम्। शास्त्रंह्येवं विषममलइवादित्यस्तमो विधूयप्रकाशयति सर्वम् ॥ शा. वि. ८।३।

इसी प्रकार शिष्य की परीक्षा के लिये लिखा वाक्य भी लम्बे वाक्य का उदाहरण है [शा. अ ८।८]। इस तरह के वाक्यों में जरूर अनेक विचार मिलते हैं; परन्तु कई बार लम्बे वाक्य पढ़ने में पाठक धैर्य खो बैठता है। इसी तरह का एक दूसरा वाक्य देखिए—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तस्यचेच्चक्षुषी प्रकृति हीने विकृति युक्ते अत्युत्पिण्डिते, अतिप्रविष्टे अतिजिह्मे अतिविषमे अतिमुक्तबन्धने अतिप्रस्रुते सततोन्मेषिते सततनिमिषते निमिषोन्मेषातिवृत्ते विभ्रान्तदृष्टके विपरीतदृष्टिके, व्यस्तदृष्टिके नकुलान्धे कपोतान्धे अलातवर्णे कृष्णपीतनीलश्याम ताम्रहरितहारिद्रशुक्लवैकारिकाणां वर्णानामन्यतमेनातिप्लुते वा स्याताम्, तदा परासुरिति विद्यात् ॥ [इन्द्रिय. अ. ३।१२]।

इस वाक्य में एक विचार से अधिक विचार नहीं आये; यह वाक्य लम्बा हो गया है, क्योंकि भिन्न-भिन्न विशेषणों का इसमें प्रयोग हुआ है। इस प्रकार करने से वाक्य का गठन तथा विचारों की एकता बराबर बनी रहीं। इसलिये लम्बे वाक्य विचारों की एकता को बनाने में सहायक होते हैं।

इसी प्रकार चरक में सादे परन्तु लम्बे वाक्य भी है; यथा—

इह खलु वर्णश्च स्वरश्च गन्धश्च रसश्च स्पर्शश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च घ्राणं च रसनं च स्पर्शनं च सत्त्वं च भक्तिश्च शौचं च शीलं चाचा श्च स्मृतिश्चाकृतिश्च विकृतिश्च बलं च ग्लानिश्च मेधा च हर्षश्च रौक्ष्यं च स्नेहश्च तन्द्रा चारम्भश्च गौरवं च लाघवं च गुणश्चाहारश्च विहारश्चाहार परिमाणश्चोपायश्चापायश्च व्याधिश्च व्याधि पूर्वं च वेदनाश्चोपद्रवाश्च छाया च प्रतिच्छाया च स्वप्न दर्शनं च दूताधिकारश्च पथि चौत्पातिकं चातुर काले भावावस्थान्तराणि च भेषज संवृत्तिश्च भेषज विकार युक्तिश्चेति परीक्ष्याणि प्रत्यक्षानुमानोपदेशैरायुषः प्रमाण विशेष जिज्ञासमानेन भिषजा—[इन्द्रिय स्थान १।३]।

यह रचना यद्यपि लम्बी है. परन्तु है सरल-सीधी; इसमें संज्ञा शब्द अधिक हैं, क्रिया 'परीक्ष्याणि भिषजा' एक है; यह क्रिया यदि सब के साथ सयुक्त की जाती तो रचना का सौन्दर्य ही समाप्त हो जाता है। अगला वाक्य देखिये इसमें बहुत सी विशेषतायों के रखने से वाक्य लम्बा हो गया है—

"आदिकाले हि अदितिसुत समौजसोऽतिविमलविपुल प्रभावा प्रत्यक्ष देव देवर्षि धर्मयज्ञ विधि विधानः शैलेन्द्रसार संहत स्थिर शरीराः प्रसन्नवर्णेन्द्रियाः पवन समबलजवपराक्रमाश्चारुस्फिचोऽभिरुप प्रमाणाकृति प्रसादोपचयवन्तः सत्यजितानृशंस्यदानदामनियमतपउपवास ब्रह्मचर्यव्रतपराः व्यपगत भयराग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वेष मोह लोभक्रोधशोकमानरोग निद्रातन्द्राश्रमक्लमालस्यापरिग्रहाश्च पुरुषा वभूवूर्रामतायुषः [वि, अ. ३।२६]।

इसमें आये सब विशेषण पुरुषों के हैं, प्रत्येक पद सम्पूर्ण रूप में संतुलित और भली प्रकार से गठित है। इसी प्रकार का एक दूसरा उदाहरण देखिये—

ते सर्वासामितिकर्त्तव्यतानामसमर्थाः सन्तो ग्राम्यवासकृतमात्मदोषं मत्वा पूर्वनिवासमपगत ग्राम्यदोषं शिवं पुण्यमुदारं मेध्यमगम्यमसुकृतिभिर्गङ्गाप्रभवम-मरगन्धर्वकिन्नरानुचरितमनेकरत्ननिचयमचिन्त्याद्भुतप्रभावं ब्रह्मर्षि सिद्धचारणानु-चरित दिव्यतीर्थौषधि प्रभवमतिशरण्यं हिमवन्तममराधिपतिगुप्तं जग्मुः । चि. अ. १।४।३ ।

इसमें हिमालय के विशेषण बहुत ही सुन्दरता से जड़े हुए हैं, जिससे वाक्य लम्बा होने पर भी नीरस नहीं बना।

चरक संहिता के लम्बे वाक्य कर्ण कटु या पढ़ने में असुविधा दायक नहीं है। औषधियों के नामों के परिसंख्यान से [यथा–विमान स्थान अध्याय ८ में वमन द्रव्य विरेचन द्रव्य, आस्थापन द्रव्य और मधुर स्कन्ध, अम्ल स्कन्ध, लवण स्कन्ध, कटुक स्कन्ध, तिक्तस्कन्ध, कषाय स्कन्ध में औषधियों के गणना में] भी वाक्य रचना इतनी सरल और आकर्षक बनी है कि पढ़ने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती, सुनने में कर्ण कटु नहीं। इतना होने पर भी भाषा में सरलता सरसता बनी हुई है।

चरक संहिता में बाण की लम्बी रचना के समान लम्बे लम्बे वाक्यों की कमी नहीं है, इसके लिए सूत्रस्थान में प्राणाभिसर वैद्यों का लक्षण (सूत्र. अ. २६।७) तथा उपकल्पनीय अध्याय में (सू. अ. १५।७] उल्लिखित उपकरण समूह इनके उत्तम उदाहरण रूप में देखे जा सकते हैं।

चरक में लम्बे वाक्य ही हैं, ऐसा नहीं, उसमें कादम्बरी की भाँति छोटे-छोटे वाक्य भी आये हैं, छोटे-छोटे वाक्यों के रखने से रचना में सौन्दर्य आ जाता है, यथा—

नानृतं ब्रूयात्। नान्यस्वमभाददीत। नान्यस्त्रियमभिलषेत्। नान्यश्रियम्। न वैरं रोचयेत्। न कुर्यात्पापम्। न पापेऽपि पापी स्यात्। नान्यदोषान्ब्रूयात्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नान्यरहस्यमागमयेत् । नाधार्मिकैर्न नरेन्द्र द्विष्टैः सहासीत् । नोन्मत्तैर्नपतितैर्न भ्रूणहन्तभिर्नक्षुद्रैर्नदुष्टैः । न दुष्टयाभधिरोहेत् ।

न जलोग्रवेगमवगाहयेत् । न कूलच्छायामुपासीत । नाग्न्युत्पातमभितश्चरेत्। नोच्चैर्हसेत् । न शब्दवन्तं मारुतं मुञ्चेत् । नानावृत्तमुखो जृम्भां क्षवथुहास्यं वा प्रवर्त्तयेत् । न नासिकां कुष्णीयात् । न दन्तान् विघट्टयेत् । न नखान्वादयेत् । नास्थीन्यभिहन्यात् । न भूमिं विलखेत् । नछिन्द्यात्तृणम् । न लोष्ट्रं मृद्नीयात् । [सूत्र. अ. ८।१९]।

ये छोटे छोटे सरल वाक्य उपनिषद् की भाषा का ध्यान दिलाते हैं, देखिये-

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्य देवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि । यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ।

स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्य प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं माव्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । तैत्तरीयोपनिषद ।

ऋषियों की भाषा सरल एवं निश्चित अर्थ को बताने वाली होती है, उसमें लौकिक साहित्य की भांति अलंकार, श्लेष--कूट अर्थ नहीं होता, न कोई व्यर्थ अक्षर होता है, इस भाषा में निश्चित अर्थ, और सीमीत शब्द रचना रहती है । ऐसी भाषा चरक संहिता और महाभाष्य की है, जिसमें विवक्षित अर्थ के सिवाय दूसरा अर्थ आ ही नहीं सकता; साथ ही एक भी अक्षर विना प्रयोजन का नहीं होता ।

चरक संहिता में जो उपमायें गद्य में आई हैं, वे भी बहुत सरल और सचोट-अर्थ को एक दम स्पष्ट करने वाली हैं, [आगे भी पृष्ठ. ११४ पर] यथा—

(क) बहुदोषाणां पुनर्दोषावसेचनमेव कार्यम्--नह्यभिन्ने केदारसेतौ पल्लव प्रसेकोऽस्ति तद्वद् दोषावसेचनम्—[वि. अ. ३।५२]।

बहुत दोष वाले पुरुषों में दोष का अवसेचन—बहाना ही करना चाहिये, खेत की मेंढ़ को तोड़े विना खेत में रुका जल बाहर नहीं निकाला जा सकता, इसी प्रकार से दोषों को बहाना चाहिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) शास्त्रं ह्येवंविधममलइवादित्यस्तमो विधूय प्रकाशयति सर्वम्- [वि. अ. ८।३]

इस प्रकार का शास्त्र निर्मल सूर्य के समान अन्धकार को दूर करके सब कुछ प्रकाशित कर देता है।

(ग) एवं गुणोह्याचार्यः सुक्षेत्रमार्तवो मेघ इव शष्यगुणैः सुशिष्य-माशु वैद्यगुणैः सम्पादयति—[वि. अ. ८।४]।

जिस प्रकार कि अच्छे खेत में ऋतुकाल में समय पर वरसा हुआ मेघ खेत को अन्न से भर देता है, उसी प्रकार आचार्य इस प्रकार के योग्य शिष्य को जल्दी ही वैद्य के गुणों से युक्त बना देता है।

(घ) तत्रावजितेश्लेष्मण्यपि शरीरान्तर्गताः श्लेष्मविकाराः प्रशान्ति-मापद्यन्ते यथा भिन्ने केदार सेतौ शालियवषष्टिकादीन्यनभिष्यन्द्य-मानान्यम्भसा प्रशोषमापद्यन्ते तद्वदिति [सू. अ. २०।२३]।

श्लेष्मा के पूर्णतः शान्त न करने पर भी शरीर के अन्दर के कफ रोग शान्त हो जाते हैं, जिस प्रकार कि खेत की मेंड़ के तोड़ देने पर सड़ने वाले जल से शाली, यव, सांठी आदि सूख जाते हैं, उसी प्रकार शरीर के कफ रोग शान्त हो जाते हैं।

(ङ) प्रचरणमिव भिक्षुकस्य बीजमिवकृषकस्य सूत्रं बुद्धिमता-मल्पमप्यनल्पज्ञानायतनं भवति। वि. अ ८।१५२।

जिस प्रकार भिक्षुक के भिक्षा पात्र में रक्खे कुछ दाने; कृषक के बीज के दाने बढ़ कर बहुत बन जाते हैं, उसी प्रकार बुद्धिमान के लिये छोटा सा सूत्र भी बहुत अधिक ज्ञान देने वाला होता है।

चरक संहिता में सुबन्धु के वासवदत्ता की भांति कठिन लम्बे एवं श्लेष वाले वाक्य नहीं आते। जो भी वाक्य हैं; वे सरल निश्चित अर्थ को बताने वाले हैं।

चरक का गद्य इतना ललित है, कि सुश्रुत संहिता में भी उसे पूरा का पूरा ले लिया गया, जिस प्रकार कि कालिदास और अश्वघोष की रचना में कुछ पद सम्पूर्ण रूप में मिलते हुए हम देखते हैं; उसी प्रकार चरक और सुश्रुत में भी कुछ पद सम्पूर्ण रूप में एक समान आते हैं; यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरक में—"यान्यनुचिन्त्यमानानि विमलविपुलबुद्धेऽपि बुद्धिमाकुली कुर्युः किं पुनरल्पबुद्धेः"–सू. अ. १५।५ ।

सुश्रुत में—"अन्ये विशेषाः सहस्रशो ये विचिन्त्यमाना विमलविपुलबुद्धेऽपि बुद्धिमाकुली कुर्युः किं पुनरल्पबुद्धेः"–सू. अ. ४।५ ।

गद्य की विवेचना

गद्य काव्य के विषय में गद्य कैसा होता है, इस विषय में साहित्यदर्पण के कर्त्ता का कहना है कि—

वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्त गन्धि च ।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम् ॥
आद्यं समास रहितं वृत्तभागयुतं परम् ।
अन्यद्दीर्घ समासाढ्यं तूर्यञ्चाल्पसमासकम् ॥

गद्य में वृत्तगन्ध-अक्षर-मात्रा का नियम नहीं रहता; गद्य चार प्रकार का है; मुक्तक; वृत्तगन्धि, उत्कलिका प्राय और चूर्णक । इनमें मुक्तक में समास नहीं रहता, छोटे छोटे वाक्य रहते हैं, वृत्त गन्धि में वृत्त का कुछ भाग मिलता है, उत्कलिकाप्राय में लम्बे समास रहते हैं, और चूर्णक में छोटे छोटे समास रहते हैं ।

चरक संहिता में चारों प्रकार का गद्य मिलता है, यथा—

मुक्तक गद्य—अम्लोरसो भुक्तं रोचयति, अग्निं दीपयति; देहं बृंहयति, ऊर्जयति, मनो बोधयति, इन्द्रियाणि दृढी करोति, बलं वर्धयंति; वातमनुलोमयति, हृदयं तर्पयति, आस्यमास्रावयति, भुक्तमपकर्षयति, क्लेदयति, जरयति, प्रीणयति, लघुरूष्णः स्निग्धश्च । सू. अ. २६।४४ ।

वृत्तगन्धि—य इमे कुलीनाः पर्यवदातश्रुता परिदृष्टकर्मणो दक्षाः शुचयो जितहस्ता जितात्मानः सर्वोपकरणवन्तः········ । "जितहस्ता जितात्मानः"–यह गद्य अनुष्टुप छन्द सू. अ. २९।६ का भाग है—

ये तु शास्त्रविदो दक्षाः शुचयः कर्मकोविदाः ।
जितहस्ता जितात्मानस्तेभ्योनित्यं कृतं नमः ॥

उत्कलिका प्राय—"प्राणकामाः शुश्रूषध्वमिदमुच्यमानममृतमिवापरमदितिसुत हितकरमचिन्त्याद्भुतप्रभावमायुष्यमारोग्यकरंवयसः स्थापनं निद्रा तन्द्राश्रम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लमालस्य दौर्बल्यापहरमनिलकफ पित्त साम्यकरं स्थैर्यकरमबद्धमांसहरमन्तराग्नि-सन्धुक्षणं प्रभावर्णस्वरोत्तमकरं रसायन विधानम्-[चि. अ. १।२।३]।

चूर्णक—वायुस्तंत्रयन्त्रधरः, प्राणोदानसमानव्यानापानात्मा, प्रवर्त्तकश्चेष्टा नामुच्चावचानाम्, नियन्ता प्रणेता च मनसः सर्वेन्द्रियाणमुद्योजकः सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा सर्वशरीर धातु व्यूहकरः—[सू. अ. १२।८]।

इस प्रकार से चरक संहिता गद्य काव्य की दृष्टि से पूर्ण रचना है।[1]

रीति

पदों के गठन का नाम रीति है (पद संघटना रीति)। यह रीति चार प्रकार की है, १–वैदर्भी, २–गौडी, ३–पाञ्चाली और ४–लाटिका। इन चारों के लक्षणों में भिन्न-भिन्न विचार हैं। सामान्यरूप से वैदर्भी में मधुर वर्ण, ललित रचना रहती है। गौड़ी में—समास अधिक रहता है और ओज के प्रकाशक अक्षरों से उद्भट रचना रहती है। पाञ्चालि में - वैदर्भी और गौडी से बचे हुए वर्ण तथा पांच या छैः पद समस्त रहते हैं, गौडी और वैदर्भी का मिश्रण इसमें रहता है। लाटिका में—कोमल पद रहते हैं, वैदर्भी और पाञ्चाली के बीच की होती है।[2]

---

१ अपादः पदसन्तानो गद्यं तदपि निगद्यते।
चूर्णोत्कलिका वृत्त संधि (गंधि) भेदात् त्रिरुपकम्॥
अल्पविग्रहं नाति मृदुसदर्भनिर्भरम्।
चूर्णकं नामतो दीर्घं समासोत्कलिका भवेत्॥
भवेन्मध्यम संदर्भं नाति कुत्सितविग्रहम्।
वृत्तछायाहरं वृत्तसंधिनैतत् किलोत्कटम्॥ अ प्र. ३३८।९-११।

२ वैदर्भी चाथ गौडी च पाञ्चाली लाटिका तथा।
माधुर्य व्यञ्जकैर्वर्णैरचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते॥
औजः प्रकाशकैवर्णैर्बन्धः आडम्बरः पुनः।
समास बहुला गौडी वर्णाः शेषैः पुनर्द्वयोः॥
समस्तपञ्चषपदो बन्धः पाञ्चालिकामता।
लाटी तु रीतिर्वैदर्भी पाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता॥—साहित्यदर्पण नवमपरिच्छेद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरक में चारों प्रकार की रीतियों की बानगी देखी जा सकती है, यथा—

वैदर्भी—

उशीरकालीयक लोध्रपद्मक प्रियंगुकाकट्फलशंखगैरिकाः।
पृथक् पृथक् चन्दन तुल्यभागिकाः सशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुतः॥

चि अ. ४।

गौड़ी—

श्वास ज्वररोचक मेहगुल्मप्लीहांत्रदोषोदरपाण्डुरोगान्।
कार्श्यामवातावसृगम्लपित्त वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान्॥ चि अ. १२।५२.

पांचाली—

वैदूर्यमुक्तामणिगैरिकाणां मृच्छंखहेमामलकोदकानाम्।
मधूदकस्येक्षुरसस्य चैव पानाच्छमं गच्छति रक्तपित्तम्॥ चि. अ. ४।६८।

लाटिका—

सरिद्ध्रदानां हिमवद्दरीणां चन्द्रोदयानां कमलाकराणाम्।
मनोऽनुकूलाः शिशिराश्च सर्वाः कथाः सरक्तं शमयन्ति पित्तम्॥

चि, ४ १०९।

इसी प्रकार से गद्य में भी चारों रीतियां चरक में मिलती हैं; यथा—

वैदर्भी—गांद्दोग्ध्रीं शीलवतीमनातुरां जीवद्वत्सां सुप्रतिविहित तृणशरण पानीयम्।

गौड़ी—शय्याचमनीयोदकोष्ट्रमणिकघटपिठरपर्योग कुम्भी कुम्भकुण्डशराव दर्वीकटोदञ्चन परिपचन चर्मचेल सूत्र कार्पासोर्णादीनि च—

पांचाली—ततस्तं पुरुषं स्नेह स्वेदोपन्नमनुपहतमानसमभिसमीक्ष्य सुखोषितं सुप्रजीर्ण भक्तं शिरः स्नातमनुलिप्त गात्रं स्रग्विणमनुपहतवस्त्र संवीतं देवताग्नि-द्विज गुरु वृद्ध वैद्यानर्चितवन्तमिष्टं नक्षत्र तिथि करण मुहुर्त्ते कारयित्वा ब्राह्मणा-न्स्वस्ति वाचयित्वा………"।

लाटिका—अथानुपोहिन्तालतमालनारिकेलकदलीवनगहनः, सरित्समुद्रपर्य-न्तप्रायः; शिशिरपवनबहुलोवञ्जुलवानीरोपशोभिततीराभिः सरिद्भिरुपगतभूमिभागः क्षितिधर निकुञ्जोपशोभितो मदनपवनानुवीजित क्षितिरुहगहनः……………"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्य रचना

चरक संहिता में गद्य और पद्य दोनों प्रकार की रचना मिलने से इसका समावेश 'चम्पू' में होता है; [गद्य-पद्यात्मकं चम्पूरित्यभिधीयते]। संहिता होने से इसकी रचना छन्द में ही होगी, इस दृष्टि से वैदिक संहिताओं की भाँति चरक संहिता का गद्य भी छन्द से सम्बन्धित कई विद्वान् मानते हैं। परन्तु सामान्यतः लौकिक साहित्य की दृष्टि से गद्य और पद्य दो विभाग हैं। जिसमें पादक्रम या वृत्त नहीं रहता वह गद्य और जिसमें वृत्त या पाद का नियम रहता है, वह पद्य है। यह पद्य रचना भिन्न भिन्न प्रकार के वृत्तों में होती है। चरक संहिता में मुख्यतः अनुष्टुप छन्द का उपयोग हुआ है; इसका कारण सम्भवतः यही है कि यह स्वाभाविक रुप में–सरलता से मुख से निकलता है[1]। अनुष्टुप छन्द में रचना ६० प्रतिशतक के लगभग है। अनुष्टुप के बाद दूसरा उपजाति छन्द है; शेष छन्दों का उपयोग चरक में प्रायः कम है। कहीं पर [यथा. चि. अ. १२।१५ में] वंशस्थ छन्द भी बरता गया है। परन्तु मुख्य रूप से अनुष्टुप छन्द ही बरता है। आर्या छन्द का भी उपयोग चरक के चिकित्सा अध्याय तेईस में आया है।

चरक के पीछे बने अष्टांग संग्रह में वाग्भट ने पुष्पिताग्र शिखरिणी आदि भिन्न भिन्न छन्दों का उपयोग लालित्य की दृष्टि से किया है [देखिये लेखक की पुस्तक 'संस्कृत काव्यों में आयुर्वेद']। परन्तु चरक और सुश्रुत में स्वाभाविक छन्दों का ही उपयोग हुआ है। आर्या छन्द भी दृढ़बल से पूर्ण किये भाग में आता है।

सामान्यतः चरक संहिता में एक अध्याय में एक ही छन्द रक्खा गया है, परन्तु किसी किसी अध्याय में दो भिन्न भिन्न छन्दों का भी उपयोग किया है [यथा. चि. अ. ४ में]।

---

१ संस्कृत के आदि कवि वाल्मीकि के मुख से संस्कृत का जो प्रथम श्लोक निकला था, जिसे आदि काव्य कहा जाता है, वह भी अनुष्टुप ही था—

मा निषादप्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीसमाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरक में मुख्यतः अनुष्टुप, उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थ और आर्या छन्द का उपयोग मिलता है। [१]यथा—

अनुष्टुप छन्द—माषपर्णभृताधेनुं गृष्टिं पुष्टां चतुःस्तनीम्।
समानवर्णवत्सा च जीवेद्वत्सां च बुद्धिमान्॥

उपजाति—वैडूर्यमुक्तामणिगैरिकाणां मृच्छंखहेमामलकोदकानाम्।
मधूदकस्येक्षुरसस्य चैव पानाच्छमं गच्छतिरक्तपित्तम्॥

आर्या—लेलीतकप्रयोगोरसेनजात्याः समाक्षिकः परमः।
सप्तदश कुष्ठघाती माक्षिक धातुश्च मूत्रेण॥

वंशस्थ—भिषक् वरिष्टं सुरसिद्धजुष्टं मुनीन्द्रमत्र्यात्मजमग्निवेशः।
महागदस्यश्वयथोर्यथावत् प्रकोपरुपप्रशमानपृच्छत्॥

उपेन्द्रवज्रा—यशस्विनं ब्रह्मतपोद्युतिभ्यां ज्वलन्तमग्न्यर्कसमप्रभावम्।
पुनर्वसुंभूतहितेनिविष्टं प्रपच्छशिष्योऽत्रिजमग्निवेशः॥

इन्द्रवज्रा विट्स्वेदमूत्राम्बुवहानिवायुः स्रोतोसिसंरुध्य यदोर्ध्वमेति।
उत्सन्नदोषस्यसमाचितं तं दोषं समुद्धूय नरस्य कोष्टात्॥

पद्य रचना में अनुप्रास और उपमा अलंकार प्रायः आते हैं, श्लेष या दूसरे अलंकारों का उल्लेख नहीं है। अनुप्रास और उपमा—यथा—

द्राक्षाश्शृतं नागरकैः शृतं वा बलाश्शृतं गोक्षुरकैः शृतं वा।
सजीवकं सर्षभकं ससर्पिः पयः प्रयोज्यं सितयाशृतं वा॥ चि.अ.५।
मूले निषिक्तो हि यथाद्रुमः स्यान्नीलच्छदः कोमलपल्लवाग्र्यः।
काले महान् पुष्पफलप्रदश्च तथा नरः स्यादनुवासनेन॥ सि.अ १।३१।

इस प्रकार से हम देखते हैं चरक संहिता में काव्य के सब आवश्यक सिद्धान्तों का पालन हुआ है। चिकित्सा ग्रन्थ रहने से सम्पूणतः एकशैली का उपयोग नहीं मिलता। कादम्बरी के ढंग का लम्बा सरल सभास चरक में सुगमता से मिल जाता है, [यथा–चरक चि. अ ३।२५८], कादम्बरी और हर्ष चरित से भी अधिक लम्बी रचना चरक संहिता में है [यथा वि अ. ८।१३३, १४०।१४२]।

१ स्वागता, रुचिरा, कुसुमितलतावेल्लिता वियोगिनी, गीति छन्द भी आये हैं–जो कि विरले हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालिदास की तरह प्रसाद और माधुर्य के लिये चरक के कई अध्याय देखे जा सकते हैं; [यथा—चि. शा. अ. २। चि. अ. ५, चि. अ. ५, चि. अ. १२]।[१]

चरक में छोटे-छोटे सरल वाक्य गद्य में जहाँ मिलते हैं, वहाँ पद्य में सरल अनुष्टुप भी आये हैं। दर्शन जैसा गम्भीर विषय भी सरल श्लोकों में—अनुष्टुप में समझा दिया है। योग की मीमांसा भी गद्य में सरल रूप से आई है।

नये शब्द

इतना होने पर भी चरक संहिता में कुछ शब्द ऐसे आते हैं, जो लौकिक साहित्य या वैदिक साहित्य में नहीं मिलते, इनका सम्बन्ध बौद्ध साहित्य से है—यथा—जेन्ताक (जन्ताक), खुड्डाक (खुद्दक), संख्यात।

चरक में आये शब्द उपप्लव (शा. अ. ५।८); अभिसंप्लव (शा. अ. ५।१०), अभ्यवपात (शा. अ. १०), विप्रत्यय (शा. अ. १०). जीवस्पृक् [शा. अ. ३-१६], जातिस्मर (शा. अ. १६) अन्य वैदिक दर्शनों में या अन्य लौकिक साहित्य में सामान्यतः दिखाई नहीं देते। इन शब्दों की परिभाषा चरक में अपनी दृष्टि से की गई है। चरक में इन शब्दों की व्याख्या लौकिक संस्कृत साहित्य से भिन्न रूप में मिलता है।

---

१ गद्य की भाँति पद्य के भी वचन सुश्रुत में लिये गये हैं—उदाहरण के लिए—

मुद्गान् मसूरांश्चणकान् कुलत्थान् समकुष्ठकान्''—सु. चि अ.३९।१५० में।

मिथ्याचारेण या स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्त्तवेन च।

जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्चश्टणुताः पृथक्॥ उ. अ. ३८।५।

बलिनः खरभक्ष्या ये ये चदीप्ताग्नयो नराः।

कर्मनित्याश्च ये तेषां नावश्यं परिकीर्त्यते॥

मन्दकर्मानिलारोग्याः सुकुमारा सुखोचिताः।

जन्तवो ये तु तेषां हि चिन्तेयं परिकीर्त्यते॥ सू. अ. ४६।४४४-४४५।

चरक में—दीप्ताग्नयः खराहाराः कर्मनित्यामहोदराः।

ये नराः प्रतितांश्चिन्त्यं नावश्यं गुरुलाघवम्॥

गुरुलाघवचिन्तेयं प्रायेणाल्पबलान् प्रति।

मन्दक्रियामनारोग्यान्सुकुमारान्सुखोचितान्॥ सु. अ. २७।३४५-३४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार से चरक संहिता में साहित्य की गद्यशैली और पद्यशैली दोनों का माधुर्य एवं रस मिलता है। शब्दों का माधुर्य, ध्वनि का प्रासाद-भाव का गाम्भीर्य, वर्ण व्यास का सौन्दर्य ये सब काव्य के गुण चरकसंहिता में प्राप्य हैं। पतंजली कृत अष्टाध्यायी के महाभाष्य की भाषा भी गद्य में होने पर भी मधुर है, परन्तु चरक संहिता की भाषा के समान उतनी सरल नहीं है। इसी सरलता के कारण चरक संहिता पतंञ्जली के महाभाष्य से प्राचीन है, ऐसी मेरी मान्यता है। चरक संहिता के कई सन्दर्भ तो ऐसे हैं जो कि साहित्य में उदाहरण के रूप में उपस्थित किये जा सकते हैं। आयुर्वेद जैसे टैकनिकल विषय को इतने सुन्दर साहित्य में उपस्थित करना महर्षि अत्रिपुत्र का ही कार्य है।

चरकसंहिता में आई उपमायें

चरक संहिता में आई उपमायें ऐसी हैं, जो कि उपमेय के साथ पूर्ण रूप में उतरती हैं, यहाँ पर कुछ उपमायें उदाहरण के रूप में दी गई हैं[1]। यथा-

(१) अन्तर्वत्नी-गर्भवती स्त्री की तथा पंचकर्म से निर्बल व्यक्ति की रक्षा-इस प्रकार से करनी चाहिए, जिस प्रकार से कि तैल से भरे पात्र की, या तरुण अण्डे की या ग्वाला अपनी गायों की रक्षा करता है—

(क) पूर्णमिवतैलपात्रमसंक्षोभयताऽन्तर्वत्नी भवत्युपचर्या।

शा. अ. ८।२३

(ख) यथाऽण्डं तरुणं, पूर्णं तैलपात्रं यथैव च।
गोपाल इव दण्डी गाः सर्वस्मादपचारतः॥ सि. अ. १२।५

गोपाल इव दण्डी गाः की उपमा का उल्लेख महाभारत में भी आता है—

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षन्तुमिच्छन्ति सुबुद्धया योजयन्ति तम्॥

(२) बटेर जिस प्रकार धनुष की डोरी की आवाज सुनकर उड़ जाते हैं, उसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति विद्वान के आने पर भाग खड़े होते हैं—

१ अधिक देखने के लिए लेखक की पुस्तक "संस्कृत काव्यों में आयुर्वेद" देखी जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दमात्रेण तंत्रस्य केवलस्यैकदेशिकाः।
भ्रमन्त्यल्पबलास्तंत्रे ज्याशब्देनैव वर्त्तकाः॥ सू. अ. ३०।७५

(३) मूर्ख–अवहुश्रुत व्यक्ति कांटों से छिपी सेह के समान अपने को छिपाकर रखता है–विवाद में सामने नहीं आता है, जिस प्रकार भ्रष्टयोनि मूर्ख व्यक्ति वाद विवाद में कुछ बोल नहीं सकता, इसी प्रकार यह भी कुछ बोल नहीं सकता–

बभ्रुर्गूढइवोर्णाभिरबुद्धिरबहुश्रुतः।
किं वै वक्ष्यति संजल्पे कुण्डभेदी जड़ो यथा॥ सू.अ.३०।७८

(४) अल्प दोष वालों के लिए लंघन उत्तम है, जिस प्रकार कि थोड़े पानी को वायु और धूप सुखा देती है। मध्य दोष वालों के लिए लंघन और पाचन उत्तम है, जिस प्रकार कि मध्यम परिमाण का जलाशय-धूप और रेती डालकर सुखाया जा सकता है। बहुत दोष वालों के लिए तो विरेचन ही उत्तम है-जिस प्रकार कि खेत में पानी भर जाने पर खेत की भित्ति को तोड़कर ही पानी बहाना पड़ता है।

तत्र लंघनमल्पबल दोषाणम्। लंघनेन ह्यग्नि मारुत वृद्ध्या वातातपपरीतमिवाल्पमुदकमल्पो दोषः प्रशोषमापद्यते।

लंघनपाचने तु मध्यम बलदोषाणाम्। लंघनपाचाभ्यां हि सूर्य सन्ताप मारुताभ्यां पांशुभस्मावकीर्णैरिव चानतिबहूदकं मध्यबलो दोषः प्रशोषमापद्यते।

बहुदोषाणां पुनर्दोषावसेचनमेव कार्यम्। न ह्यभिन्न केदारसेतौ पल्वलप्रसेकोऽस्ति, तद्वद्दोषावसेचनम्॥

(५) मलिन वस्त्र पर रंग नहीं चढ़ता—

तस्मात् पुरा शोधनमेव कार्यं बलानुरुपं न हि वृष्ययोगाः।
सिध्यन्ति देहे मलिने प्रयुक्ताः क्लिष्टे यथा वाससि रागयोगाः॥

(६) जिस प्रकार रस ऊख में, घी दही में, तैल-तिलों में व्याप्त है, इनके प्रत्येक कण कण में है, इसी प्रकार से मनुष्य में वीर्य शरीर के एक एक कण में रहता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रस इक्षौ यथा दध्नि सर्पिस्तैलं तिले यथा।
सर्वत्रानुगतं देहे शुक्रं संस्पर्शने तथा ।। चि. अ. २।४।४६

(७) असम्पूर्ण धातुवाला व्यक्ति—बाल्यावस्था में स्त्री संसर्ग करने से उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार कि तालाब का थोड़ा जल सूख जाता है। वृद्ध व्यक्ति स्त्री संसर्ग करने से उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार कि सूखी, कीड़ों से खाई लकड़ी छूने से नष्ट हो जाती है—

अतिबालोह्यसम्पूर्णसर्वधातुः स्त्रियं व्रजन्।
उपतप्यते सहसा तड़ागमिवकाजलम् ॥
शुष्कं रुक्षं यथा काष्टं जन्तुदग्धं विजर्जम्।
स्पृष्टमाशु विशीर्येत तथा वृद्धः स्त्रियो व्रजन्॥ चि. २।४।४२-४३

८—शिष्य आचार्य की सेवा अग्नि के समान, देवता के समान, राजा की भांति, पिता के समान, पत्नि जिस प्रकार स्वामी की सेवा करती है, उस प्रकार बिना प्रमाद के करे।

तंमुपसृत्यारिराधयिषुरुपचरेदग्निवच्च देववच्च, राजवच्च, पितृवच्च भर्तृवच्चाप्रमत्तः ॥ वि. अ. ८।

९—जिस प्रकार कि नित्य अभ्यास करने वाला, निशाने को जाननेवाला धनुर्धारि धनुष को लेकर बाण चढ़ाकर बहुत दूर के नहीं, समीप के और बड़े निशाने पर तीर मार लेता है, चूकता नहीं, उसी प्रकार से साधन सम्पन्न, अपने गुणों में सम्पन्न, वैद्य काम को समझकर जब चिकित्सा करता है, तब अवश्य सफल होता है, चूकता नहीं।

"यथा हि योगज्ञोऽभ्यासनित्य इष्वासो धनुरादायेषुमस्यन्नातिविप्रकृष्टे महति काये नाऽपराधवान्भवति, संपादयति चेष्ट कार्यम्; तथा भिषक् स्वगुण संपन्न उपकरणवान् वीक्ष्य कर्मारभमाणः साध्यरोगमनपराधः संपादयत्येवातुरमारोग्येण ।।" सूत्र. अ. १०।५.

१०—जिस प्रकार से रेशम का कीड़ा अपने को ही मारने वाले सूत्रों को-तन्तुओं को उत्पन्न करता रहता है; उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य तृष्णाओं के जाल में अपने को और भी अधिक जकड़ता जाता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोषाकारो यथा ह्यंशूनुपदत्ते वधप्रदान् ।
उपादत्ते तथार्थेभ्यस्तृष्णामज्ञः सदाऽऽतुरः ।। शा. १।६६

११—जिस प्रकार कि एक बार बाढ़ आने पर जब शस्य नष्ट हो जाता है; तब आगे फिर वैसा पानी न आये, इसके लिए प्रबन्ध किया जाता है; उसी प्रकार बीती हुई वेदनायें–दुःख फिर न हों; इसलिए उनकी चिकित्सा की जाती है—

आपस्ता पुनरागुर्मा याभिः शस्यं पुरा हतम् ।
यथा प्रक्रियते सेतुः प्रतिकर्मतथाऽऽश्रये ।। शा. १।९०

१२—जिस प्रकार पक्षि अपने घोंसले वाले वृक्ष पर तुरंत लौटते हैं; उसी प्रकार सब आहार में लालची, स्नान और परिश्रम से द्वेष करने वाले में प्रमेह बहुत जल्दी होते हैं—

गृध्नुमभ्यवहार्येषु स्नान चंक्रमण द्विषम् ।
प्रमेहः क्षिप्रमभ्येति नीड़द्रुममिवाण्डजः ।। नि. अ. ४।४९

Gurukula Kangri Univ. Library

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६

चरक कालीन नागरिक जीवन

चरक संहिता में तीन ऐषणायें बताई हैं, ये ऐषणायें प्रत्येक पुरुष में स्वाभाविक हैं, इनमें प्रथम इच्छा प्राणैषण है—देर तक जीने की चाह प्रत्येक व्यक्ति में रहती है। दूसरी इच्छा धनैषणा-धन की चाह है, तीसरी ऐषणा—पर लोकैषणा—परलोक सुधरे यह चाह वेदमतानुयायी आस्तिक सब व्यक्तियों में रहती है।

इनमें धनैषणा को पूर्ण करने के लिये **कृषि—पशुपालन—वाणिज्य, राज सेवा** आदि साधन तथा सज्जनों से अनिन्दित अन्य उपायों को सेवन करने के लिए कहा है। क्योंकि बिना साधनों के जीवन यापन करना इससे बढ़ कर दूसरा कोई पाप नहीं (नह्यतः पापात्पापीयोऽस्ति यदनुपकरणस्य दीर्घमायुः—चरक सू. अ. १०।५) इससे मनुष्य को दरिद्र बन कर जीनेका—लम्बी आयु प्राप्त करने का आदेश चरक में नहीं है।

चरक में दो ही प्रकार का जीवन मनुष्य के लिये है, एक तो राजा की भांति ऐश्वर्य सम्पन्न रहकर जीवन व्यतीत करना, नहीं तो फिर वानप्रस्थ या सन्यास आश्रम का वेश धारण करके जीवन व्यतीत करना है। राजा और राजा की तरह जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति का चित्र उपकल्पनीय अध्याय में चित्रित है—यथा—

रहने का घर—वास्तुविद्या (गृह निर्माण कला) में चतुर पुरुष को चाहिए कि वह सबसे पहिले सर्वोत्तम मकान बनाकर तैय्यार करे; यह मकान दृढ़ (मजबूत), निवात वाला (जहां पर सीधी वायु का झोंका न आये), प्रवातैक देश (एक पार्श्व से वायु का सञ्चार हो), पर्य्याप्त लम्बा चौड़ा—जिसमें आराम से घूमा जा सके, अनुपत्यक (अपने से बड़े किसी मकान से सटा या ढंपा न हो), धूंवा, धूप, वर्षा, धूली से बचा, अहितकर शब्द-स्पर्श-रस-रूप और गन्ध से दूर, जिसमें उदपान (पानी का स्थान), ऊदूखल (कूटने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीसने का स्थान), मूसल, टट्टी घर, स्नान घर, रसोई घर अलग अलग बने हों–ऐसा मकान बनाये[१]।

जीवन के साधन—दूध देने वाली, शीलवती (सीधी-मरखनी नहीं), निरोगी, जिसका बछड़ा जीता हो ऐसी गाय रक्खे। इस गाय के लिये घास, बैठने-रहने का स्थान और पानी का प्रबन्ध अच्छी प्रकार करना चाहिए।

अन्य साधन—पात्री (गिलास-कटोरी), आचमनीय (छोटा चम्मच), उदकोष्ठ (टंकी), मणिक (मटका), पिठर (थाली), पर्योग (कड़ाही), कुम्भी (बड़ा मटका-सुराही), कुम्भ (कलश), शृंगार (गंगा सागर-सुराही) हृषद (शिला), शिलापुत्र (लोढ़ा), कुश हस्तक (झाडू), कुण्ड (बड़ी टंकी–जिसमें बरसात का पानी संचय किया जा सके), शराव (प्याला-सकोरा), दर्वी (कड़छी), कट (चटाई), उदञ्चन (जल पात्रों का ढक्कन), परिपचन (तवा), चेल (वस्त्र), प्रतिग्रह (पीकदान), मानभाण्ड (मापने के पात्र), मन्थान (मथानी), वहाँ पर रखने चाहियें—

चमड़े–चेल, सूत्र (सूत), कार्पास (रूई) ऊन आदि से बने बिस्तर-आसन आदि रखने चाहिये; इनके पास ही हाथ धुलाने के लिए गंगासागर (भृङ्गार) पीकदान (प्रतिग्रह) रहने चाहिये। बिस्तर और आसन के उपर अच्छी चादर (आस्तरण), उपर लेने का वस्त्र (उत्तर प्रच्छद) और तकिये (उपधान) होना चाहिये। बिस्तर (पलंग) और आसन–ढासने वाले (सोपाश्रयाणि) होने चाहियें।

घी, तैल, वसा, मज्जा, मधु, राब, लवण, इन्धन, पानी, मधु, मद्य, सीधु, सुरा, सौवीरक, तुषोदक, मैरेय, मेदक, दधि, दधि मण्ड, उद्श्वित, धान्याम्ल, शालि चावल, सांठी के चावल, मूंग, उड़द, जौ, तिल, कुलत्थी, बेर, मुनक्का, गम्भारी, फालसा, हरड़, आंवला, बहेड़ा तथा नाना प्रकार के उपयोगी द्रव्य संग्रह करने चाहियें।

---

१ मकान के सम्बन्ध में अन्य उल्लेखनीय बातें—

"वास्तु विद्या कुशलः प्रशस्तं रम्यमतस्मकं निवातं प्रवातैक देशं दृढमपगतश्वापद पशुदंष्ट्रिमूषिकपतङ्गं सुसंविभक्तसलिलोलूखलमूत्रवर्चस्कस्थानस्नानभूमिमहानसमृतुसुखं यथर्तुशयनासनास्तरणसम्पन्नं कुर्यात्" (शा. अ. ८।६३)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नौकर—शील (स्वभाव), शौच (पवित्रता शुद्धता), आचार, अनुराग, दाक्ष्य (चतुराई), प्रदक्षिण्य (कार्य में कुशलता–होशियारी), से युक्त, सब कार्यों में समझे-बुझे होने चाहियें और सेवा करने में कुशल होने चाहियें।

धात्री—बच्चे के समान वर्ण कीं (तुल्य जाती की), युवती; विनीत; निरोगी, अहीन अंगवाली, व्यसनों से बची; देखने में सुन्दर, अनिन्दित, देश और जाती से जो नीच न हों; हल्के-नीच काम न करने वाली; अच्छे कुल में उत्पन्न, प्रेम करने के स्वभाव वाली, जिसका अपना लड़का जीता हो, अतिशय दूध वाली, आलस-प्रमाद न करने वाली, सेवा कर्म में चतुर, पवित्र स्वभाव की; मलिनता से द्वेष करनेवाली, स्तन तथा स्तन्य सम्पद् से युक्त धात्री को रखना चाहिए।

पेशे—उस समय जीवन के लिये जो धंधे प्रायः चलते थे–पाचक (रसोईया) स्नापक (स्नान करानेवाले), संवाहक (चप्पी करनेवाले), उत्थापक (उठाने वाले), संवेशक (बिठाने या लिटाने वाले), औषधपेषक (दवाई बनाने वाले), परिचारक रक्खे जाते थे।[1] इनके सिवाय वेदपाठी (श्रोत्रिय) राजसेवा, व्यापार, गीत वा कृषि, गोरक्षा-पशुपालन का भी धंधा था।

साथी—गीतवादित्र (गाने बजाने), उल्लापक (स्तोत्रपाठ), श्लोकपाठ, कथा कहने में, आख्यायिका–इतिहास–और पुराण सुनाने में निपुण, मनोभावों को ताड़ने वाले, देश काल को समझने वाले परिषदों (बैठकीबाज-मुसाहिबों) को भी रक्खे।[2]

---

१ संवाहक पेशे का उल्लेख मृच्छकटिक में भी आया है, यथा—

संवाहकवृत्तिमुपजीवामि;

वसन्तसेना—साधु कला शिक्षिता आर्येण—

संवाहनम्—त्वङ्मांसास्थि सुखकरेण त्रिविधं संवाहनमङ्गमर्दनम्।

२ कथा और आख्यायिका में कुछ विद्वान भेद मानते हैं, इनके विचार से कथा-काल्पनिक और रसपूर्ण वृत्त होता है, आख्यायिका का सम्बन्ध ऐतिहासिक कथानक से होता है। दण्डी दोनों में भेद नहीं मानते, शायद कालिदास भी भेद नहीं मानते- यथा "प्राप्यावन्तीनुदयनकथा कोविद्ग्रामवृद्धान्" से स्पष्ट है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक जैसा कार्य करने वाले, मतलब को पूर्ण करने वाले, एक दूसरे का कहा मानने वाले, कलाओं में कुशल, मन और आयु में समान एक जैसा सोचने वाले, कुल-उदारता–चतुरता–शील–पवित्रता से युक्त, सदा प्रसन्न रहने वाले, चिन्ता-शोक और पीड़ा से रहित, समान शीलवाले, स्नेह रखने वाले, प्रिय बोलने वाले साथियों को चुने [चि. अ. २।२।२१-२४]।

वात्स्यायन कामसूत्र में भी इससे मिलता हुआ उल्लेख है, यथा—ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त करके विद्या पढ़कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके अपना निवास स्थान नगर में, पत्तन में (राजधानी में), खर्वट (कस्बे में), महती में (बड़े कस्बे में) सज्जनों के बीच में बनाये। वहाँ पर अपना मकान पानी के समीप में वृक्षों की वाटिका वाला, काम करने के लिये पृथक् कमरों वाला, दो घर वाला, (अन्तःपुर और बाहर बैठक वाला) बनाये।

बाहर के घर में चिकना-साफ सुथरा दोनों ओर तकिया वाला, बीच में थोड़ा झुका, (कोमल) श्वेत चादर से ढंपा पलंग–सोने के लिये बनाये, पास में स्त्री के लिये दूसरी शय्या (प्रतिशय्यिका) बनाये। पलंग के शिरो भाग में देवता का स्थान–देवता की प्रतिभा चित्र आदि रखना चाहिए। शय्या के पास ही चौकी (वेदिका)–स्टूल आदि रक्खे—जिस पर अनुलेपन, माला, इतरदान (सौगन्धिक पुटिका), सिक्थकरण्ड (मेक-अप–शृंगार की आवश्यक वस्तुवें) विजौर की छाल और पान का बीड़ा रहे।

शय्या के पास में ही पीकदान (पतद्ग्रह) रहना चाहिये। खूँटी पर वीणा लटकी रहनी चाहिए। (वर्त्तमान काल में रेडियो–लेखक), चित्रफलक, चित्रकर्म के उपयोगी सजा, कोई पुस्तक और कुरण्ट की माला रहनी चाहिए। [कामसूत्र-अध्या. ४, १-१०]।

३ **पशुपक्षी**—सम्पन्न व्यक्तियों के घरों में पक्षी-पशु भी पालकर रखे जाते थे—इनसे एक तो घर की शोभा होती थी और दूसरे जरूरत के समम इनका उपयोग चिकित्साकार्य में एवं अन्न की परीक्षा में भी होता था। इसीलिये चरक में—बटेर, कपिञ्जल, खरगोश, हरिण, ऐण, कालपुच्छक, मृगमातृका, उरभ्र तथा दूध देने वाली—सीधी सादी–निरोगी–जीते हुए बछड़े वाली गाय को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने का विधान है, इनके लिये खाने-पीने और रहने का पूर्ण प्रबन्ध किया होना चाहिये [सू. अ. १५।७][1]

कामसूत्र में इन पक्षियों का स्थान घर के बाहर (बरामदे में) बताया है [तस्य बहिः क्रीड़ा शकुनिपञ्जराणि—अध्याय ४।१३]

सम्पन्न ऐश्वर्यशाली व्यक्ति के लिये जीवन निर्वाह के साधनों से भिन्न साधन वानप्रस्थी या सन्यासी के हैं वे भी देखिये--

सब वस्तुवों का ग्रहण करना छोड़ना चाहिए, गुह्य अंगों को ढाँपने के कौपीन धारण करे; वस्त्र गेरु के रंग में रंगा बनाये, गुदड़ी को सीने के लिये सुई और सुई का खोल रक्खे, शौचकार्य के लिये जलतुमड़ी, दण्डा, भिक्षा के लिए पात्र, प्राण धारण, जीवन धारण, करने के लिये ही एक समय ग्राम्य–जो कुछ मिले उसका भोजन करना, थकान को मिटाने के लिये ही–गिरे शुष्क पत्तों की शय्या पर सोना, ध्यान के लिए ही शरीर धारण करना, वन में विना घर बनाये रहना चाहिए।

दोनों ही चित्र अपनी आखिरी सीमा को छूते हैं, एक तरफ सम्पन्न-समृद्ध व्यक्ति का चित्र है और दूसरी निर्मोही सन्यासी का चित्रण है इतना होने पर भी कुछ नित्यकर्म ऐसे हैं जो दोनों के लिए समान हैं, यथा–स्नान आदि।

---

१ सुश्रुत में कहा है कि–सन्निकृष्टांस्ततः कुर्याद् राज्ञस्तान् मृगपक्षिणः।
वेश्मनोऽथ विभूषार्थं रक्षार्थं चात्मनः सदा॥ सु क. अ. १।३३।

पशु पक्षियों के रखने का सुन्दर चित्रण मृच्छकटिक में है, यथा—

"आश्चर्यं भोः इहापि सप्तमे प्रकोष्ठे सुश्लिष्टविहंगवाटीसुखनिषण्णान्यन्योन्य-चुम्बन पराणि सुखमनुभवति पारावत मिथुनानि। दधि भक्तपूरितोदर ब्राह्मण इव सूक्तं पठति पञ्जरशुकः। इयमपरा संमानलब्धप्रसरेव गृहदासी अधिकं कुर-कुरायते मदनसारिका। अनेकफलरसास्वाद प्रहृष्टकण्ठा कुम्भदासीव कूजति परपुष्टा। आलम्बिता नागदन्तेषुपञ्जरपरम्परा। योध्यन्ते लावकाः। आलाप्यन्ते कपिञ्जलाः। प्रेष्यन्ते पञ्जरकपोताः। इतस्ततो विविधमणिचित्रित इवायं सहर्षं नृत्यन्विकिरण संतप्तपक्षोत्क्षेपैः विधुवती व प्रासादं गृहमयूरः। आश्चर्यं भो प्रसारणं कृतं गणिकया नानापक्षिसमूहैः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन नित्य कर्मों का सम्बन्ध मुख्यतः गृहस्थ व्यक्ति के साथ है, जैसा कि कामसूत्र में कहा है—

वह (नायक) प्रातःकाल में उठकर नित्यकर्मों को करके, दन्तधावन करके, मात्रा में उचितरूप में अनुलेपन-चन्दन आदि लगाकर, धूप-अगरु आदि का और माला को धारण करके, सिक्थक—मुखपर पाऊडर लगाकर, पान खाकर, दर्पण में मुख देखकर दैनिक कार्यों में लगे। इन्हीं कार्यों को चरक में विस्तार से दिया है, यथा—

नित्यकर्मों के करने का लाभ—जिन कर्मों के करने से स्वास्थ्य बना रहता है, उन कर्मों को नित्य करना चाहिए। जिससे कि न उत्पन्न हुए विकार रोग आगे उत्पन्न न हों।

चरक में सबसे प्रथम आंखों में अंजन कार्य का विधान दिया है। अष्टांग संग्रह में इससे पूर्व भी कुछ आवश्यक कार्य बताये हैं, यथा—

मुझको रात का खाया भोजन पच गया या नहीं पचा, ऐसा विचार करके ब्राह्म मुहुर्त्त में-उषाकाल से पूर्व उठना चाहिये। इस समय उठने से आयु की रक्षा होती है, इसलिये स्वस्थ व्यक्ति को प्रातःकाल में—ब्राह्ममुहुर्त्त में उठना चाहिए।

शौचकार्य—उठकर जब मलप्रवृत्ति हो तब मल त्याग करे। मल त्याग करते समय बोलना—बात-चीत नहीं करनी चाहिए, मलत्याग में ध्यान रखना चाहिए, शरीर के अंग ढँपे रहने चाहिए, शिर को विशेष रूप में लपेट कर मल त्याग करना चाहिए! प्रवृत्त मल को बाहर करना चाहिए उसके लिये बल प्रयोग या जोर नहीं करना चाहिये।

मल त्याग के लिये निषिद्ध स्थान—अतिशय मलिन स्थान में, रास्ते में, मिट्टी या राख पर, गायों के बैठने-उठने के स्थान पर; मनुष्यों के बैठने के स्थान में, गोबर पर; नगर के समीप में, अग्नि-वल्मीक (बम्बी), सुन्दर स्थान-हल चले हुए खेत में-चिता के समीप में और वृक्ष पर मल त्याग नहीं करना चाहिए। स्त्री, पूज्य व्यक्ति-सूर्य-गाय-चन्द्रमा-वायु-अन्न-अग्नि और जल के सन्मुख मल त्याग नहीं करना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मल त्याग की प्रवृत्ति होने पर दूसरे किसी कार्य में नहीं लगना चाहिए। मल त्याग करने के पीछे शल्य रहित (कांटे-पत्थर-कंकर से रहित नरम मिट्टी) तथा अदूषित मिट्टी से मलायन को साफ करे–पीछे से नदी या कुएँ से लिए पवित्र जल से तथा मिट्टी से अंगों को धोये। मिट्टी का लेप गन्ध-दुर्गन्ध को नष्ट करता है शौच कार्य में गिरे हुए जल विन्दुओं से अपने को बचाये (संग्रह–सू. अ. ३)।

आँख में अंजन—अंजन दो प्रकार का बरता जाता था, एक–**सौवीराञ्जन**–जो कि प्रति दिन आँख में लगाया जाता था, दूसरा-**रसांजन**-जो कि पाँचवें या आठवें दिन रात्रि में लगाया जाता था। सौवीराञ्जन–दिन में प्रातः लगाया जाता था।

सौवीर और सैन्धव ये दोनों प्रान्त वर्त्तमन सिन्ध और डेरा गाजीखाँ के इलाके को भाग थे। सौवीर प्रदेश आज कल सिन्ध का थार का प्रदेश था, इसमें सौवीरा नदी बहती थी–उसीसे यहाँ अंजन मिलता था। आज भी डेरा गाजीखाँ और मुल्तान का सुरमा प्रसिद्ध है और वहाँ पर सुरमा लगाने की प्रथा आज भी प्रचलित है। सुरमे को बहुत बारीक पीसकर आँख में अंजन किया जाता था[1]।

रसांजन का अर्थ स्पष्ट नहीं, रसांजन से अभिप्राय सम्भवतः दारु हल्दी से बनाई रसौंत से है। इसमें दूध डालकर इसको बनाते हैं, यह तीक्ष्ण रहती है, इसके लगाने से आँखों में से पानी झरता है। इसकी तेजी के कारण ही इसको रात में लगाने का विधान है क्योंकि रात में आँख के अन्दर अग्नि तत्त्व मन्द रहता है।

---

१ सुश्रुत में अंजन को लगाने के लिए अंजन शलाका का भी उल्लेख किया है; ये शलाकायें ताम्र-स्वर्ण-चाँदी की होती थी–बीच से मोटी और किनारों पर मुकुलाकृति–डोटी के समान होती थी।

अष्टांगुलायता मध्ये सूत्रेण परिवेष्टिता। अङ्गुष्ठपर्वसमिता वक्त्रयोर्मुकुलाकृतिः।
ताम्रायसीशातकुम्भी शलाकास्यादनिन्दिता।–सू. चि. अ १६।८४–८५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंजन के लिए लोक में प्रसिद्धि है कि—

आँख में अंजन दान्त में मंजन नित कर नित कर।
कान में अंगुली, नाक में तिनका मत कर मत कर॥

अंजन का लाभ—आँख-सूर्य का प्रतिनिधि होने से तेजोमय है, इसलिये इसे विशेषतः कफ से भय है (आँख में कैट्रैक्ट–लिंगनाश कफ का ही परिणाम है), इसलिये कफ नाशक कर्म का करना दृष्टि के पक्ष में हितकारी है। तीक्ष्ण अंजन को दिन में नहीं बरतना चाहिए, विरेचन-आँख से पानी झरने के कारण निर्बल हुई दृष्टि सूर्य के प्रकाश में पीड़ित होती है। इसलिए तीक्ष्ण अंजन रात में ही लगाना चाहिए।

जिस प्रकार कि मलिन मणि-रत्न-स्वर्ण आदि के आभूषणों की शुद्धि–निर्मलता-धोकर-तैल, वस्त्र, बाल आदि के द्वारा होती है, उसी प्रकार आँखों की शुद्धि आश्च्योतन, अंजन आदि से होती है। जिस प्रकार निर्मल आकाश में चन्द्रमा चमकता है, उसी प्रकार दृष्टि स्वच्छ होकर प्रकाशित होती है[1]।

धूम्रपान

धूम्रपान की प्रथा इस देश में बुद्ध के समय भी थी, विनय पिटल में धूम्रवर्त्ति और धूम्रपात्र का उल्लेख आता है। [2]स्वास्थ्य के दृष्टि से धूम की

---

१ विनयपिटक में भी अंजन, अंजनदानी और शलाका का उल्लेख है। भिक्षुओं के लिए अंजन का उपयोग बताया गया है। अंजन को रखने के लिए अंजन दानी बरती जाती थी। देखिये मेरा 'आयुर्वेद का इतिहास'–हिन्दी साहित्य सम्मेलन-प्रयाग से प्रकाशित पृष्ठ–२२६।

२ धूम नेत्रों के लिये विनय पिटक (पृष्ठ २१९ पर) उल्लेख है, यथा—

नस से भी (रोग) अच्छा न होता था; भगवान से यह बात कही गई। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ (दवाई के) धुंए पीने की। २–उस बत्ती को लीप कर पीते थे, उससे कंठ जलता था भगवान से यही बात कही। भिक्षुओं ! अनुमति देता हूँ धूम नेत्र की (=फोफी)। ३--उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नाना प्रकार के सोने के--रूपे के धूम नेत्र धारण करते थे; लोग हैरान होते थे–भगवान से यह बात कही। भिक्षुओ ! नाना प्रकार के धूम नेत्र नहीं धारण करनी चाहिये। भिक्षुओं अनुमति देता हूँ–हड्डी के–शंख के धूम नेत्र की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता; इसको पीने के विधि, समय तथा इसके लिये नलिका की लम्बाई तथा धूमवर्त्ति के द्रव्य का उल्लेख चरक संहिता में विस्तार से आता है।

धूम के तीन प्रकार—१–स्नेहिक धूम, २–प्रायोगिक धूम और ३–वैरेचनिक धूम। इनमें वैरेचिनिक और स्नेहिक धूम विशेष अवस्थाओं में बरता जाता था, प्रायोगिक धूम सामान्यतः सब समय पिया जाता था। स्नैहिक धूम–वसा, घृत, मोम तथा जीवक, ऋषभक आदि के योग से बनाया जाता था। वैरेचनिक धूम–अपराजिता, मालकंगनी, हरिताल, मैनशिला तथा अगरु, कुष्ठ तगर आदि के योग से तैय्यार होता था। प्रयोगिक धूम–हरेणुका, प्रियंगु, पृथ्वीका, केशर, नख, खस, चन्दन, तेजपत्र, दालचीनी, इलायची, ह्रीवेर, पद्माख, कत्तृण, मुलैहठी, जटामांसी, गुग्गुल, अगरु, शर्करा, वरगद,–गूलर,–पीपल,–पिलखन,–लोध की छाल, राल, केवड़ी मोथा, मुस्ता, शिलारस, कमल, नील कमल, धूप, शिल्लकी, ग्रन्थि पर्ण, इनको पीस कर सरकण्डे के उपर यव-जौ के समान बीच में मोटी किनारों पर पतली बना कर लेप करे। इस लेप की मोटाई अंगुठे के बराबर और लम्बाई आठ अंगुल होनी चाहिये। जब लेप सूख जाये तो बीच का सरकण्डा निकाल कर फेंक दें। इस धूम्रवर्त्ति को धूम्र नेत्र में रख कर कुछ स्नेह और अग्नि से जला कर पिये।

प्रायोगिक धूम के पीने के आठ समय हैं, यथा–स्नान करके, भोजन करके, जिह्वा साफ़ करके, वमन करके, दान्तों को साफ़ करके, नस्य लेकर, अंजन करके और प्रातःकाल नींद से जाग कर इन आठ समय पर संयमी व्यक्ति धूम पान करे। [1]मुख से पिये धूम को मुख से ही निकालना चाहिए, मुख से पिये धूम को नासा से निकालने पर–प्रतिलोम गति से धूम आँखों को हानि पहुंचाता है। धूम पान करते समय तीन तीन घूंट एक साथ ले-फिर बीच में व्यवधान करे-फिर तीन-तीन घूंट पिये, फिर व्यवधान रक्खे। इस प्रकार से तीन वार–कुल नौ घूंट धूम पीना चाहिये। धूम पान करते समय सीधा बैठना चाहिये, धूम पान में मन को लगाना चाहिये, अच्छी प्रकार सुख पूर्वक बैठकर

१ अष्टांग संग्रह में आठ काल भिन्न बताये हैं; यथा—पान कालास्त्वष्टौ प्रायोगिकस्य-निशामूत्र शकृद्दन्तधावनस्वेदनस्याहार शस्त्रकर्मान्ताः ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धूम पिये। नासा से जब धूम लेना हो तो नासा का एक छेद बन्द करके धूम लेना चाहिये।

धूम नेत्र की लम्बाई—नेत्र की लम्बाई पीने वाले की अंगुलियों से नापी जाती थी। नेत्र की लम्बाई प्रायोगिक धूम के लिए अड़तालीस अंगुल, स्नेहिक धूम के लिये बत्तीस अंगुल और विरेचनिक धूम के लिए चौब्बीस अंगुल होती थी।

धूम नेत्र का आकार—धूम नेत्र सीधा, परन्तु तीन स्थानों पर मुडा या विभक्त या तीन टुकड़ों वाला होता था, जिससे कि धूम का वेग सीधा मुख में न आये। इसको घूमकर आने में इसकी तीव्रता घट जाती थी। इसका अग्र भाग-धूम नेत्र का अगला छेद बेर की गुठली के बराबर होता था। दूर से आता हुआ, पर्वों के मोड से वेग के कम होने से, छेद के पतला होने से थोड़ी मात्रा में आता हुआ धुंआ इन्द्रियों को नुक्सान नहीं करता; विशेष करके जब मात्रा और काल के अनुसार इसका पान किया जाये।

धूमनेत्र के बनाने के लिए सुवर्ण, चांदी, रांगा, ताम्र, पीतल कांसी, अस्थि, लोह, हाथी दांत, वांस, वृक्ष, नड़सर, सींग, मणि इनका व्यवहार होता था [सू. अ. ५।३०, सि. अ. ३।७]।

धूम्र पीने के लिये हुक्के के रूप में किसी पात्र का व्यवहार नहीं दीखता था। धूमवर्त्ति को धूमनेत्र में रखकर पिया जाता था। यह एक प्रकार चिरुट का रूप है। कादम्बरी में इसी प्रकार के धूम्रवर्त्ति का उल्लेख है, यथा—**परिपीत धूमवर्त्ति**। देहातों में आज भी गाय चराने वाले पत्तों की चिलम बना कर उसमें तमाखू रखकर पीते हैं, अथवा भूमि के ऊपर दो गड्ढे बनाकर और नीचे इन दोनों गड्ढों को मिलाकर, एक गड्ढे में तमाखू और आग रखकर दूसरे गड्ढे पर मुख लगा कर पीते हैं।

प्राचीन संस्कृत काव्यों में कादम्बरी को छोड़कर दूसरे किसी काव्य में धूम पान का वर्णन नहीं आता। यह वर्त्ति सुगन्धित द्रव्यों से बनती थी। वाण ने हर्ष चरित में राज्यसभा, विवाह की तैय्यारी आदि का विस्तार से वर्णन किया है। इसमें भी धूमपान का वर्णन नहीं है, अपितु पान देने और वस्त्रों पर सुगन्ध लगाने का ही उल्लेख है [उद्दाम दीयमान ताम्बूल पटवास कुसुम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसाधित सर्वलोकं-हर्षचरित ४।१४२]। मृच्छकटिक में भी शूद्रक के घर के वर्णन में इसका उल्लेख नहीं है। रघुवंश में कालिदास ने मदिरा पान का वर्णन किया है [रघुवंश १६।११-१२]। पानभूमि शब्द भी आया है, मद्य के लिए मधु-मैरेय-आसव आदि शब्द काव्यों में मिलते हैं, कादम्बरी स्वयं एक मद्य है, कादम्बरी मद्य के कारण मनुष्य जैसे मस्त बन जाता है, वैसे ही बाण की बनाई कादम्बरी कथा से आदमी अपनी सुध बुध खो बैठता है। मद्य पीने का रिवाज उस समय था, पान की प्रथा भी थी, नैषध में श्री हर्ष कवि ने भी कान्यकुब्जेश्वराधीश से पान का बीड़ा प्राप्त करने का उल्लेख किया है, परन्तु धूम्रपान का वर्णन किसी भी संस्कृत काव्य में नहीं मिलता। उस समय तक धूम्रपान की प्रथा देश में चली नहीं थी अथवा सामूहिक रूप में इसका प्रचार नहीं होगा। धूमवर्ति का उल्लेख कादम्बरी में ही मिलता है[1] या फिर विनयपिटक में।

साथ ही यह भी स्पष्ट दीखता है कि आज भी भारत में तमाखू पीने का तमाखू बनाने की जो विधियां प्रचलित हैं, वे अन्यत्र नहीं हैं। भारतवर्ष में पटना या लखनऊ का बना खमीरा तमाखू या अम्बरी तमाखू अपनी विशेषता लिए होता है, यहां के हुक्के उनके आकार, उनकी कारीगरी अपने में अलग रहती है। पानी में से होकर धुँवे के आने से धुँवे की तीक्ष्णता कम हो जाती है और उससे होने वाली हानियों का भय कम हो जाता है। सम्भवतः वर्त्तमान विधि इसी प्राचीन विधि का रूप हो। अथवा मुसल्मानों के सम्पर्क में आने से इसको अपनाया गया हो। कुछ भी हो स्वास्थ्य की दृष्टि से धूम्रपान एक आवश्यक था। वर्त्तमान हुक्के का रूप ईरान से अकबर या जहांगीर के समय भारत में आया था। जहांगीर ने इस पर पहिले रोक लगा दी थी पीछे घरों में पीने की आज्ञा देदी थी।

नस्य

नासा को शिर का द्वार कहा है। नासा में तैल डालने का विधान है, यह तैल 'अणु तैल' के नाम से चरक में आया है। अणु तैल नामकरण करने का

---

१ शूद्रक के सभामण्डप के वर्णन में—परिपीत धूमवर्त्तिरूपस्य च गृहीत ताम्बूलः = कादम्बरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही कारण है कि यह तैल शिर के एक एक अणु में पहुंचता है, एक एक अणु के लिए उपयोगी है।

नस्य लेने से चक्षु, नासिका और श्रोत्र इन्द्रियां स्वस्थ रहती हैं, बाल भी जल्दी सफेद नहीं होते, न जल्दी गिरते हैं। गर्दन के ऊपर किसी प्रकार के वात रोग नहीं होते। चेहरे पर झुर्रियां नहीं आती। यह नस्य कर्म प्रावृड्, शरद् और वसन्तऋतु में जब आकाश में बादल न हों तब करना चाहिए।

इस तैल में दो विशेषतायें हैं, इसमें साधारण पानी न बरत कर वर्षा जल बरता जाता है और इस तैल का दस बार पाक करके दशम पाक में तैल के बराबर बकरी का दूध डाला जाता है। नस्य के लिए तैल को रूई के फाये से नाक में डालना चाहिये। नस्य को एक एक दिन छोड़कर सात बार करना चाहिए।

दन्तधावन और जिह्वी

दाँतों को साफ करने के लिए दातुन का विधान बताया है, दातुन प्रातः और सायंकाल में करनी चाहिये, इसे आगे से चबाना चाहिये [सुश्रुत में दातुन की लम्बाई बारह अंगुल और मोटाई कनिष्ठिका अंगुली के समान बताई है]। दातुन के लिये कषाय-कटु और तिक्त रस के वृक्ष उत्तम हैं। दातुन करते समय मसूडों पर किसी प्रकार की पीड़ा-रगड़ नहीं होनी चाहिए। ज्वर रोगी के लिए भी दातुन करने का विधान है। यह दातुन मुख के रस के विपरीत होनी चाहिए। दातुन के करने से भोजन में रुचि होती है, मुख में निर्मलता आती है [चि. अ. ३।१५७-१५८]।

सामान्यतः करंज, कनेर, आक, चमेली, अर्जुन और असन के वृक्ष पसन्द किये जाते थे। जिह्वा को साफ करने के लिए स्वर्ण; चांदी, ताम्र, पीतल या रांगे की जीभी का उपयोग होता था; ये जिभी आगे से तीक्ष्ण नहीं होनी चाहिये, गोल होनी चाहिए। इनसे जिह्वामूल में स्थित मल निकाल देना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुखवास

मुख की विशदता, सुगन्धि के लिये मुख में सुगन्धित द्रव्य धारण करने चाहिये; ये द्रव्य-जावित्री, जायफल, सुपारी, लौंग, कंक्कोल, ताम्बूल, इलायची कर्पूर आदि हैं।

पान-सुपारी की प्रथा इस देश में बहुत प्राचीन है, भगवान को नैवेद्य के रूप में पान और सुपारी दिया जाता है। आये हुए अतिथि के सम्मान में पान दिया जाता है, विदाई के समय में भी पान देने की प्रथा है। वास्तव में पान का चर्वण मुख की स्वच्छता के लिये है।

पान में हरा रंग रहने से आधुनिक चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से इसमें क्लोरोफिल और विटामिन के हैं, जो कि उत्तम रक्त स्तम्भक और मसूडों के लिए उपयोगी हैं। साथ ही पान के चर्वण से मुख में रक्तिमा रहती है [कामसूत्र में भी कहा हैं "गृहीत मुखवासताम्बूलः कर्माण्यनुतिष्ठेत्–४।१६]। ओठ फटते नहीं।

तैल गण्डूष

दान्त और मसूडों को मजबूत करने के लिये तथा इनको कृमियों से बचाने के लिए एवं हनु अस्थियों को दृढ़ करने के लिए तैल का गण्डूष धारण करना चाहिए। तैल सूक्ष्मस्रोतों में जाने वाला होने से दातों के बीच में, दान्त और मसूडों के बीच में पहुंच जाता है। इससे दान्तों में सड़ांद या कृमि नहीं होने पाते। तैल की उपस्थिति में जीवाणु पनप नहीं सकते।

तैल अभ्यंग–पैरों पर तैल लगाना

शिर, कान और पैर के तलुओं पर प्रतिदिन तैल लगाना चाहिये। स्नेह-तैल के लगाने से जूता-चमड़ा या चमड़े का कुप्पा जैसा मजबूत बनता है; वैसा ही शरीर भी दृढ़ और क्लेश को सहने वाला बन जाता है। त्वचा में स्पर्श ज्ञान रहता है, स्पर्शन क्रिया में कारण वायु है, तैल वायु को शान्त करने वाला है, इसलिये अभ्यंग त्वचा के लिए हितकारी है। अभ्यंग करने से मनुष्य बलवान देखने में सुन्दर होता है, ऐसे व्यक्ति को बुढापा देर में आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैरों पर तैल विशेष रूप में लगाना चाहिए। पैरों पर तैल लगाने की प्रथा का उल्लेख मृच्छकटिक में भी वसन्तसेना के घर का वर्णन करते हुए विदूषक ने किया है [का एषा-तैल चिक्कणाभ्यां पादाभ्यामुपतिष्ठते]। पैरों पर तेल लगाने से इनमें सुकुमारता, स्थिरता और बल रहता है। दृष्टि में निर्मलता आती है; बिवाई नहीं फटती, शिरा और स्नायु में संकोच नहीं होता।[१]

अभ्यंग में उद्वर्त्तन, उद्घर्षण और संवाहन ये तीनों क्रियायें आ जाती हैं। उद्वर्त्तन का रूप उबटन है; जो कि तैल, बेसन, हल्दी मिलाकर बनाया जाता है। उद्घर्षण में स्नेह नहीं होता, यह प्रायः करके हरड़, लोध्र, आम की छाल, अनार की छाल आदि कषाय रस वाले द्रव्यों से बनाया जाता है। ये वस्तुवें पसीने को सोखती हैं—और पसीना कम आने देती हैं। सामान्यतः मेदस्वी पुरुषों में उद्घर्षण का व्यवहार किया जाता था और कृश व्यक्तियों में तैल के अभ्यंग या उद्वर्त्तन का व्यवहार होता था।

संवाहन क्रिया में शरीर को हाथों से या पैरों से दबाया जाता था; जिस प्रकार कि पहलवान लोग अखाड़े में कुश्ती करके पीछे से अपने शरीर को आज भी दबवाते हैं। इससे थकान दूर हो जाती है। संवाहन तथा तैल अभ्यंग एक

---

१ इसके आगे अष्टांग संग्रह और सुश्रुत में व्यायाम कर्म का आदेश है। व्यायाम करना अन्य कार्यों की भाँति आवश्यक है, इसको प्रतिदिन करना चाहिये। व्यायाम करने वाले को किसी प्रकार के रोग नहीं होते, बुढ़ापा भी जल्दी नहीं आता, यथा—

शरीरायासजननं कर्म व्यायाम संज्ञितम्।
तत कृत्वा तु सुख देहं विमृद्नीयात् समन्ततः॥
शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं स्थिरत्वं लाघवं मृजा॥
श्रम क्लम पिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता।
आरोग्यं चापि परमं व्यायामादुपजायते॥
व्यायाम स्विन्नगात्रस्य पद्भ्यामुद्वर्त्तितस्य च।
व्याधयो नोपसर्पन्ति सिंह क्षुद्र मृगा इव॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कला थी। संवाहन कला का उल्लेख मृच्छकटिक में आता है। शिर पर तैल लगाना, शरीर पर तैल की मालिस करना—स्नेहन कार्य में दक्ष व्यक्तियों की समाज में जरूरत थी, इसी से ऐसे लोगों को रोगी के कार्य के लिये उपस्थित रखने का निर्देश चरक में मिलता है (सू. अ. १५।६) संवाहन के द्वारा त्वचा-मांस, अस्थि को आराम मिलता है।

स्नान

स्नान कराना भी एक कला थी—स्नान कराने वालों के लिए स्नापक शब्द चरक में आता है। स्नान से शरीर की दुर्गन्धि दूर होती है; शरीर का भारीपन, तन्द्रा, कण्डू-मल नष्ट होते हैं। पसीने की बदबू नष्ट होती है; शरीर में बल की वृद्धि होती है।

कामसूत्र में स्नान प्रतिदिन करने का कहा है, उत्सादन-उबटन लगाना एक दिन छोड़ कर दूसरे दिन लगाने को कहा है। फेनक-रीठे आदि का झाग या नीम के पत्तों का झाग दो दिन छोड़ कर तीसरे दिन लगाना चाहिये—विशेषतः जंघा, कक्षा में जहाँ पर पसीना अधिक आता हो वहां पर लगाना चाहिये। तीन दिन छोड़ कर चौथे दिन दाढ़ी-मूंछ के बाल बनवाने चाहिये[1]।

वेश

चरक में भद्रजनोचित वेश धारण करने का उल्लेख है, उद्धत या अंगुली उठने योग्य वेश से बचने का उल्लेख है [साधुवेशः—सू. अ. ८।१८]। वस्त्र स्वच्छ होना चाहिये; वह फटा नहीं होना चाहिये (नित्यमनुपहतवासः सू. अ. ८ १८)। माला को पहिनना, शरीर पर तथा वस्त्रों पर गन्ध—इतर लगाना उस समय सभ्य समाज में प्रशस्त माना जाता था (श्रीमत्पारिषदं शस्तम्—सू. अ. ५।९५; सुमनाः सुगन्धिः स्यात्—सू. अ. ८।१८)।

---

१ नित्यं स्नानं, द्वितीयकमुत्सादनं, तृतीयकः फेनकः, चतुर्थकमायुष्यम्, पञ्चमं दशमकं वा प्रत्यायुष्यमित्यहीनम् । ४।१६ ।

आयुष्यं तच्चतुर्थेऽह्नि स्याद्यनुक्षुरकर्मणा । प्रत्यायुष्यं यदुद्धराल्लोम्नां तद्दशमेऽहनि ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माला के साथ रत्नों का धारण करना भी उस समय प्रशस्त माना जाता था, विना रत्न को हाथ में लिए भोजन करने का निषेध था (नारत्नपाणिर्नास्नातो नोपहतवासा········अन्नमाददीत)। रत्न और आभूषणों का धारण करना मंगल्य, आयुवर्धक, ऐश्वर्य का सूचक; हर्षदायक; ओजवर्धक है।

केश–श्मश्रु का कटना तथा इनको ठीक तरह बनाकर रखना-सौन्दर्य की वृद्धि करने वाला, पवित्र तथा वृष्य एवं आयुवर्धक है; इसीसे कहा है कि मनुष्य को बाल बना कर रहना चाहिये (प्रसाधित केशः)। बालों को–नखों को इक्कीसवें दिन कटवा दे (त्रिः पक्षस्य केशश्मश्रु लोमनखान्संहरेत्–सू. अ. ८।१८)। पैरों में जूता पहिनना चाहिए; हाथ में दण्ड धारण करके चलना चाहिये; यह दण्ड गिरते हुए को सहारा देता है, दुश्मनों को दूर भगाता है; सहारा है,–बल रहता है; भय को नष्ट करता है (सू. अ. ५।१०२)।

एक रथी जिस प्रकार अपने रथ की रक्षा करता है, एक नगरी जिस प्रकार अपने नगर की देख भाल करता है; उसी प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने नित्य करणीय कार्यों के में सदा सावधान रहे। अपने धर्म के जो विरुद्ध न हों ऐसे जीविका के साधनों को सदा बरते। सदा शान्ति, अध्ययन करता रहे, इस प्रकार करने से सुख प्राप्त होता है।

सद्वृत्त

मनुष्य अपने वैयक्तिक जीवन में स्वतंत्र होने पर भी सामाजिक जीवन में पराधीन है; इसी से चरक संहिता में सज्जनों के लिये करणीय बातों का उल्लेख किया है। इन बातों के करने से मनुष्य की आयु बढ़ती है–एक प्रकार से ये धर्म कृत्य, सामाजिक कर्म हैं, इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को इनका जानना जरूरी है। इन कार्यों के करने से **आरोग्यता और इन्द्रियों पर विजय** मिलती है। वास्तव में भारतीय चिकित्सा शास्त्र की यही विशेषता है कि इसमें केवल शरीर का ही विचार नहीं किया गया अपितु मन-इन्द्रिय और आत्मा तक की गुत्थीयों को सुलझाया गया है। इसीलिये आयुर्वेद ग्रन्थों में सद्वृत्त का उल्लेख किया है। यह सद्वृत्त संक्षेप में इस प्रकार से है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य को चाहिए कि वह देवता-गाय-ब्राह्मण-गुरु-सिद्ध-आचार्यों की पूजा करे। अग्नि की उपासना करे। प्रशस्त औषधियों को धारण करे, दो समय संध्या करे। नित्य अच्छे विना फटे वस्त्र पहिने, धूम पिये, मिलने पर प्रथम कुशल पूछे, देखने में प्रसन्न मुख, कठिनाई में फँसे हुओं की रक्षा करने वाला बने, होता—यज्ञ करे; दाता बने, अतिथियों की पूजा करे, समय पर हितकारी-थोड़ा और मधुर एवं अर्थ पूर्ण वचन बोले, अपनी इन्द्रियों को बश में रखे, धर्मात्मा बने, कारण में ईर्षा करे फल में ईर्षा न करे। निश्चिन्त, न डरने वाला, लज्जाशील, बुद्धिमान, अतिशय उत्साह पूर्ण, क्षमाशील, आस्तिक, अपने से बुद्धि-विद्या—कुल—वय—विनय में वृद्ध पुरुषों का सिद्ध एवं आचार्यों की सेवा करे। छत्र लेकर, दण्ड धारण करके, शिरपर पगड़ी बाँधकर, पैर में जूता पहिन कर दायें बायें देखता हुआ चले। सब प्राणियों के प्रति मैत्री भाव रखे [तुलना कीजिये—"अभयमित्रादभयमित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्र भवन्तु—अथर्व.का. १६। सू. १२। मंत्र ६]। क्रुद्ध व्यक्तियों को अनुकूल करने वाला, डरे हुओं को आश्वासन देनेवाला, दीनों की रक्षा करने वाला, सत्य प्रतिज्ञा वाला बने। शान्ति प्रधान, दूसरे के कठोर वचनों को सहने वाला, राग और द्वेष के कारणों को नष्ट करने वाला, क्षमाशील हो।

असत्य न बोले, किसी का धन न ले [मागृध. कस्यस्विद्धनम्—ईश. १]। दूसरे की स्त्री की चाह न करे, दूसरे के ऐश्वर्य को न चाहे, किसी से वैर न करे, पाप न करे और पाप में भी सम्मिलित न हो, दूसरे के दोषों को न कहे, किसी के रहस्य—गोपनीय बात को न जाने, अधार्मिक, राजा जिनसे द्वेष करता है—उनके साथ न बैठे। न विछी, विना तकिये की, छोटी और विषम शय्या पर न सोये। जोर से न हँसे, शब्द के साथ अपान वायु को बाहर न करे। दातों को न कटकटाये, नखों को न बजाये, अस्थियों को न टकराये, भूमि को न कुरेदे, तिनकों को न तोड़े, ढेलों को न मसले, अंगों से व्यर्थ की चेष्टायें न करे। शव को देख कर हुंकार न करे। अकेला शून्य गृह या जंगल में न जाये। रात्रि में मन्दिर, चैत्य-चत्वर (चौपाल), चौराहे—बगीचों श्मशान—वधस्थान पर न जाये। पाप वृत्ति से स्त्री—मित्र—भृत्य के पास न जाये। अपने से श्रेष्ठों के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोध न करे। अपने से हीन व्यक्तियों की सेवा न करे। कुटिलता का आश्रय न ले। दुष्टों का आश्रय न ले। डर को उत्पन्न न करे। देर तक पैर लटका कर या घुटने उठाकर न बैठे। हिंसक पशुओं के पास न जाये। आग को सुरक्षित किए विना न सेके। झगड़ा आरम्भ न करे। विना स्नान किये; विना वस्त्रधारण किए सन्ध्या न करे। जिस वस्त्र को पहिन कर स्नान किया उसी वस्त्र से शिर को साफ न करे। स्नान करने से पहिले पहिने वस्त्रों को फिर से न पहिने। रत्न—घी—दही—मंगल वस्तुवें या फूलों को विना छूए घर से बाहर न जाये। पूज्य जनों के तथा मंगल वस्तुवों के वाम ओर न जाये।

भोजन सम्बन्धि नियम—हाथ में रत्न को बिना लिये, विना स्नान किए, वस्त्रों को धारण किये बिना, जप और होम किए बिना, देवताओं को दिये बिना गुरु-अतिथि-आश्रितों को दिये विना, भोजन न करे। अनिच्छित गन्ध की उपस्थिति में भोजन न करे। विना माला पहिने भोजन न करे। बिना हाथ-पैर-मुख धोए भोजन न करे। मलिन मुख से भोजन न करे। बिना मन के भोजन न करे। भूखे-असभ्य-अपवित्र-परिचारकों से हाथों में लाया भोजन न करे। अपवित्र स्थान में; अयोग्य स्थान में, असमय में, मंत्रों से न अभिमंत्रित, प्रोक्षण मंत्रों से न स्पर्श किए अन्न को न खाये। अन्न की निन्दा करते हुए, या कुत्सित अन्न को या प्रतिकूल व्यक्तियों से लाये अन्न को न खाये [अन्नं न निन्द्यात्। तद् व्रतम्। २—अन्नं न परिचक्षीत। तद्व्रतम्। तैत्तरीय ७]। सम्पूर्ण रूप में भोजन न करे—थाली में कुछ छोड़ देना चाहिये; परन्तु दधि-मधु-लवण-सक्तु और घी को उच्छिष्ट न छोड़े। रात में दही न खाये। सत्तुवों को अकेला (केवल सत्तू ही) न खाये, रात में सत्तू न खाये, भोजन करके सत्तु न खाये, मात्रा में बहुत अधिक न खाये; दिन में दो बार सत्तू न खाये, पानी को अलग से पीते हुए सत्तू न खाये। दांतों से चबाकर सत्तू को न खाये।

भोजन के सम्बन्ध में कुछ और भी सुचनायें स्वास्थ्य की दृष्टि से दी गई हैं, यथा—भोजन उष्ण करना चाहिये, स्निग्ध भोजन करना चाहिए, मात्रा में भोजन करना चाहिये, प्रथम किया भोजन जीर्ण होने पर भोजन करना चाहिए, परस्पर अविरुद्ध वीर्य वाला भोजन करना चाहिये, इच्छित स्थान पर सब साधनों के साथ भोजन करना चाहिए, बहुत जल्दी और बहुत धीमे धीमे भोजन नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना चाहिए, विना बोलते हुए और बिना हँसते हुए भोजन करना चाहिए, भोजन मनोयोग के साथ करना चाहिये, अपनी आत्मा के अनुकूल देखकर भोजन करना चाहिए [वि. अ. १।३६]।

सदाचार—टेढ़ा होकर छींक न लें, टेढ़ा होकर न भोजन करे और न सोये। मल-मूत्र का वेग उपस्थित होने पर दूसरा कार्य न करे। मार्ग में मूत्र न करे। जन समाज में; भोजन के समय में, जप-होम-अध्ययन-बलि-मंगल क्रिया के समय नाक साफ करना या थूकना न करे।

स्त्रियों से सम्बन्धित सदाचार—स्त्रियों का अपमान न करे, स्त्रियों का अधिक विश्वास भी न करे, इनको गोपनीय रहस्य न सुनाये, इनको अधिकार न दे। रजस्वला, रुग्णा, अपवित्र, अप्रशस्त, अनिष्ट, भद्दे रूप और आचारवाली फूहड़, अकुशल, न चाहने वाली, दूसरे से प्रेम करने वाली, पराई स्त्री, अन्य योनि (पशु आदि की), योनि के सिवाय अन्य स्थान में (मुख आदि में), सम्भोग नहीं करना चाहिये।[1] चैत्य, चौपाल, चौराहा, बगीचा, श्मशान, वध-स्थान, पानी, औषध, ब्राह्मण, गुरु, मन्दिर में या इनके समीप में रहते हुए सम्भोग नहीं करना चाहिये। सन्ध्याकाल में तथा निषिद्ध तिथियों में भी मैथुन नहीं करना चाहिए। अपवित्र अवस्था में, औषध विना खाये, विना पहिले विचार किए, विना प्रहर्ष हुए, विना भोजन किये, बहुत अधिक भोजन करके भी मैथुन नहीं करना चाहिए। विषमस्थिति में रहकर मैथुन नहीं करना चाहिए[2]। मल मूत्र का वेग उपस्थित होने पर—थकान-व्यायाम-उपवास-श्रान्ति से पीड़ित होने पर, एकान्त न होने पर सम्भोग नहीं करना चाहिए।

---

१ कामसूत्र में इसी प्रकार की स्त्रियों का निषेध है, यथा—"अगम्यास्त्वेवैताः कुष्ठिन्युन्मत्ता पतिता भिन्नरहस्या प्रकाशप्रार्थिनी गतप्राययौवनाऽतिश्वेताऽतिकृष्णादुर्गन्धासम्बन्धिनी सखी प्रव्रजिता संबधिसखिश्रोत्रियराजदाराश्च। कामसूत्र ५।३२.

२ न च न्युब्जां पार्श्वगतां वा संसेवेत। न्युब्जाया वातो बलवान् स योनिंपीडयति। पार्श्वगताया दक्षिणे पार्श्वे श्लेष्मा स च्युतः पिदधाति गर्भाशयम्। वामे पार्श्वे पित्तं तदस्याः पीडितं विदहति रक्तं शुक्रं च। तस्मादुत्ताना बीजं गृह्णीयात्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य सदाचार—सज्जनों की और गुरुओं की निन्दा नहीं करनी चाहिए। समय को व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। नियम को नहीं तोड़ना चाहिए। रात्रि में अनुचित स्थान में नहीं घूमना चाहिए। निन्दित रोग आदि से पीड़ित और नपुंसकों के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिए। मद्य-द्यूत-वेश्या प्रसंग में रुचि न करे। रहस्य–गुप्त बात को प्रकाशित न करे। किसी का भी अपमान न करे। कभी भी अहंकार न करे। निन्दा न करे; मूर्ख न बने। ब्राह्मणों की निन्दा न करे। गायों के प्रति दण्डा न उठाये। वृद्ध पुरुषों को, गणों को–पंचायतों को–राजाओं को बुरा भला न कहे। बहुत न बोले। अपने सम्बन्धिकी, अपने स्नेही की, कठिनाई में मदद करनेवाले व्यक्ति के रहस्य को प्रकाशित न करे। बेचैन न बने, बहुत उतावला–घमण्डी-जल्दबाज न बने, भृत्यों का पोषण करने वाला बने, अपने आदमियो में अविश्वासी न वने, अकेला सुखी न हो (भुञ्जन्ते त्वघं पापं ये पचन्त्यात्म कारणात्–गीता)। दुःखी–गरीब जनों की भाँति शील स्वभाव, आचार-व्यवहार, उपचार-परिच्छद-सामान वाला न बने। सब जगह विश्वास न करे और सब जगह सन्देह भी न करे। सारे समय सोचता भी न रहे।

कार्य करने के समय का उलंघन न करे। जिसकी परीक्षा जांच नहीं की, ऐसे कार्य में हाथ न डाले। इन्द्रियों के वश में न हो। चंचल मन को अधिक चञ्चल न बनाए। बुद्धि और इन्द्रियों पर अधिक भार न डाले। बहुत आलसी वृत्ति का न बने। क्रोध और हर्ष के अधीन न बने। शोक में डूबा न रहे। सफलता में प्रसन्न होकर असफलता में दीन न बने (सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा···गीता)।

सदा प्रकृति का स्मरण रखना चाहिए शुभाशुभ हेतु का फल भी शुभाशुभ होना निश्चित है, इसे सदा याद रक्खे। मैंने सब कर लिया है, ऐसा कभी न सोचे; वीर्य का नाश न करे; अपवाद को याद न करे। अपवित्र अवस्था में गाय के घृत, अक्षत, तिल, कुशा, सरसों से अग्नि में हवन न करे। आशी–सान्त्वना देने वाले वचनों से आत्मा को सान्त्वना देता रहे (उद्धरेदात्मनमात्मानं नात्मनमवसादयेत्–गीता)। मेरे शरीर से अग्नि न जाये; मेरे शरीर में वायु प्राणों को धारण कराये। विष्णु मेरे में बल दे, इन्द्र मुझे वीर्य दे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे शरीर में कल्याण कारी जल प्रवेश करें। ब्रह्मचर्य-ज्ञान-दान-मैत्री-करुणा-हर्ष उपेक्षा वाला बने, सदा शान्त रहे।

लाभ—जो व्यक्ति इस कहे हुए स्वस्थ वृत्त को भली प्रकार करता है, वह एक सौ वर्ष तक निरोगी होकर जीता है। मनुष्य लोक में साधुओं से पूजित होकर यश प्राप्त करता है, धर्म और अर्थ उसे प्राप्त होते हैं, प्राणियों का मित्र बन जाता है। यह पुण्यकर्मा व्यक्ति अतिशय सुकृत करने वाले व्यक्तियों के स्थान को प्राप्त करता है; इसलिये सब व्यक्तियों को सदा इस सद्वृत्त का पालन करना चाहिए। इसके सिवाय अन्य कुछ भी जो सम्मनित सद्वृत्त हो; उसको भी अत्रिपुत्र का समर्थन प्राप्त है, उसे भी करना चाहिए।

सद्वृत्त के सम्बन्ध में फुलस्टौप या विराम नहीं हुआ—अपि तु सज्जनों से सम्मत जो दूसरा और भी कुछ सद्वृत्त उसे करने को कहा है (उपनिषद् में भी आचार्य शिष्य को उपदेश देता है कि—"अथ यदि ते कर्म विचिकित्सा वा वृत्ति विचिकित्सा वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः युक्ताः आयुक्ताः अलूक्षाः धर्मकामाः स्युः, यथा ते तत्र वर्त्तेरन् तथा तत्र वर्त्तेथाः। तैत्तरीय उपनिषद्)।

ऋतुचर्या

मकान के बनाने के समय मकान के विषय में "ऋतु सुखम्"—शब्द आया है; जिसका अभिप्राय यह है कि मकान में प्रत्येक ऋतु के अनुकूल सुख मिल सके। इसी प्रकार एक स्थान पर कृत्रिम रूप से ऋतु परिवर्त्तन करके कार्य करने का उल्लेख है (वि अ. ८।१३१)। ग्रीष्म ऋतु में खस की टट्टी या अन्य उपायों से शीतलता करके कार्य करने का विधान है।

इन ऋतुओं में किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना चाहिये, यह ऋतु चर्या में बताया है[1]।

---

१ सुश्रुत में ऋतु विभाग दो प्रकार से है, एक काल स्वभाव से और दूसरा शरीर शोधन की दृष्टि से—काल स्वभाव से—चैत्र और वैशाख से वसन्त; ज्येष्ठ और आषाढ़ से ग्रीष्म; श्रावण और भाद्रपद से वर्षा, आश्विन और कार्त्तिक से शरद्, मार्गशीर्ष और पौष से हेमन्त; माघ और फाल्गुन से शिशिर। दोष शोधन दृष्टि से—भाद्रपद और आश्विन से वर्षा, कार्त्तिक-मार्गशीर्ष से शरद, पौष-माघ से हेमन्त; फाल्गुन-चैत्र से वसन्त, वैशाख-ज्येष्ठ से ग्रीष्म, आषाढश्रावण प्रावृद्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरक संहिता में वर्णित ऋतु चर्या एक सम्पन्न-ऐश्वर्यशाली मनुष्य की चर्या है। ये साधन राजा या राज्य की भांति जीवन व्यतीत करने वाले को ही प्राप्त हैं। यथा—

हेमन्तऋतु में--खाने के लिये अतिशय घृत और दूध तथा मेदवाले मांसों का उपयोग बताया है, शरीर पर तैल-उबटन का व्यवहार करना होता है। रहने के लिए गर मघर चाहिये। घरों के सम्बन्ध तीन शब्द आये हैं; जेन्ताक भूमिगृह और गर्भगृह। इनमें **जेन्ताक** घर का वर्णन सूत्रस्थान अध्याय चौदह (४६) में किया है। इसके अनुसार यह घर गोल होता था, इसका निर्माण मिट्टी से होता था [मिट्ट के मकान और फर्श सरदियों में गरम और गरमियों में ठण्डे रहते हैं]। इसकी लम्बाई और ऊँचाई सोलह हाथ होती थी। इसमें एक झरोखा होता था। इस घर के अन्दर चार हाथ चौड़ी और पुरुष की ऊँचाई के बराबर मिट्टी की एक अंगोठी (चिमनी) बनाये [आजकल जैसी चिमनी दिवारों में बनती हैं]। इस अंगोठी में चारों ओर छेद रखने चाहिये। इस अंगीठी में बेर, खैर आदि की लकड़ियां जलाकर इसको गरम करना चाहिये। जब लकड़ियां जल जायें, धुवां निकलना बन्द हो जाये, अंगारे रह जायें, तब इस घर का उपयोग करे। आजकल की दृष्टि से चिमनी या अंगीठी वाला मकान जेन्ताक है।

भूमिगृह का अर्थ—तहखाना–जमीन के अन्दर बने गृह से है। ऐसे घर गरमियों में ठण्ढे और सरदियों में गरम रहते हैं।

गर्भगृह—से अभिप्राय दो प्रकार के घरों से हो सकता है, एक घर जैसे कि पहाड़ों में बनते हैं, जिनमें आगे-सामने दुकान रहती है और पीछे अन्दर के घर में गृहस्थी रहती है। दूसरे प्रकार के घर वे हैं, एक बड़ा घर बनाकर उसके अन्दर दूसरा घर बनायें। परन्तु इसमें प्रथम बने घर का उपयोग नहीं रहता। परन्तु पहिले प्रकार के घरों में सबका उपयोग होता है। पहाड़ों में आज भी तीन खन वाले—एक के पीछे दूसरा, दूसरे के पीछे तीसरा घर बनता है। इनमें दूसरा और तीसरा गर्भ गृह है। ये गर्भगृह गरम रहते हैं।

शीतऋतु में बरतने योग्य जिन वस्त्रों का उल्लेख है, वे–प्रावार, अजिन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कौषेय, प्रवेणी, और कुथक हैं। इनमें—**प्रावार** [भारी कम्बल—थूलमा आदि], अजिन [व्याघ्रचर्म या मृगचर्म से बने], कौषेय [रेशम के कीड़े से बने वस्त्र]; प्रवेणी [बालों से बने वस्त्र], कुथक [कूटकर विठाई ऊन से बने वस्त्र-चुट्टू-नमदा] इनको ओढ़ने और विछाने में बरते । रुई के उपयोग का उल्लेख इस ऋतु में नहीं है ।

शिशिर ऋतु में ठण्ड अधिक रहती है, इसलिये गर्भगृहों का विशेष रूप में व्यवहार करना चाहिए ।

वसन्त ऋतु—साधारण ऋतु है; इसमें न तो अधिक गरमी होती है और शीत भी अधिक नहीं रहता इसलिये इस ऋतु में जंगलों में घूमना व्यायाम, उद्वर्त्तन करना चाहिये । इस ऋतु में निर्दोष मद्य (सीधु मद्य-इक्षु के रस से बना), और माध्वीक (मधु या द्राक्षा से बना मद्य) पीना चाहिये ।

ग्रीष्म ऋतु में—सत्तु और पानक शर्बत पीने का विधान है । सत्तू-जौ का बनता है । सत्तू को घी में भूनकर शीतल पानी में भिगोकर न तो बहुत पतला और न बहुत गाढ़ा बना खाद्य मन्थ कहाता है-इसमें घी और चीनी भी मिलते हैं । इस ऋतु में मद्य पीने का निषेध है; मद्य यदि पीना भी हो तो बहुत पानी मिलाकर-पतला बना कर पीना चाहिये ।

शीत गृह—ग्रीष्म ऋतु में रहने के लिये दिन के समय शीत गृहों में रहना चाहिए–ये शीत गृह-भूमि गृह-तहखाने या कृत्रिम रूप में पानी या खस आदि से ठण्डे बनाये घर होते थे । चरक में **धारा गृह** और भूमि गृह शीतलता के लिये बताये हैं (चि. अ. ५।१०६) । इन धारा गृहों का उपयोग इस ऋतु में करना चाहिये–जिन घरों में फव्वार गिरती हो–वे घर बरते । रात्रि में मकान की छत पर (हर्म्यमस्त के) रहना चाहिये । हवा के लिये चन्दन के जल से शीतल पंखों का उपयोग होता था (आयुर्वेद की दृष्टि से ताड़ और खजूर के पत्तों के बने पंखों की हवा ठण्डी होती है, और बांस के पंखे की वायु गरम मानी है) ।

वर्षा ऋतु में—अग्नि बल के क्षीण होने से जाठराग्नि निर्बल होती है; इसलिये इस ऋतु में पानी में घुला सत्तु, दिन में सोना, ओस, नदी का पानी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यायाम और धूप से बचना चाहिए। सत्तू का उपयोग-शीत, ग्रीष्म और वर्षा तीनों ऋतुओं में मुख्यतः होता है। शीत ऋतु में-सत्तू और घी को समान मात्रा में मिलाकर (सम धृत सक्तवाभ्यासो वृष्योदावर्त्तहराणां श्रेष्ठतमः—चरक)। ग्रीष्म ऋतु में-पानी के अन्दर घोलकर (मन्थ के रूप में); वर्षा काल में शुष्क रूप में नमक के साथ बरता जाता था। इस ऋतु में मधु का उपयोग विशेषतः करना चाहिये।

वस्त्रों के विषय में-हल्का, श्वेत वस्त्र (रूई का बना) पहिनना चाहिये।

शरद् ऋतु में-साधारण विधि बरतनी चाहिये—

हंसोदक—वैदिक साहित्य में हंस शब्द सूर्य के लिये आता है; शरद् काल में सूर्य की निर्मलता और प्रखरता भी रहती है। इसी सूर्य के कारण पानी भी निर्मल हो जाता है; इसीसे इस ऋतु के जल को **हंसोदक**—हंस के समान निर्मल या हंस से [सूर्य से] निर्मल किया जल कहा है। इसका लक्षण—"जो जल दिन में सूर्य की किरणों से गरम हो, रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से निर्मल और शीतल हो जाये; समय के कारण पक गया हो, निर्दोष हो और अगस्त्य नक्षत्र के उत्पन्न होने से साफ़ हो गया हो, वह हंसोदक है। यह पानी पीने-स्नान आदि सब कार्यों में प्रशस्त है[1]।

वेष भूषा

चरक के समय में शिर पर पगड़ी (मौली) बांधी जाती थी, गले में माला तथा रत्न और आभूषण धारण किये जाते थे, अंगुली में रत्न धारण करने की प्रथा थी (सू. अ. ८।२०); कटि में धोती बांधते थे (शाटी), पैर में जूता, सिर पर छत्र और हाथ में दण्ड धारण किया जाता था। शीत रूप में गरम वस्त्र जिनसे कि अंग ढँपे रहते थे-ऐसे वस्त्र पहिने जाते थे (शीतेषु संवृत्तं सेव्यं

---

१ रघुवंश में भी अगस्त नक्षत्र के उदय से पानी की निर्मलता का उल्लेख है; यथा—

भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार।
तस्याविलाम्भः परिशुद्धिहेतो भौमो मुनेः स्थान परिग्रहोऽयम्॥ १३।३६

रामायण में भी "उदित अगस्तपन्थजलशोषा"—रामायण तुलसीदास कृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यानं शयनमासनम्)। ग्रीष्म ऋतु में हल्के, श्वेत-ढीले वस्त्र पहिने जाते थे (लघु शुद्धाम्बरः)। बालों को बढ़ाने का, कंघी करने का रिवाज़ था। वेश भद्रजनोचित रहता था (साधु वेशः, प्रसाधित केशः)।

उपसंहार—चरक संहिता के समय मनुष्य का जीवन एक भद्रश्रेणी के व्यक्ति का था। उसके पास जीवन के लिए उपयोगी सब साधन थे। धार्मिक वृत्ति से जीवन व्यतीत किया जाता था। देवता–गौ–ब्राह्मण–सिद्ध पुरुष और आचार्य को मान की दृष्टि से देखते थे। जप-होम करने की प्रथा थी, बिना होम किए भोजन नहीं करते थे। दोनों समय सन्ध्या–पूजा का रिवाज था। मद्य और द्यूत तथा वेश्या से बचा जाता था। मांस का विशेष निषेध गृहस्थी के लिये नहीं था। ब्रह्मचारी के लिये मांस का सेवन निषिद्ध था [अमांसादेन भवितव्यम्—वि. अ. ८।१३]।

आचार्य के पास जब शिष्य विद्याध्ययन के लिये जाता था, उस समय उसको होम करना होता था—जो कि सम्पूर्णतः वैदिक प्रक्रिया है; यथा—आचार्य शिष्य को आज्ञा दे कि—

सूर्य के उत्तरायण होने पर शुक्लपक्ष में प्रशस्त दिन में, तिष्य (पुष्य), हस्त, श्रवण–अश्विनी, इनमें से किसी नक्षत्र के साथ कल्याणकारी चन्द्रमा का योग होने पर, कल्याणकारी करण में और अनुकूल मुहुर्त्त में स्नान करके, उपवास रखकर, शिरको मुंडवाकर, कषाय–गेरुवा वस्त्र पहिन कर, समिधा-अग्नि-घी-चन्दन आदि लेपन द्रव्य, जलका पात्र, सुगन्ध लेकर, माला, दाम दीप-स्वर्ण–चांदी–मणि–मोती–प्रवाल–यज्ञकुण्ड के चारो ओर खड़ी किये जाने वाली परिधियां, कुशा, लाजा, सरसों, अक्षत, श्वेत पुष्प खुले एवं गूंथे, पवित्र भक्ष्यों को, घिसी सुगन्ध लेकर उपस्थित होना चाहिये। शिष्य भी ऐसा करे।

इसके पीछे चार हाथ चकोर वेदी को गोबर से लेप करके उसपर कुशा बिछाकर चारों दिशाओं में चार परिधियां खड़ी करके ऊपर कही हुई वस्तुओं से इसको सजाकर इस वेदी पर ढाक, हिंगोट, गूलर, महुवा आदि की समिधा से अग्नि को जलाकर पूर्व की ओर मुख करके मधु और घी से तीन-तीन बार अग्नि में आहुति दे, आशीर्वाद वाले मंत्रों के साथ, ब्राह्मण–अग्नि–धन्वन्तरि, प्रजापति,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्विनौ, इन्द्र, ऋषि और सूत्रकारों के नाम लेकर स्वाहा करके आहुति दे। शिष्य भी गुरु के पीछे होम करे। होम करके अग्नि की प्रदक्षिणा करे। परिक्रमा करके ब्राह्मणों के लिये स्वस्ति कहे, वैद्यों की पूजा करे।

चरक संहिता के उपदेश काल में ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और सन्यास चारों आश्रम की परिपाटी थी। गृहस्थ लोगों का जीवन ऐश्वर्य सम्पन्न था, दीन या दरिद्र जीवन अत्रिपुत्र को अभीष्ट नहीं था। वानप्रस्थी और सन्यासी परोपकार और मोक्ष के लिए यत्न करते थे। स्त्रियों के प्रति आदर और सन्मान था, परन्तु उनको अधिकार नहीं दिये जाते थे। जीविका के लिये कई वृत्तियां देश में प्रचलित थी। नगर की देख रेख के रूप में नगरी (म्युनिस्पैलिटी का अध्यक्ष) रहता था, उसके अधीन नगर की देख-रेख थी (सू. अ. ५।१०३)। एक प्रकार से उस समय का लोगों का जीवन सुखी और समृद्ध था तथा धर्म का महत्त्व था—यथा—

खान पान की अग्निहोत्र से तुलना की है-जिस प्रकार कि वाह्य होमाग्नि में समिधाओं से हवन किया जाता है उसी प्रकार अन्तराग्नि में हितकारी अन्नपान से मात्रा और काल का विचार करते हुये हवन किया जाता है। जो आहिताग्नि प्रतिदिन पथ्य वस्तुवों से अन्तराग्नि में हवन करता है; प्रतिदिन ब्रह्म का जप करता है, दान देता है, सात्म्य को जो जानता है; कल्याण मार्ग में लगे हुये उस पुरुष को भावी-जन्मान्तर रोगों को छोड़कर दूसरे रोग नहीं होते [सू. अ. २७]।

आचार रसायन

सत्यवादी, क्रोध न करने वाले, मद्य और मैथुन से पृथक्; अहिंसक, शान्त, प्रियवादी, जप और शौच में संलग्न, धीर, दान करने वाले, तपस्वि, देवता-गाय-ब्राह्मण-आचार्य-गुरु-वृद्धों की पूजा में रत, अक्रूर, करुणचित्त; जागने और सोने में समान [युक्त स्वप्नाववोधस्य योगो भवति दुःखहा-गीता]; नित्य घी और दूध का सेवन करने वाले; देश-काल-प्रमाण को जानने वाले; युक्ति को समझने वाले, अहंकार रहित; वृद्धों की उपासना करने वाले; धर्मशास्त्र के अनुकूल बरतने वाले, जितात्मा व्यक्ति को नित्य रसायन सेवी समझना चाहिये [चि. अ. १।४-३०-३४]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मद्य-मांस सेवन

मद्य शब्द चरक में मुख्यतः तीक्ष्ण मद्यों के लिये–जिनसे मनुष्य में मादकता आती है, उनके लिये ही आया है, ऐसी मेरी मान्यता है। आचाररसायन में, उन्माद चिकित्सा में तथा अन्य जिन स्थानों पर मद्य का निषेध मिलता है, वहाँ पर इसी प्रकार के तीक्ष्ण मद्यों का ही निषेध है। सुरा-आसव-माध्वीक, मैरेय, सीधु, मधु आदि मद्य जो हैं, वे मादक नहीं, इनको मद्य इसीलिये कहा जाता है कि ये सन्धान प्रक्रिया से विदाह करके (Fermantation) तैय्यार किये जाते हैं। इसीसे ऋतुचर्या में गृहस्थी के लिये इनका पीना विधेय बताया है, यथा—हेमन्तुऋतु में–आनुप तथा जलचारी पशु पक्षियों के मांस को तथा मेद बहुल मांस को खाये; बिल में रहने वाले; प्रसह जाति के पशु-पक्षियों का मांस खाकर मदिरा, सीधु और मधु को पीछे से पिये [सू. अ. ६।१२]। बसन्तऋतु में—निर्दोष सीधु को और माध्वीक मद्य को पिये। ग्रीष्म ऋतु में—मद्य पीना नहीं चाहिए; यदि पीना ही हो तो मद्य में बहुत पानी मिला लेना चाहिये; या थोड़ी मात्रा में पिये [सू. अ. ६।२६]।

जिस प्रकार से हेमन्त ऋतुचर्या में मांस और मद्य का सेवन बताया है, उसी प्रकार यक्ष्मारोग चिकित्सा में मांस और मद्य का सेवन रोग दृष्टि से आवश्यक बताया है; यथा–मांस को खाते हुए और माध्वीक मद्य को पीते हुए समाहित और उदारचित्त वाले मनुष्य के शरीर में शोष रोग नहीं रहता [चि. अ. ८।१६३]।

मांस और मद्य का आपस में सन्बन्ध है; विना मद्य के मांस का पूर्णतः ठीक पाचन नहीं होता[1]। इसलिये मद्य और मांस साथ-साथ चलते हैं मांस और मद्य का निषेध चरक में एक या दो स्थान पर ही मिलता है, यथा उन्माद में [निवृत्तामिषमद्यो यो–चि. अ. ६।१०३]। मद्य का निषेध आचार रसायन में है [चि. अ. १।४।३०]; मांस का निषेध ब्रह्मचारी-शिष्य के लिये है [वि. अ. ८।१३]। गृहस्थी के लिए मद्य और मांस का निषेध सामान्यतः नहीं है।

१ आनूपं जागलं मांसं विधिनाप्युपकल्पितम्।
मद्यं सहायमप्राप्य सम्यक् परिणमेत् कथम्॥ संग्रह. चि. ९.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीक्ष्ण मद्य के भी पीने का विधान है, इस मद्य को पीने के लिये सावधानी बरतनी पड़ती थी, क्योंकि इस मद्य से मादकता आती थी, मनुष्य अपनी संज्ञा को खो बैठता है, इसीलिये इसको पीने के लिये विधि-तरकीब बताई गई है; मद्य इतना पीना चाहिये कि मनुष्य अपने होश-हवास दुरुस्त रख सके। यह मद्य आनन्द के लिये पिया जाता था।

मद्य के गुण विष के साथ मिलते हैं; अन्तर इतना ही है कि मद्य में ये दस गुण बहुत कम तीक्ष्ण रूप से हैं, इसलिए मद्य मारक नहीं होता, विष में गुण तीक्ष्ण रूप से रहने के कारण विष मारक है। मद्य के ये दस गुण [लघु.-उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी, आशुगामी; रुक्ष, विकाशी और विशद हैं] ओज और गाय के दूध के दस गुणों से [गुरु-शीत, मृदु-श्लक्ष्ण, बहल, मधुर, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल और स्निग्ध] सर्वथा विपरीत हैं। इसलिये मद्य शरीर को हानि करता है। इसीलिये मदात्यय रोग की चिकित्सा में दूध-अमृत के समान है; जिस प्रकार कि गरमी से जले वृक्ष के लिये वर्षा का पानी होता है [चि. अ. २४।१६७]। इसलिये मद्य का अधिक पीना या देर तक पीना हानि कारक है।

मद्य पान की तीन अवस्थायें हैं—प्रथम, मध्यम और अन्तिम। प्रथम अवस्था में मद्य आनन्द देता है, वाद्य, गीत, कथा, हँसी को प्रवृत्त करता है; बुद्धि और स्मृति ठीक बनी रहती हैं। मध्यम मद में मनुष्य की स्मृति कभी ठीक रहती है और कभी लुप्त हो जाती है। कभी बोलता है और कभी चुप हो जाता है, युक्त और अयुक्त प्रलाप करता है, हाथ-पांव चलाता है। अन्तिम मद में मनुष्य टूटी हुई लकड़ी के समान गिर पड़ता है, मन के मद-मोह से आवृत्त होने के कारण जीता हुआ भी मनुष्य मृत के समान है। रमणीय विषयों को, मित्रों को भी वह नहीं पहिचानता; जिस आनन्द के लिए मद्य पिया जाता है, उस आनन्द को भी वह नहीं पहिचानता। कौन भला आदमी इस अवस्था को प्राप्त होना पसन्द करेगा! मद्य से स्मृति विभ्रंश होता है; यही एक बड़ा भारी दोष है। यूं मद्य स्वभाव से अन्न की भांति है; अयुक्ति पूर्वक सेवन करने से रोग उत्पन्न करता है; युक्ति पूर्वक सेवन करने पर अमृत के समान है। अन्न भी प्राणियों के प्राणों का धारक है; वह भी अयुक्ति पूर्वक सेवन करने से मारक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। विष प्राण नाशक है, परन्तु युक्ति पूर्वक सेवन करने से अमृत-रसायन है। इसलिए मद्य को यदि युक्ति से पिया जाए तो इससे प्रसन्नता; बल, भय, पुष्टि, आरोग्य पौरुष मिलता है [चि. अ. २४।६१]।

मादक-मद्य का उपयोग मुख्यतः आनन्द के लिए होता था, इसलिये इसका विधान मुख्य रूप से राजा या सम्पन्न व्यक्तियों के लिए ही है। सामान्य गृहस्थ के लिए मादक मद्य का सेवन एक प्रकार से निषेध ही है, उनके लिए सीधु, आसव, मधु, माध्वीक, मैरेय आदि मद्यों का विधान है [द्राक्षारिष्ट-द्राक्षासव-जिसमें आठ से बारह प्रतिशतक अलकोहल की मात्रा होती है, दो व्यक्तियों को सोलह औंस की मात्रा में एक साथ पिलाया-उनमें किसी प्रकार की मादकता या स्मृतिभ्रंश नहीं हुआ था; केवल जलन ही अनुभव हुई थी]। इन मद्यों में मादकता नहीं है। इसलिए मांस के सेवन के साथ मद्य का उल्लेख चरक संहिता में बराबर मिलता है। ब्रह्मचारी के लिए मांस और मद्य दोनों का ही निषेध था। मांस और मद्य के साथ जुड़ने वाली वस्तु लहसुन है [संग्रह चि. अ. ६], विना मद्य और मांस के लहसुन गुणकारी नहीं होता। संग्रह और नावनीतक में लशुन की प्रंशसा और लशुन कल्प दिए हैं। चरक में इसके सेवन का उल्लेख नहीं; इसका कारण संभवतः यही है कि इसे अपवित्र मानते हैं; औषध में उपयोग है।

गाय

चरक संहिता में स्थान-स्थान पर मंगल कार्यों में गाय का नाम देवता-ब्राह्मणों के साथा आता है। गाय के प्रति दण्डा उठाने का निषेध है। गाय को सदा सम्मान की दृष्टि से देखने का उल्लेख है। जातिसूत्रीय अध्याय में [शा. अ. ८।] गाय के दर्शन का उल्लेख है। यहां पर श्वेत रंग की गाय को देखने का, उसके दूध को पीने का विधान है, क्योंकि गर्भस्थ शिशु का रंग गौर वर्ण चाहिये, इसीलिए श्वेत वर्ण की गाय को पसन्द किया है।

वाजीकरण अध्याय में लाल रंग की (रोहिणी) या काले रंग की (कृष्ण) गाय को पसन्द किया है; इस गाय के सींग खड़े होने चाहिए (ऊर्ध्वश्रृंगी), गाय मरखनी या डरावनी नहीं होनी चाहिए। इसके चारों स्तन होने चाहिएँ, चारों स्तनों से दूध आए। इसका बछड़ा भी इसी के रंग का होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बछड़ा जीवित होना चाहिए। इस गाय का व्यांत पहिला होना चाहिए [गृष्टिः]। गाय अच्छी प्रकार पुष्ट होनी चाहिए। इस गाय को ऊख के पत्ते, अर्जुन के पत्ते या उड़दों के पत्ते खिलाए। इस गाय का घट्ट दूध गरम करके या विना गरम किए–शर्करा–मधु और घृत से मिलाकर पीना उत्तम वृष्य है। गाय के दूध को सब प्रकार दूध में श्रेष्ठ कहा है [सू. अ. २५।३८]।

गाय के विषय में जो भी गुण होने चाहियें—वे सब इस एक स्थान पर एकत्रित कर दिए हैं। काले रंग की गाय का दूध प्रशस्त माना जाता है, इसमें दूध की मात्रा भी अधिक होती है। खड़े सींगों वाली गाय मरखनी नहीं होनी चाहिए। पहली वार व्याई गाय में दूध अधिक होता है और वह दूध गाढ़ा रहता है। चारों स्तनों से दूध झरे—इससे गाय की निरोगी होने का पता चलता है। गाय का दूध–ओज के समान गुणों वाला होने से ओज को बढ़ाता है। गाय का मांस सब पशुओं के मांसों में निन्दित बताया है [सू. अ. २५।३९[1]]। अतिसार रोग की उत्पत्ति का इतिहास देते हुए गायों के वध को ही इस रोग की उत्पत्ति में कारण बताया है [चि. अ. १९।४]। इन सब बातों से स्पष्ट है कि उस समय गाय का सन्मान था।[2]

---

१ उत्तर रामचरित में गाय के मांस का उल्लेख है।

२ गाय के सम्बन्ध में अधिक जानकारी के लिए मेरी लिखी 'हमारे भोजन की समस्या' पुस्तक देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७

चिकित्सक का धर्म

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस पुरुषार्थ चतुष्टय में जब रोग विघ्न रूप से उत्पन्न हो गये, तथा लोगों को दुःख से दुःखी देखकर–अनाथ होने पर भी अनाथों की भांति पीड़ा अनुभव करते हुए प्रजाजनों को देखकर ऋषि लोग हिमालय की तलैटी में एकत्रित हुए थे–वहाँ उन्होंने ज्ञान चक्षुओं से इन्द्र को इससे मुक्त करने वाला समझा। भरद्वाज मुनि को इन्द्र के पास उपाय सीखने भेजा। भरद्वाज मुनि जो उपाय सीख कर आये वही आयुर्वेद है। (चरक सू. अ. १।१-२५)।

सुश्रुत संहिता में भी आयुर्वेद के पृथ्वी पर अवतरण होने का उद्देश्य लोक कल्याण ही बताया है (सू. अ. १।५)। इन्द्र ने भी ऋषियों को बताया कि मुझे अश्विनौ ने यह आयुर्वेद अपने और प्रजा के कल्याण के लिये दिया था (आत्मनः प्रजानां चानुग्रहार्थं आयुर्वेदमश्विनौ मह्यं प्रायच्छताम्–चि. अ. १।४।४) सुश्रुत में भी इसी प्रकार कहा है कि मैं भी इस आयुर्वेद को प्रजाहित की कामना से दे रहा हूँ (मया तु प्रदेयमर्थिभ्यः प्रजाहित हेतोः–सू. अ. १।२०)।

आयुर्वेद शास्त्र के दो ही उद्देश्य हैं, रोगों से ग्रस्त व्यक्तियों को रोग से मुक्त करना और स्वास्थ्य की रक्षा करना (सु–सू. अ. १।१४; चरक–सू. अ. ३०।२६)।

इससे स्पष्ट है कि आयुवद का उद्देश्य जन कल्याण, जन का हित करना ही है। इसलिये चरक संहिता में वैद्य–चिकित्सक के लिये यही शिक्षा है कि चिकित्सा व्यवसाय को सौदागिरी का–बनिये की दुकान न बनाये। जो व्यक्ति चिकित्सा को अपनी रोटी का साधन-सौदागिरी के रूप में बनाते हैं–उनके लिये अत्रिपुत्र का कहना है कि–शरण में आये, रोग से पीड़ित व्यक्ति से-विद्वानों का वेश धारण करने वाले वैद्य को किसी प्रकार का अन्न, पान या वित्त नहीं लेना चाहिए (सू अ. १।१३३)। गुरु शिष्य को ब्राह्मणों और वैद्यों के सामने उपदेश देता है कि तुझे सदा रोगियों को निरोग करने में प्रयत्न करना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिये। जीविका के साधन-वृत्ति के लिए उनसे झगड़ा नहीं करना चाहिये (वि. अ. ८)।[1]

दो प्रकार के चिकित्सक (वैद्य)

चरक में दो प्रकार के वैद्य बताये हैं, एक प्राणाभिसर और दूसरे रोगाभिसर। इनके ही तीन भेद किये हैं, एक-छद्मचर; २-सिद्धसाधित और ३-वैद्य गुणों से युक्त जीविताभिसर। इनमें जो व्यक्ति वैद्यों के पात्र, औषध-पुस्त (मिट्टी के बने मौड़ल या चित्र-शरीर रचना या रोग सम्बन्धि) को उड़ती निगाह से देख कर वैद्य बन कर बैठते हैं; या इन वस्तुओं को एकत्रित करके वैद्यक का धंधा करते हैं वे **छद्म चर** हैं। जो व्यक्ति श्री-यश और ज्ञान से प्रसिद्ध वैद्यों के नाम से-अपने आप उनके समान न होने पर भी उनके नाम से वैद्य व्यवसाय करते हैं-वे **सिद्ध साधित** हैं; मैं अमुक गुरु का ही चेला हूँ; वे तो अब नहीं रहे-उनके स्थान पर मैं ही हूँ-इत्यादि बातें करते हैं-वे सिद्ध साधित हैं। जो व्यक्ति प्रयोग-ज्ञान-विज्ञान-सिद्धि में सफलता प्राप्त कर चुके तथा लोगों को आरोग्य रूपी सुखी देते हैं; वे **जीविताभिसर**—सच्चे वैद्य गुणों से युक्त होते हैं; इनमें ही वास्तव में वैद्य (विद् ज्ञाने-ज्ञान को जानना) शब्द है (सू. अ. ११।५०-५३)।

न जानी हुई औषध विष, शस्त्र और बिजली के समान है; जानी हुई औषध अमृत के समान है। मूर्ख वैद्य से चिकित्सा करने की अपेक्षा—

---

१ चरक संहिता और काश्यप सहिता में चारों वर्णों को आयुर्वेद पढ़ने का उद्देश्य बताया है, उसमें वैश्य के लिए वृत्ति-जीविका के लिए आयुर्वेद का अध्ययन करने को कहा है। इसमें भी दया का भाव रखकर-प्रजाहित की कामना से- सौदागिरी न करके व्यवसाय करना चाहिये। इसीसे कहा है-"या पुनरीश्वराणां वसुमतां च सकाशात्सुखोपहारनिमित्ता भवत्यर्थावाप्तिरारक्षणं च, या च स्वपरिगृहीतानां प्राणिनामातुर्यादारक्षा, सोऽस्यार्थः॥ चरक. सू. अ. ३०।२९। जैसे बौद्धकालीन जीवक को अर्थ प्राप्ति हुई थी—देखिये-महावग्ग।

कालिदास ने भी विद्यादान के विषय में ऐसा ही एक श्लोक कहा है—

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरोस्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम।
यस्यागमः केवल जीवकायै तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊँची जगह से शिर के बल गिरकर प्राण दे देना उत्तम है, आकाश की बिजली से सम्पूर्णतः जल जाना अच्छा है। दुःखी, शरण में आये; श्रद्धा रखने वाले रोगी को जो अहंकारी वैद्य बिना समझी औषध देता है; उस पापी, धर्म छोड़े हुए, मृत्यु रूप-मूर्ख से बातचीत करने पर भी मनुष्य नरक का भागी बनता है। सांप का विष खाना या ताम्र को उबालकर इसका विष पीना या आग में लाल किये लोहे के गोले खाकर प्राण दे देना कहीं अच्छा है इसकी अपेक्षा शरण में आये रोगी से वित्त या खान पान लेना।

वैद्य को चाहिये कि वह अपने गुणों को एकत्रित करने में अतिशय प्रयत्नशील रहे, जिससे कि वह मनुष्यों के लिए प्राण दाता बने।

वैद्य के गुण—शास्त्र का भली प्रकार ज्ञान, बहुत बार प्रत्यक्ष रूप में चिकित्सा कर्म को देखना, चतुरता-प्रतिपत्ति (सूझ), पवित्रता (सत्यता-ईमानदारी) ये चार गुण वैद्य में होने चाहियें। जिस वैद्य में विद्या, तर्क बुद्धि, विज्ञान, स्मृति, तत्परता, क्रिया रहती है, उसके लिए साध्यरोग को अच्छा करना असम्भव नहीं। रोग के कारण; लक्षण-रोग की शान्ति तथा पुनः रोग का न होना, यह चार प्रकार का ज्ञान जिसमें रहता है, वह राजा का वैद्य बनने योग्य है [सू. अ. ९।१९-२१]। वैद्य की वृत्ति चार प्रकार की है–सब मनुष्यों में मैत्री, रोगी-दुःखी व्यक्तियों में दया, निरोगी-स्वस्थ व्यक्तियों में प्रीति और मृत पुरुषों में उपेक्षा रखनी चाहिये [सू. ९।२६][१]।

चिकित्सक का जनता के प्रति कर्त्तव्य—वैद्य को चाहिए कि वह

---

[१] योगदर्शन का भी सूत्र इसी अर्थ में है, यथा–मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् (समाधि. पाद, ३३ सूत्र) वृद्धवाग्भट में भी—

सर्वत्रमैत्री करुणाऽऽतुरेषु निरामदेहेषु नृषु प्रमोदः।
मनस्युपेक्षा प्रकृतिं व्रजत्सु वैद्यस्य सद्वृत्तमलं करोति॥ संग्रह उत्तर ५० अ.

नलचम्पू में भी इसका उल्लेख है; यथा—

मृगेषु मैत्रीमुदितात्मदृष्टौ कृपामुहुः प्राणिषु दुःखितेषु।
येषां न ते कस्य भवन्ति वन्द्याः कौशेय कौपीनभृता मुनीन्द्राः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगियों को अपने पुत्र के समान देखे, यत्नपूर्वक रोगों से–दुःखों से उनकी रक्षा करे। महर्षियों ने आयुर्वेद का प्रकाशन धर्म के लिए ही किया है; अर्थ की कामना से या अन्य किसी इच्छा से नहीं किया। इसलिये जो व्यक्ति अर्थ और कामना छोड़कर (निःस्वार्थ रूप से) केवल भूत दया रूप में चिकित्सा करता है; वह सबसे अधिक उत्तम है–उसकी उपमा नहीं है। जो व्यक्ति रोटी के लिये चिकित्सा को बेचते हैं–सौदागिरी करते हैं, वे स्वर्ण की राशि को छोड़ कर धूल की ढेरी प्राप्त करते हैं। भयानक रोगों से खींचे जाते हुए, यमपुरी को जाते हुए लोगो को जो वैद्य यम के पाशों को काटकर जीवन दान करता है उसके समान धर्म-अर्थ का देने वाला दूसरा इस संसार में नहीं है। क्योंकि जीवन दान से बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं। भूतदया को सबसे बड़ा धर्म मानकर जो व्यक्ति चिकित्सा में उतरता है, वह सफल होकर अतिशय सुख को प्राप्त करता है।

जनता का चिकित्सक के प्रति कर्त्तव्य—शीलवान्-बुद्धिमान, द्विजाति, शास्त्र में पारंगत वैद्य की पूजा गुरु की भांति करनी चाहिए, क्योंकि वह प्राणाचार्य है। विद्या समाप्ति पर मनुष्य की दूसरी जाति कही जाती है [वह द्विजाति बनता है)। वैद्य पूर्वजन्म से नहीं होता, पिता के वैद्य होने से पुत्र भी वैद्य नहीं होता। विद्या समाप्ति पर ही मनुष्य में ब्रह्मत्व, ऋषित्व या सत्त्व गुण आता है। इसलिये वैद्य को द्विज कहा है। वैद्य के साथ कभी झगड़ा न करे, न उसकी निन्दा करे; उसका कभी अहित न करे। जो व्यक्ति वैद्य से चिकित्सा करवाके या न करवाके भी उसका उसका उपकार नहीं करता उसकी मुक्ति नहीं–कल्याण नहीं है [चि. अ. १।५१-५५]।

किनकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए—जो लोग राजा से या महाजनों से (प्रतिष्ठित व्यक्तियों से) द्वेष करते हों या जिन लोगों से राजा या महाजन द्वेष करते हैं, उनकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिए। जो व्यक्ति अतिशय निर्धन, अति दुष्ट, अतिशय दुःख का जीवन व्यतीत करते हों; जिनका स्वभाव या आचार बहुत बुरा हो; जिनका व्यवहार-साधन बुरे हों; जो कि वैद्य की हुई निन्दा का प्रतिकार नहीं करते; या जो मरणासन्न हों; तथा जिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों के संरक्षक या पति पास में न हों उनकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये (वि. अ. ८।१३)।

क्रोधी; साहसी (शक्ति से अधिक कार्य करने वाला); डरपोक; किए हुए उपकार को न मानने वाला; अन्य किसी काम में फँसा (जिसको चिकित्सा करवाने का समय नहीं); सज्जन-राजा और वैद्य जिससे द्वेष रखते हैं, या जो सज्जन-राजा और वैद्य से द्वेष रखता हो; शोक से पीड़ित; अपनी मरजी से चलने वाला; मरणासन्न; श्रद्धा हीन; सब जगह वहम रखने वाला; वैद्य की आज्ञा न मानने वाला-इनकी चिकित्सा न करे। इनकी चिकित्सा करने पर वैद्य को दोष (निन्दा) ही मिलता है (सि. अ. २।३।६)।

वैद्यक-चिकित्सा व्यवसाय एक पवित्र धंधा था। इस धंधे में दूसरे धंधे की भांति छद्मचर वैद्य भी आ गये थे—यह आज की नहीं बहुत प्राचीन बात है। शुक्र नीति में आदेश है कि राजा की आज्ञा से ही वैद्यक-चिकित्सा करनी चाहिये[1]। चरक में भी यही कहा कि छद्म वेशी या दुष्ट वैद्य जो चिकित्सा करते हैं; वह राजाओं का ही प्रमाद है (राज्ञां प्रमादात् चरन्ति)। चिकित्सा कर्म के लिये राजा की सनद या आज्ञा लेनी चाहिये, इसका उल्लेख सुश्रुत में भी है (राजानुज्ञातेन विशिखाऽनुप्रवेष्टव्यः—सूत्र. अ. १०।३)

वैद्य दो प्रकार के है; एक-रोगों को निकालने वाले और प्राणों को प्रविष्ट करने वाले; दूसरे प्राणों को निकालने वाले और रोगों को शरीर में प्रविष्ट करने वाले। इनमें—

प्राणभिसर वैद्य—जो वैद्य कुलीन, भली प्रकार सम्पूर्ण रूप में शास्त्र को पढ़े हुए; जिन्होंने चिकित्सा कार्य को अच्छी प्रकार देखा है; चतुर; मन-वचन-कर्म से पवित्र (सत्यवादी); कार्य करने में चतुर; संयमी (जितात्मा); सब साधनों से युक्त, सब इन्द्रियों से सम्पन्न, रोगी की प्रकृति को समझने वाले; समयानुकूल सूझ वाले होते हैं, वे प्राणाभिसर है, तथा ऐसे वैद्य रोगों को निकालते हैं (सू. अ. २९-६)।

१ राजाज्ञप्त्या बिना नैव जनैः कार्यं चिकित्सितम् ॥ शु. १।३।४

स्नेहादिष्वनिभिज्ञोयश्छेद्यादिषु च कर्मसु।
स निहन्ति जनं लोभात् कुवैद्योनृपदोषतः ॥ सुश्रुत सूत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगाभिसर वैद्यों की पहिचान—ये वैद्य छद्म वेश से वैद्यों का रूप धारण करके, लोक के लिए कांटे–शूल बने, अधर्म की प्रतिमा के रूप में राजाओं के आलस्य के कारण विचरते हैं। इनकी मुख्य पहिचान यह है कि–ये वैद्यों के वेश में अपनी बहुत प्रशंसा करते हुए–कुछ काम मिल जाये, इसलिये घरों में घुसते फिरते हैं। किसी को बीमार सुन कर उस पर चारों ओर से गिरते हैं; दूसरे सुन सके इस प्रकार जोर से अपने वैद्य गुणों को कहते हैं। जो कोई वैद्य इस रोगी की चिकित्सा कर रहा होता है, उस वैद्य के दोषों को बार-बार कहते हैं। रोगी के मित्रों को हँसाकर, चुगली करके, सेवा करके, अपने वश में करना चाहते हैं; हमको कुछ भी चाह नहीं–निःस्वार्थता अपनी दिखाते हैं। चिकित्सा कर्म मिल जाने पर बार-बार इधर-उधर देखते हैं; चालाकी से अपने अज्ञान को छिपाना चाहते हैं। रोग को हटाने में असमर्थ होने पर रोगी को ही साधन हीन, सेवक हीन, असंयमी कह कर उसी में दोष निकालने लगते हैं। जब देखते हैं कि रोगी मरणासन्न है; तब दूसरे का अश्रय लेते हैं; अथवा नाम-धाम बदलकर दूसरे देश में चले जाते हैं। कोई मूर्ख आदमी मिल जाता है, तो मूर्ख की भांति अपनी कुशलता बताते हैं; अधीर–बेसबर होकर धीरों की भान्ति अपना धैर्य दिखाते हैं। यदि कोई पढ़ा लिखा विद्वान मिल जाता है–तो उससे डर कर ऐसे भागते हैं, जैसे कि भयानक जंगल को मुसाफिर छोड़ देते हैं। इनको जो भी कोई सूत्र का टुकड़ा याद होता है उसी को सब समय पर प्रसंग या बिना प्रसंग के बोलते रहते हैं। न तो ये किसी से पूछते हैं और न ये चाहते हैं कि कोई इनसे कुछ पूछे। प्रश्न पूछे जाने से मृत्यु की भांति डरते हैं। इनका न तो कोई आचार्य होता है; न कोई शिष्य, न कोई ब्रह्मचारी होता है, न कभी किसी से इन्होंने शास्त्रार्थ किया होता है। जिस प्रकार कि बहेलिया-चिड़िमार जंगल में पहुंचकर पक्षियों को जाल में फँसाना चाहता है, उसी प्रकार से वैद्य का वेश धारण करके ये रोगियों को अपने जाल में फँसाना चाहते हैं। शास्त्र, कर्माभ्यास, प्रत्यक्षज्ञान, मात्रा ज्ञान से ये शून्य होते हैं। ये तो केवल रोटी कमाने के लिए वैद्य बने होते हैं, वायु पीये हुए सांप समझ कर इनको छोड़ देना चाहिये (सू. अ. २९।६–१२)।

ये वैद्य सदा असत्यक्ष का आश्रय लेते हैं, पूछने पर सिर में दर्द का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहाना करते हैं, इनका स्वभाव घमण्डी होता है, सदा कठोर बोलते हैं—अपने शास्त्र में मूर्ख लोगों की यह पहिचान है सदा दूसरों की निन्दा करते रहते हैं। ये लोग बहुत एवं असम्बद्ध बोलते हैं। अपने ज्ञान को दिखाने के लिये अहंकार का आश्रय लेते हैं। इनका आधार—ज्ञान बहुत थोड़ा होता है, इन झगड़ालु व्यक्तियों को कभी सहन न करे। इनको विवाद-शास्त्रार्थ में जरूर पराजित करे। जो व्यक्ति दूसरों में दया रखते हों, जिनका शास्त्र ज्ञान अच्छा हो, जिनमें करुणा हो, जो कि असद्वाद से बचते हैं, उनके साथ व्यर्थ का विवाद न करे (सू. अ. ३०।८०–८४)।

चिकित्सा व्यवसाय में ठगाई का धंधा जिस प्रकार आज दीखता है, उसी प्रकार पहिले भी चरक संहिता के उपदेश काल में था। उस धोखे से बचने के लिये इन छद्म चर वैद्यों की पहिचान रहती थी[1]।

सावधानी—चिकित्सा व्यवसाय में कई बार रोगी के प्राणों का संशय सामने आ जाता है, इस अवस्था के लिये सुश्रुत में राजा से आज्ञा लेकर कार्य करने को कहा है। चरक में इस समय के लिये—रोगी के सगे-सम्बन्धि, जाति बन्धुओं को बुलाकर उनके सामने वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करके कि चिकित्सा करने में सन्देह है, चिकित्सा न करने में मृत्यु निश्चित है, यह समझाकर—राजा की आज्ञा लेकर चिकित्सा आरम्भ करने को कहा है (चि. अ. १३। १७७–१८३)। क्योंकि असाध्य रोगी या असाध्य रोग की चिकित्सा करने में

---

१ भिषङ् मानी—अपने को वैद्य मानने वाला व्यक्ति नियत आयु वाले कुछ रोगियों को घुणाक्षर न्याय से बचा कर सैंकड़ों का मार देता है। इसलिये—

तस्माच्छास्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रवृत्तौ कर्म दर्शने।
भिषक् चतुष्टये युक्तः प्राणाभिसर उच्यते॥ सू. अ. ९।१८

जिस प्रकार कि अन्धा आदमी हाथों से टटोल कर चलता है, मूर्ख व्यक्ति डरे हुए के समान बात करता है; और जिस प्रकार वायु के वश में हुई नाव चलती है, उसी प्रकार मूर्ख वैद्य चिकित्सा कर्म करता है। अपनी आत्मा-शरीर का मार देना उचित है परन्तु मूर्ख से चिकित्सा करवाना उत्तम नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैद्य की मान प्रतिष्ठा तो नष्ट होती है, साथ में अर्थ और विद्या की हानि होती है, इसकी निन्दा होती है (सू. अ. १०।८)।

सफलता का प्रदर्शन—चिकित्सा कर्म में जब सफलता मिले—विशेषतः खतरे पूर्ण कार्य में जब सिद्धि मिले तब उसका प्रदर्शन करने का भी विधान चरक संहिता में है यथा—

भली प्रकार विरेचन-वमन कराके रोगी में बल और वर्ण उत्पन्न करे—उसे उसके स्वाभाविक बल और वर्ण से युक्त बनाये। जब उसको बल और वर्ण पूर्व की भांति हो जायें, भली प्रकार नींद आये, खाया हुआ भोजन भली प्रकार पच जाये, तब सिर समेत स्नान कराके, शरीर पर चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों का लेप कराके, माला पहिना कर, बिना फटा या कोरा वस्त्र पहिना कर, योग्य अलंकार-भूषणों से शोभित करके, मित्रों को दिखाकर उसके जाति बन्धुओं को दिखाये—इसके पीछे उसे काम करने की आज्ञा दे (सू. अ. १५।१७)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८

उत्तम-सन्तान

प्राचीन काल से संतान का होना एक गृहस्थी पिता-माता के लिये धर्म का अंग माना गया है। बिना पुत्र के स्वर्ग नहीं मिलता यह विश्वास किया जाता था। पुत्र ही नरक से माता-पिता को बचाता है। इसीसे महाभारत में हम देखते हैं कि विचित्र वीर्य की पत्नियों में व्यास ने संतान उत्पन्न की थी। चरक में भी पुत्र की महिमा बताई है। [चि. अ. १।१।१६-२०] आयुर्वेद के आठ अंगों में गिना हुआ वाजीकरण अंग विशेषतः इसी विषय को लेकर बनाया गया है। वाजीकरण का उपयोग पुरुष को संयमी होकर करना चाहिये। धर्म, अर्थ, प्रीति और यश इसी वाजीकरण (शक्ति की उत्पत्ति) के अधीन हैं, यह वाजीकरण पुत्रोत्पत्ति का कारण है, एवं धर्म, अर्थ, प्रीति और यश ये गुण पुत्र के आश्रित हैं[1]।

संतान रहित मनुष्य की उपमा छाया रहित, एक शाखा वाले, फल रहित वृक्ष से दी जाती है, जिस प्रकार कि चित्र में बना दीप, सूखा हुआ तालाब, जिस प्रकार से अवास्तविक धातु जो कि धातु की भांति चमकती हुई निरर्थक है, उसी प्रकार संतान रहित पुरुष नाम के लिए ही पुरुष होता है, वास्तव में वह तिनकों का समूह ही है। जिसके संतान नहीं होती, उसका सम्मान नहीं होता

---

१ धर्म, अर्थ, प्रीति, यश संतान में आश्रित हैं, यथा-"ब्राह्मणस्त्रिभिः ऋणै ऋंणवान्भवति, अग्निहोत्रेण देवानां, ब्रह्मचर्येण ऋषीणां, प्रजया पितृणां, तथा ना पुत्रस्यलोकोऽस्ति।" पुत्र ही धन कमा कर माता-पिता को देता है, पुत्र के देखने से पिता में अभिमान की प्रीति होती है-यह मेरा पुत्र है, जिसने ऐसा कार्य किया। पुत्र के जन्म से बढ़ कर सुख नहीं और पुत्र के वियोग से बढ़ कर दुःख नहीं। जज्जट—

जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्वा जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारिवासी। तै.सं ६।६।१०।५

ऋणं वै जायते योऽस्ति। स जायमान एव देवेभ्यः ऋषिभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यः। शत. १।७।२।११.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वह नंगा गिना जाता है, एक आंख वाले की भांति होता है, निष्क्रिय होता है [चि. अ. १।१।१७-१८]।

जिसके बहुत संतान होती है, वह बहुत मुख, बहुत शरीर वाला, बहुत क्रिया वाला, बहुत आँखों वाला, बहुत ज्ञान वाला होता है। उसका दर्शन शुभ गिना जाता है। प्रीति, बल, सुख, वृत्ति, कुल का विस्तार, यश, लोक, सुख, तुष्टि ये सब संतान के ही होने से होते हैं, इसलिये मनुष्य संतान की चाह करे, संतान वाजीकरण क्रिया के अधीन है। वाजीकरण का उपयोग संतान प्राप्ति है।

जातिसूत्रीय

संतानोत्पत्ति विषयक कार्य के लिये चरक में "जातिसूत्रीय" अध्याय का नाम दिया है। पुत्र-संतान का जन्म सम्बन्धि अध्याय (जाति शब्देन जन्म कारणमुच्यते, तस्य सूत्रं जन्मोपायकथनम्—चक्रपाणि)। प्रीति, धर्म, अर्थ, यश आदि जो गुण पुत्र के अधीन बताये हैं, उन गुणों के लिये ही इस अध्याय में पुत्रोत्पत्ति विधि का वर्णन किया है। सन्तान हो यह एक बात और गुणवान प्रजा हो यह दूसरी बात, गुणवान प्रजा की चाह वाले, अदूषित शुक्र एवं अदूषित आर्त्तव और गर्भाशय वाली स्त्री-पुरुष के लिये विधि बताई है।

---

(२) इष्टं दत्तमधीतं वा यज्ञाश्चबहुदक्षिणाः।
सर्वतदपत्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
तपो वाऽप्यथवा यज्ञो यच्चान्यत्पावनं महत्।
तत्सर्वमपरं तात न सन्तत्यासमं मतम् ॥
संतानो हि परो धर्म एवमाह पितामहः ॥ महाभारत

(३) — पुत्रेण लोकान् जयति पौत्रेणामृतमश्नुते।
अथ पुत्रस्य पौत्रेण नाकमेवाधिरोहति ॥ महा. १।४।४०।

(४) अनन्ताः पुत्रिणः लोकाः ना पुत्रस्य लोकोऽस्तीति श्रुयते ॥

पुत्र की महिमा के लिये अधिक देखना हो तो श्री हरिदत्तजी वेदालंकार की लिखी "हिन्दूपरिवारमीमांसा" पुस्तकमें पृष्ट २१४-२१५ देखा जासकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधि—स्त्री और पुरुष दोनों को यथोक्त विधि से स्नेहन और स्वेदन देकर, वमन और विरेचन से शुद्ध बना कर शनैः शनैः पूर्व अवस्था में ले आना चाहिये। वमन-विरेचन से शुद्ध स्त्री-पुरुष को आस्थापन और अनुवासन वस्ति दे। इसके पीछे एक मास तक पुरुष को मधुर द्रव्यों से संस्कृत बनाया घी और दूध दे और स्त्री को तैल और उड़दों का उपयोग कराये।

इसके पीछे आर्त्तव आरम्भ होने पर तीन रात्रि तक ब्रह्मचारिणी रहे, भूमि पर सोये, हाथों में न टूटापात्र रख कर भोजन करे, शरीर में किसी प्रकार शुद्धि-स्नान, कंघी, उबटन, लेप आदि न करे। फिर चौथे दिन शिर समेत सम्पूर्ण रूप में स्नान कराके, श्वेत-निर्मल वस्त्र पहिनाये। पुरुष के साथ भी इसी प्रकार करे। फिर श्वेत वस्त्र धारण किए हुए उत्तम मन वाले, एक दूसरे की चाह करते हुए एक शय्या पर सोयें। स्नान के पीछे किसी भी दिन सहवास कर सकते हैं (अष्टांग संग्रह में ७ वां और आठवां दिन उत्तम माना है)[१]। स्नान के दिन से लेकर अगले युग्म दिन में पुत्र की कामना से और अयुग्म दिनों में कन्या की कामना से सहवास करें।

गर्भाधान क्रिया में माता की स्थिति—झुक कर या पार्श्व के बल लेटकर सहवास नहीं करना चाहिए, झुकने से वायु बलवान होती है, यह वायु योनि को दबाती है, पार्श्व के भार लेटने पर दक्षिण पार्श्व में श्लेष्मा गर्भाशय

आज भी ऐसा ही मानते हैं; यथा—

"Conception may follow a single coitus at any time during the manstrual ciycle even during manstruation or in the absence of manstruation, although the most favourable time for coitus to resuet in conception is the week following the cessation of manstruation, with decreasing chances during the succeeding two weeks'—The Queen Charlotte's Text book of obstetrics.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बन्द कर देती है, वाम पार्श्व के भार लेटने से पित्त, रक्त और शुक्र में विदाह करता है, इसलिये चित्त लेटकर सहवास करे। सहवास के पीछे शीतल पानी से नाभि के नीचे के अंगों को धोये[1]।

गर्भाधान के अयोग्य मानसिक स्थितियां—बहुत भोजन की हुई, भूखी, प्यासी, डरी हुई, अन्य कार्य में मनको लगाई हुई, शोक-चिन्ता में डूबी, क्रुद्ध, दूसरे पुरुष की चाह करती हुई, मैथुन में उद्दाम चाहवाली स्त्री गर्भ का धारण नहीं करती। यदि गर्भ रह जाता है, तो संतान विकृत या गुणों रहित होती है। बहुत छोटी आयुकी, अतिवृद्ध, देर से रुग्णा या अन्य किसी रोग से पीड़ित स्त्री का भी त्याग करना चाहिए। यही बातें पुरुष के साथ भी हैं। इसलिये सब दोषों से रहित स्त्री और पुरुष ही गर्भाधान करें।

जब स्त्री और पुरुष दोनों में प्रहर्ष हो जाये, मैथुन कार्य में अनुकूलता हो, इच्छित-सुगन्ध वाले अच्छा लम्बा चौड़ा–ठीक प्रकार बिछा बिस्तर बनाये, मन के अनुकूल-हितकारी भोजन को खाकर,–(पेट भरकर न खायें), दक्षिण पैर से पुरुष और वाम पैर से स्त्री पलंग पर बैठें।

फिर मंत्र बोले—ब्रह्मा-बृहस्पति, विष्णु-सोम-सूर्य, अश्विनौ, भग, मित्र और वरुण मुझको वीर-पुत्र दें। इस मंत्र को बोलकर सहवास करें।

इच्छा के अनुकूल पुत्र उत्पन्न करना—यदि माता-पिता चाहें कि उनकी संतान बड़ी, निर्मल-गौर वर्ण, सिंह के पराक्रम वाली ओजस्वी पवित्र, सत्त्व गुण से युक्त, हो, तब–ऋतु समाप्ति के दिन से ही लेकर निर्मल जौ का (एक दम साफ़ किए-श्वेत जौ का) मन्थ-सत्तू बनाकर उसमें मधु और घी मिलाकर, इसको श्वेत रंग की तथा जिसका बछड़ा भी श्वेत हो, ऐसी गाय के दूध में घोलकर-चांदी या कांसी के पात्र में रखकर प्रातः और सायंकाल सात दिन तक निरन्तर खायें। प्रातः काल शालि (हेमन्त धान्य), जौ के बने भक्ष्यों को दहि-मधु और घी के साथ या दूध में मिलाकर खाये।

खाने का–भोजन का प्रभाव संतान पर जरूर पड़ता है, इसीसे उपनिषद् में कहा है कि अन्न से रेत–बनता है, रेत से पुरुष होता है (अन्नाद् रेतः

१ विस्तार के लिए मेरी लिखी संस्कारविधि विमर्श पुस्तकमें पृष्ट ४२ देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेतसः पुरुष)। इसीसे वृहदारण्यकोपनिषद् में भी इच्छित संतान के लिये विशेष अन्न बताये हैं[1]।

सायंकाल में निर्मल विस्तर, निर्मल शय्या, निर्मल आसन और श्वेत-निर्मल खान-पान, वस्त्र-आभूषण पहिने। प्रातः और सायंकाल निरन्तर श्वेत-महान, उत्तम कुल में उत्पन्न बैल को या घोड़े को देखे, इस घोड़े या बैल के माथे पर श्वेत चन्दन लगा हो।

आयुर्वेद में पुरुष के बल की उपमा घोड़े से दी है, और अथर्ववेद में ब्रह्मचारी की तुलना बैल (अनुड्वान) से की है। [अनुड्वान ब्रह्मचर्य्येणाश्वो घासं जिगिर्षति। अथर्व ११।५।१८]। बल–पराक्रम में घोड़े और बैल को ही श्रेष्ठ माना है। बैल, घोड़ा, सिंह और हाथी–अशोक के सारनाथ वाले स्तम्भ में भी अंकित हैं, ये पशु श्रेष्ठ और पराक्रमी माने हैं; इसलिए इनको अशोक स्तम्भ में अंकित किया है। बैल और घोड़ा श्वेत भी होते हैं; हाथी श्वेत नहीं होता–कमसे कम भारतवर्ष में नहीं मिलता तथा हाथी प्रत्येक गृहस्थ के लिये या प्रत्येक स्थान पर देखा जाना सरल भी नहीं; इसलिये बल के प्रतिरूप बैल और घोड़े का ही दर्शन कहा है। अथर्व वेद में—अश्वोघासंजिगीर्षति–घोड़ा घास को खाता है–इसमें बलके लिये घोड़े का उल्लेख है।

मन के अनुकूल–सौम्य कथायें (डरावनी या भयानक नहीं) सुने, सौम्य आकृति वाले, पुरुषों का या वस्तुओं को देखे, सौम्य बचनों को ही सुने, वेश-भूषा भी सौम्य रहे, दूसरी जो भी बस्तुवें बरते वे सब श्वेत और निर्मल ही बरते। इसकी जो सहेलियाँ या साथीन हों वे सदा प्रिय और हितकारी बातें

---

१ वृहदारण्यकोपनिषद् में पुत्रेष्टि विधि दी है-यथा—

स य इच्छेत्पुत्रो मे शुक्लो जायेत वेदमनुब्रवीत सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातमीश्वरौ जनयितवै। अथ य इच्छेत्पुत्रो मे कपिलो जायेत वेदावनुब्रवीत सर्वमायुरियादिति दध्योदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौजनयितवै। अथ य इच्छेत्पुत्रोमेश्यामोलोहिताक्षो जायेत त्रीन्वेदनानुब्रवीत सर्वमायुरियादित्युदौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करें, पति भी प्रिय और हितकारी बर्त्ताव करे। इस समय कभी भी सहवास न करें। इस प्रकार से सात रात्रि तक रहकर आठवें दिन पति के साथ शिर समेत स्नान करे, पीछे से निर्मल विना फटे (या कोरे-नये) वस्त्र पहिनें, माला और आभूषण भी श्वेत ही पहिने।[१]

यज्ञ विधि—घर की पूर्व या उत्तर दिशा में अथवा पानी के उत्तर या पूर्व दिशा में स्थान को गोबर और पानी से लेप करके, पानी के छींटें देकर वेदी बनाये। इस वेदी के पश्चिम में श्वेत बैल के या मृग चर्म पर ब्राह्मण को बिठाये, क्षत्रिय को व्याघ्र के अथवा बैल के चर्म पर बिठाये। वैश्य को मृग के या बकरे के चर्म पर बिठाये। वहाँ बैठकर ढाक, हिंगोट, गूलर, महुए की समिधाओं से अग्नि को प्रदीप्त करके, कुशायें बिछा कर, वेदी के चारों ओर परिधियाँ गाड़कर, श्वेत लाजाओं से एवं श्वेत और गन्ध वाले फूलों से इसे सजादे। फिर जलपात्र, हवन के लिए घृत, और वर्णों के अनुसार आसन आदि बिछाये।

इसके पीछे पुत्र की इच्छा से अग्नि की दक्षिण दिशा में ब्राह्मणों को बिठाये, और इच्छानुसार पुत्र की चाह करती हुई स्त्री अपने पति के पास पश्चिम में बैठे। इसके पीछे ऋत्विक् इसकी इच्छा के अनुसार प्रजापति को निर्देश करके उसकी इच्छा पूर्ति के लिये 'विष्णुर्योनि कल्पयतु' इस ऋचा से होम करे।[२] इसी अभिमंत्रित घृत से चरु को मिलाकर-शास्त्रानुसार तीन आहुति देवे। मंत्र से अभिमन्त्रित जलपात्र देकर इसी जल से सब कार्य करने के लिये कहे। इसके पीछे यज्ञ विधि समाप्त होने पर दहिने पैर को पहिले उठाकर पति के साथ प्रदक्षिणा करे। ब्राह्मणों का मंगल करके बचे हुए यज्ञ शेष चरु को खाये। पहिले पुरुष खाये और पीछे स्त्री खाये। इसमें कुछ झूठा न छोड़े। इसके पीछे आठ दिन साथ सोयें। जैसा पुत्र चाहें वैसा ही वेश धारण करें—इससे इच्छित सन्तान होती है।

---

१ अष्टांग संग्रह में—"ततः स्नानात् पुनरपि गुणवत्पुत्रार्थी त्रिरात्रमुपेक्षेत्। पुष्पदर्शनात् सप्तरात्रम्"—इस प्रकार से आठवें दिन गर्भाधान करना चाहिये।

२ श्री स्वामी दयानन्दजी कृतसंस्कार विधि—में ये सम्पूर्ण मंत्र गर्भाधान संस्कार में दिये हैं। ये मंत्र गोभिल २।५।९ तथा ऋग्वेद. में १०। सूक्त १८४. मंत्र १-३ में हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो स्त्री चाहे कि उसकी संतान कृष्ण या लाल आँख की, चौड़ी छाती की, विशाल वाहु की हो अथवा जो स्त्री कृष्ण वर्ण' काले-कोमल-दीर्घ बालों की, श्वेत आँख की, श्वेत दान्तवाली; तेजस्वी, सन्तान चाहे; उन दोनों के लिये भी यही होम विधि है; केवल वेश भूषा में रंग बदलना होता है। पुत्र का जैसा वर्ण चाहते हों, उसी के अनुकूल-वेश-भूषा-अन्य सामान करना चाहिये। शूद्रा स्त्री के लिए यज्ञ-होम विधि नहीं है; वह तो केवल देवता-अग्नि-ब्राह्मण-गुरु, तपस्वि और सिद्धों को नमस्कार करे।

जो जो स्त्री जिस जिस प्रकार की संतान चाहती हो; वह-वह स्त्री—उसी उसी तरह के पुत्र की कामना रखती हुई, उन उन जनपदों का मन से सदा चिन्तन करती रहे। उन उन जनपदों के मनुष्यों के अनुरूप मनुष्यों का चिन्तन, उन उन जनपदों के मनुष्यों के समान आहार-विहार-रहन सहन-वर्त्ताव को करने के लिये उसे कहना चाहिये। इस प्रकार करने से गुणवान पुत्र होता है।

बच्चे में रंग की विशेषता का इतना ही कारण नहीं, अपितु तेज धातु जल और अन्तरीक्ष से मिलकर गौर-श्वेत वर्ण बनाता है; पृथ्वी और वायु से मिलकर कृष्ण वर्ण बनाता है, सब धातुवों के समान होने से श्याम वर्ण होता है।[1]

मन को बनाने वाले कारण—गर्भावस्था में मन-माता-पिता तथा गर्भावस्था के समय माता की मन की स्थिति के अनुसार, बार-बार सुनने में आनेवाली बातों के अनुसार, तथा पूर्वजन्म में संचित अपने (गर्भ के) कर्मों के अनुसार मन बनता है।

इसीलिए इस समय माता को प्रिय-हितकारी बातों को सुनाना कहा है। मनुष्य मरते समय जैसे विचार लेकर शरीर छोड़ता है; वह वही विचार लेकर फिर जन्म लेता है (यं यं वापि स्मरन्भावंत्यजन्ते कलेवरम् । तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ गीता ८।६)। पुरुष जीवनभर जिस प्रकार का मन बनाता है; जन्मान्तर में भी वैसा ही मन उसको प्राप्त होता है।

उदाहरण—जिस प्रकार निर्दोष (अनुपतप्त) बीज बोनेपर अपने स्वभाव

१ मेरी लिखी संस्कार विधि विमर्श में पृष्ट ४५-४७ देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार जौ से जौ; व्रीहि से व्रीहि बनता है; उसी प्रकार स्त्री और पुरुष से भी उसी के अनुसार संतान होती है।

इस नियम से बीज का जो भाग दूषित होता है, वही भाग फल में भी या वृक्ष में भी दूषित होता है, यदि बीज का सम्पूर्ण अवयव विकृत होता है तो फल का भी वही अवयव सम्पूर्ण दूषित होगा। इसीलिये जिन अन्धे माता-पिता की चक्षु इन्द्रिय अविकृत रहती है, उनकी संतान में दृष्टि दोष नहीं आता–यथा दुर्योधन में। जिनके चक्षु इन्द्रिय सहवास के समय या पहिले से दूषित होती है, उनकी संतान में दृष्टि दोष आता है, यथा व्यास और विचित्रवीर्य की पत्नी से उत्पन्न धृतराष्ट्र में। सहवास के समय जिस जिस अवयव का प्रतिनिधि नहीं आता, या दूषित प्रतिनिधि आता है, गर्भ में उसी उसी अवयव में दोष आ जाता है इसी से कहा है—

यस्य यस्यह्यङ्गावयवस्य बीजे बीजभाग उपतप्तोभवति, तस्यतस्याङ्गवयवस्य विकृतिरूपजायते नोपजायते चानुपतापात्। तस्मादुभयोपपत्तिः। शा. अ ३।२५।

उपसंहार—चरकसंहिता में गर्भाधान एक पवित्र कर्म बताया है, बच्चा जाति को बनाने वाला है, देश को बनाता है, इसीलिए उसकी उत्पत्ति को **जातिसूत्रीय**–जाति का सूत्र नाम दिया है। उत्पत्ति में केवल शरीर निर्माण का ही विचार नहीं किया–अपितु मन का भी विचार किया है, मन कैसे बनता है, बच्चे का रंग कैसा बनता है, इन सब बातों का विचार किया है। उपनिषद् में उत्तम संतानोत्पत्ति ज्ञान को (Eugenic) **अधिप्रज** नाम दिया है, गर्भाधान क्रिया को **प्रजनन** और गर्भ को **प्रजा** नाम दिया है (तैतरीयोपनिषद् २।४)। उत्तम संतान का ज्ञान आवश्यक है, विशेषतः उत्तम मन वाली संतान का। आयुर्वेद में शरीर मन-आत्मा और इन्द्रिय के संयोग का नाम पुरुष है। मुख्यतः शरीर और मन ये मनुष्य के अंग हैं। इसीलिये चरक में मन और शरीर दोनों के निर्माण का तथा इच्छित संतान की उत्पत्ति की विधि बताई है। साथ ही जिनके संतान नहीं है, उनके लिये पुत्रेष्टि विधि भी वैदिक प्रक्रिया के अनुसार वर्णित है।

सन्तान का जाति के लिए कितना महत्त्व है, यह चरक के जातिसूत्रीय–इस एक ही शब्द में निहित है। इस कर्म के लिये कितनी तैय्यारी आवश्यक है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है। मन की और दूसरी परिस्थितियों का कितना प्रभाव गर्भ पर पड़ता है, यह इसमें स्पष्टतः विचारा गया है। वास्तव में चरक का यह प्रकरण अपनी विशेषता लिए हुए है, ऐसा ज्ञान आज भी आपको किसी भी दूसरी पुस्तक में नहीं मिलता, यह है ऋषि की विशेषता है, यह है अत्रिपुत्र की दूरदर्शिता। ऐसे ऋषियों के लिये श्रद्धा से सिर स्वतः झुकता है।

खिलौने

बच्चों के पालने तथा उनके खेलने के लिए खिलौने के लिए भी आदेश चरक संहिता में दिये हैं यथा—"बच्चों के खिलौने विचित्र प्रकार के नानाप्रकार के, बजने वाले, देखने में सुन्दर, हल्के, (उठाने में भारी नहीं), आगे से तीक्ष्ण-नोकदार नहीं होने चाहिऐं; ये मुख में न जा सकें, एवं इनसे किसी प्रकार प्राणों को नुक्सान नहीं पहुंचना चाहिये। खिलौने डरावने या भयानक न हों (शा. अ. ८।६७)[1]।

खिलौने के सम्बन्ध में सब आवश्यक निर्देश इस सूत्र में आ गये, बच्चा बहुत कुछ खेल में सीखता है, उसके ज्ञान के लिए नाना प्रकार के-भिन्न भिन्न तरह के खेल होने चाहियें।

भारतवर्ष में हल्की लकड़ी आम; सिम्बल के, मिट्टी के तथा पीतल ताम्बे आदि धातुओं के खेल बनते हैं! इनके सिवाय चीनी या आटे के भी खेल बनाने की प्रथा है। चीनी के खेलों से बच्चा खेलता भी है और टूटने पर खा भी लेता है। खेलों को सुन्दर बनाने के लिए उन पर नाना प्रकार का रंग या चित्रण किया जाता था।[1]

---

१ बालक्रीडनकानिपिष्टमयनि, तद्यथा—गोगजोष्ट्राश्वगर्दभमहिषमेषच्छागमृग वराहवानररुरुशरभसिंहव्याघ्रकपितरक्षुवृक कूर्मसीनशुकसारिकाकोकिल कलविङ्क चक्रवाकहंसक्रौञ्चसारसमयूरक्रकर चकोरकपिञ्जल चरणायुधवर्त्तकाकाराणी; शैलकगृह (क) रथक यानक स्यन्दक शल्लिकाजिज्झिरिकाखैरिकेशीकातुम्बीका दुष्प्रवाहक भद्रक संचोल्लकपीठप············न्दिकादुहितृका कुमारक गोलकन्दुकादीन्यन्यानि च स्त्री कौतुकानीतिभिषक् तस्यमण्डलं सन्निधाय, वसुधायै अर्घ्यं दत्वा······ ॥ काश्यप। जातकर्मोत्तराध्याय १२।६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संस्कृत काव्यों में मृच्छकटिक नाटक इसी का उदाहरण है, मिट्टी की गाड़ी से शूद्रक ने चारुदत्त के पुत्र का मनोरञ्जन करवाया है। बच्चों की शिक्षा में ज्ञान-वृद्धि में खिलौने बहुत आवश्यक साधन हैं। खिलौने पर मिट्टी या गन्दगी लग जाने से वे मुख में न जा सकें, ऐसे बनाने चाहियें, अथवा पैसा-मनका आदि बच्चे मुख में डाल लेते हैं, जिससे श्वास रुक कर मृत्यु होने का भय है, इसलिए खिलौने ऐसे होने चाहिएँ—जिनको बच्चा मुख में न दे सके। उनके उपर रंग ऐसा करना चाहिए—जिससे कि बच्चे के स्वास्थ्य को हानि न पहुंचे। साथ ही बच्चा जिनको देखकर डर जाये ऐसे खेल (दुर्गा या भैरव के रूप) भी नहीं होने चाहिएँ।

बच्चे का लालन-पालन

बच्चे के रखने के लिए सबसे प्रथम मकान देखना चाहिये—मकान निर्माण की कला को जानने वाला व्यक्ति (वास्तुविद्या कुशलः) प्रशस्त, सुन्दर, प्रकाश वाला, सामने की वायु से बचा, एक पार्श्व से वायु के प्रवेश योग्य, मजबूत, कुत्ते-पशु-हिंसक जन्तु-चूहे-पतंगें (शलभं) जिस घर में प्रवेश न कर सकें, जिस घर में पानी, कूटने-पीसने का स्थान, मल-मूत्र का स्थान, स्नान का स्थान, रसोई सब अलग अलग बने हों, सब ऋतुओं के अनुकूल सुख जिस घर में मिल सके, जिस घर में ऋतु के अनुसार सोना-बैठना-बिछोना आदि हो सके, ऐसा घर बनाये। इस घर में सम्पूर्ण रूप से रक्षाविधि-बलि-मंगल-होम-प्रायश्चित आदि करे।

बच्चे की देख रेख के लिए पवित्र-वृद्ध-वैद्य-स्नेही जन घर में एकत्रित रहें।

कालिदास ने रघुवंश में पालने के लिए कुमारों के पालने में कुशल वैद्यों का उल्लेख किया है (कुमारभृत्या कुशलैरनुष्ठिते भिषग्भिराप्तैरथगर्भभर्मणि—रघु ३।१२)। उस समय कुमारों के पालन-पोषण करनेवाले पृथक् वैद्य होते थे। ये वैद्य गर्भावस्था से ही बच्चे की देख रेख करते थे।

कुमार शब्द का क्षेत्र सोलह साल की आयु तक है, जिस समय तक कफ धातु की अधिकता रहती है, इस समय तक सब धातु अपक्वावस्था में रहते हैं, दाढ़ी मूछ एवं गुह्य भाग पर बाल नहीं आते, सुकुमार—क्लेश न सहने वाला रहता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, इस अवस्था को बाल्यावस्था या कुमरावास्था कहते हैं (च. वि. अ. ८)। इस आयु तक बच्चे की देख भाल विशेष रूप से की जाती है।

कुमार के लिए बिछौने-ओढ़ने के वस्त्र—कोमल, हल्के, साफ़-सुथरे, सुगन्धित-धूप दिए होने चाहियें। जिन कपड़ों में मैल लग जाये, पसीना या जूं हो जायें या मल मूत्र से जो खराब हो जायें उनको छोड़ देना चाहिए। यदि नये दूसरे वस्त्र न मिल सकें, तो इन्हीं वस्त्रों को भली प्रकार धोकर अच्छी प्रकार धूप देकर, स्वच्छ करके, सुखाकर काम में लाना चाहिये।

ओढ़ने, बिछाने तथा दूसरे वस्त्रों को धूप देने के लिए–जौ, सरसों, अलसी, हींग, गुग्गुल, वच, चोरक, हरड़, गोलोमी, जटामांसी गुग्गुल, कटुरोहिणी, सांप की केंचुली इनको घी में मिलाकर इनसे धूप देनी चाहिये।

गुरियां—बच्चे को मणियाँ–पत्थर या शंख की बनी गुरियां, अकीक आदि पत्थर पहिनाने चाहियें। जीते हुए गेंडा, रुरु मृग, गवय-नीलगाय और बैल इनके दक्षिण सींग का अग्रभाग काटकर बच्चे को पहिनाना चाहिये। ऐन्द्री-ब्राह्मी, शतावरी, सहस्रवीर्या, शतवीर्या, अमोघा आदि औषधियों को तथा अन्य जिन वस्तुवों को अथर्ववेद को जानने वाले ब्राह्मण बतायें उनको पहिनायें।

आज भी बालकों को सुअर का दांत, शेर का नख, शंख या अन्य वस्तु को गले में पहिनाने की प्रथा है। लोगों की मान्यता है कि इससे बच्चे की रक्षा रहती है उस समय भी ऐसे विचार देश में प्रचलित थे। राजघाट की खुदाई में ऐसी बहुत सी गुरियां मिली हैं।

बालक का मनोविज्ञान

- बालक को कभी भी डराना धमकाना नहीं चाहिए। यदि किसी समय बच्चा बहुत रोता हो या भोजन न करता हो, दूध न पीता हो अथवा अन्य करणीय कार्य को न करता हो, तब उसको डराने के लिए राक्षस, पिशाच, पूतना आदि का नाम लेकर या बुलाकर (हौआ आ रहा है, ...आकर तुम पीजाओ), उसे डराना नहीं चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीर्घायु बालकों के शारीरिक लक्षण

बाल—एक-एक मृदु-छोटे, स्निग्ध, जड़ में मजबूत, काले केश प्रशस्त हैं। प्रकृति से ही दृढ़, मोटी **त्वचा** प्रशस्त है। **शिर**–स्वाभाविकतायुक्त, अपने परिमाण से थोड़ा ही बड़ा, छत्र के समान उत्तम है। **ललाट**–चौड़ा, दृढ़, समान, शंख सन्धि पर अच्छी प्रकार जुड़ा, ऊपर को उभरा, पुष्ट, बलवान अर्द्धचन्द्राकार उत्तम है। **कान**–मोटे, बड़े, समान पीठ वाले (पिछला भाग ऊंचानीचा न हो), परस्पर समान, नीचे को लटकते, पीछे की ओर झुके, कर्ण पुत्र भली प्रकार से श्लिष्ट, बड़े छेद वाले उत्तम हैं। **भ्रू**–थोड़ी लटकती, परस्पर न मिली, समान बड़ी भ्रू उत्तम हैं। **आँखें**-समान, ठीक सीधा देखने वाली, जिनमें काला और सफेद भाग स्पष्ट हों, बलवान, तेज से भरी, अच्छे कोण वाली प्रशस्त हैं। **नासिका**–सीधी-बड़े नथनों वाली, उठे हुए बांस वाली, आगे से कुछ झुकी उत्तम है। **जिह्वा**–आयाम-लम्बाई और चौड़ाई से युक्त, चिकनी, पतली, स्वाभाविक (लाल) वर्ण से युक्त अच्छी है। **मुख**–बड़ा सीधा, जिसमें दान्त अच्छी प्रकार से स्थित हों उत्तम है। **तालु**–चिकना, उचित उष्णिमा वाला, ठीक प्रकार भरा; अच्छा है। **स्वर**–अतिशय गम्भीर-स्निग्ध, नदी के समान अच्छा है। **ओठ**–न तो बहुत मोटे, न बहुत पतले, मुख को ढांपने वाले अच्छे हैं। **हनु**–बड़ा अच्छा है। **ग्रीवा**–गोल (कम्बुग्रीवा) प्रशस्त है। **छाती**–चौड़ी और भरी अच्छी है। **पृष्ठवंश**–जिसमें अस्थियां और जत्रु-छिपा हो–ऊपर दिखाई न दे। **स्तन**–परस्पर दूरी पर होने चाहियें। **पार्श्व**–कन्धे के समानान्तर और स्थिर अच्छे हैं। **अंगुलियाँ**–गोल-भरी-लम्बी प्रशस्त हैं, बाहू और टांगे भी ऐसी ही अच्छी हैं। **हाथ-पैर**–बड़े और भरे अच्छे हैं। **नख**–स्थिर-गोल स्निग्ध-लाल, उभरे-कूर्म के आकार के प्रशस्त हैं। **नाभि**–दक्षिणी आवर्त्तकी और गम्भीर प्रशस्त है। **कटी**–छाती से १/३ भाग कम, समान, मांस से भरी प्रशस्त है। **स्फिच**–गोल, भरे, पुष्ट मांस के, न बहुत उठे न बहुत दबे उत्तम हैं। **ऊरू**–क्रमशः उतार लिये, गोल, भले हुए अच्छे हैं। **जंघा**–न बहुत मोटी, न बहुत पतली–मृगी के समान तथा जिनकी सिरा-अस्थि और सन्धि खूब छिपी हो, अच्छी हैं। **गुल्फ**–न तो बहुत उभरे और न बहुत दबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम हैं। पैर—कछुए के समान उठे उत्तम हैं। वायु-मूत्र-मल स्वाभाविक हों। सोना-जागना - हंसना-रोना-स्तनपान सब स्वाभाविक हो तो लड़का दीर्घायु होता है [चरक. वि. अ. ८]।[1]

इस प्रकार से बालकों के सम्बन्ध में उस समय के विचार तथा अन्य सामाजिक रिवाजों का चरक में पूर्णतः उल्लेख मिलता है।

---

१ इस सम्बन्ध में विशेष विवेचन मेरी लिखी पुस्तक क्लीनिकल मेडिसिन के द्वितीय भाग पृष्ठ १७८१ पर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९

चरक कालीन स्त्रियों की स्थिति

चरक संहिता में स्त्रियों के प्रति अतिशय श्रद्धा और सम्मान दिखाने को कहा है; इनका कभी भी अपमान नहीं करना चाहिए [सू. अ. ८]। स्त्री स्वभाव का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि स्त्रियों में प्रीति अधिक रहती है; अपत्य संतान भी स्त्रियों के कारण ही है; धर्म-अर्थ यश और लक्ष्मी तथा लोक ये सब स्त्री में प्रतिष्ठित हैं—उसी के कारण से हैं [चि. अ. २।६]।

स्त्री में प्रीति–ममत्व बहुत होता है; इसी से शिष्य को आचार्य उपदेश देता है कि स्त्री से प्रदत्त कोई भी भोग्य वस्तु स्वामी की या संरक्षक की आज्ञा के विना नहीं लेनी चाहिये [वि. अ. ८]। स्त्री के विना धर्म-यज्ञ आदि कर्म नहीं होते—इसीसे राजसूय यज्ञ में रामचन्द्रजी को सीता की स्वर्ण प्रतिमा रखनी पड़ी थी [अनन्यजानेः सैवासीद्यस्माज्जायाहिरण्मयी–रघु. १५।६१]। स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी है, इसलिये धर्म कार्यों में वह साथ रहती है। धन को कमाता पुरुष है, परन्तु उसका व्यय–रक्षण स्त्री ही करती है, इसीसे कामसूत्र में कहा कि अति व्यय या असद् व्यय करने पर पति को समझाये [अति व्ययं वा कुर्वाणं रहसि बोधयेत्—कामसूत्र ४।१।१४]। लक्ष्मी-ऐश्वर्य-घर की समृद्धि स्त्री से ही है, इसीसे कामसूत्र में कहा कि स्त्री को चाहिए कि वह घर को पवित्र, अच्छी प्रकार बुहारा-साफ सुथरा; नाना प्रकार के फूलों से पुष्पित, चिकने साफ फर्श वाला, देखने में सुन्दर बनाकर रखे, क्योंकि गृहस्थी के लिये घर से दूसरी कोई भी वस्तु चित्त को खींचने वाली नहीं है [नस्यतोऽन्यद् गृहस्थानां चित्त ग्राहकमस्तीति गोनर्दीयः–४।१।३–४]। इस लोक में यश स्त्री से ही है तथा मरने के पीछे परलोक भी स्त्री के कारण ही सुधरता है। स्त्री ही वास्तव में गृह है [गृहणी गृहमुच्यते[1]]।

स्त्री के प्रति इतना सम्मान दिखाने के साथ साथ इनका अधिक विश्वास

---

१ न गृह गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं हि गृहिणो हीनमरण्य सदृशं मतम् ॥ पंचतंत्र--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने को मना किया है; इनको गोपनीय रहस्य नहीं बताना चाहिये, इनको अधिकार देने का निषेध किया है [सू. अ. ८]। इससे स्पष्ट है कि उनका सन्मान तथा प्रतिष्ठा जरूर थी, परन्तु समाज में अग्रिम पद उनको नहीं दिया जाता था। काश्यप संहिता में स्त्रियों के सम्बन्ध में अधिक सूचनायें दी हैं; यथा—रोगी के घर में प्रविष्ट होकर स्त्रियों के साथ, नौकरानियों के साथ हँसी मजाख़ नहीं करना चाहिये; इनका नाम कभी भी विना सम्मान के नहीं लेना चाहिये, इनके साथ मान्य-सम्मानित स्थान पर ही बात करे; इनके साथ किसी प्रकार का व्यवहार या अति नम्रता न बरते; पति या संरक्षक की विना जानकारी के स्त्रियों से कुछ भी नहीं लेना चाहिए, विना उनको सूचना दिये घर में नहीं घुसे, स्त्रियों के साथ कभी भी एकान्त में बात न करे, कभी भी इनको नंगी अवस्था में न देखे, न छिपकर देखे, इनको देखकर कभी हँसे नहीं, यदि कभी यह प्रणय दिखाये तो इसकी उपेक्षा कर दे, इसको कभी भी प्रोत्साहना नहीं देनी चाहिये [काश्यप–शिष्योपक्रमणीय-८]।

वाजीकरण योग—वाजीकरण औषधियों का उपयोग पुरुष के लिये ही आयुर्वेद में बताया है [वाजीकरणमन्विच्छेत् पुरुषो नियतात्मवान्—चि. अ. २।३]। स्त्रियों के लिये वाजीकरण योग नहीं हैं। स्त्री स्वयं वाजीकरण है, विशेषतः जो स्त्री सुन्दर, युवती, उत्तम लक्षणों-[सामुद्रिक लक्षण–शंखिनी, चित्रणी आदि के, अथवा सुन्दर नख–शिख से युक्त], से शोभित, जो कि वशवर्त्ती हो, कामशास्त्रोक्त गीत-वादित्र-लास्य आदि चौसठ कलाओं में शिक्षित होती है, वह स्त्री सबसे अधिक वृष्य—वाजीकरण है [चि. अ. २।८]।

मनुष्यों की रुचि भिन्न भिन्न होती है (भिन्न रुचिर्हिलोकः–कालिदास); परन्तु स्त्री के शरीर में सब ज्ञानेन्द्रियों के भाव एक साथ में मिल जाते हैं; यथा—

शब्द से—पक्षियों की मधुर आवाज़ से, स्त्रियों के आभूषणों की ध्वनि से; स्पर्श से-श्रेष्ठ स्त्रियों द्वारा संवाहन करवाने से, **गन्ध से**—मालती या कमल की सुगन्ध से; रूप से—स्त्रियों के सुन्दर रूप को देखने से–पुरुष में वृष्यत्व उत्पन्न होता है (चि. अ. २।२।२५–)।

स्त्रियों के रूप आदि गुण तभी बढ़ते हैं, जब उसी रुचि का मनुष्य उनको मिल जाता है, जो स्त्री दैव वश से-प्राक्तन कर्म के कारण या कर्मों से अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वय-रूप-वाणी या हाव-भावों से पुरुष के हृदय में घर कर लेती है, वह स्त्री उस पुरुष के लिये उत्सव रूप होती है, विशेषतः जब दोनों की रुचि मन एक जैसे हों। जो स्त्री पुरुष के समान मन वाली, जो स्त्री पति के वशवर्त्ति है, जो पति की प्रसन्नता में प्रसन्न होती है, जो अपने उत्कृष्ट गुणों के कारण पति के लिए पाश भूत होती है, जिस स्त्री से अलग होकर पुरुष अपने को स्त्री विहिन, जिसके विना उसे जगत-शून्य रूप दिखाता है, जिसके विना मनुष्य अपने को मरा हुआ समझता है, जिस स्त्री को देखकर मनुष्य-शोक-भय-चिन्ता-वेचैनी सब भूल जाता है, जिसके साथ विश्वास पूर्वक बात कर सकता है, जिसको देखते ही अतिशय प्रसन्न हो जाता है, वह स्त्री सबसे अधिक वृष्य है, क्योंकि मनुष्य भिन्न भिन्न रुचि के होते हैं (नानाभावा हि मानवाः–चि.अ.२।१।८–१४; भिन्नरुचिर्हिलोकः-रघुवंश ६।३०)।

स्त्री सबसे अधिक वृष्य है, इसीलिये स्त्रियों के लिये वाजी कर योग चरक संहिता में नहीं हैं, उनके लिये क्षेत्री करण–गर्भाशय की शुद्धि करनेवाले–योग ही हैं। वाजी करण योग पुरुष के लिए ही हैं।

स्त्रियों क सम्बन्ध में चरक संहिता में सदा सम्मान का वर्णन है; अतुल्य गोत्र वाली स्त्री से विवाह करने का विधान है (चि. अ. २।१।१५; शा. अ. २।३)। शिष्य को आचार्य उपदेश देते में कहता है कि–मन से भी पर स्त्री का चिन्तन नहीं करना चाहिए (वि. अ. ८)। इसलिये उस समय अपने से भिन्न गोत्र वाली स्त्री के साथ विवाह विधि पूरी की जाती थी। विना स्त्री के धर्म-अर्थ-लोक-यश की प्राप्ति नहीं होती थी। इसके साथ ही इनको विशेष अधिकार नहीं मिलते थे; न इनको कोई रहस्य ही कहा जाता था; इनका विश्वास भी अधिक नहीं किया जाता था।

वास्तव में स्त्रियों के स्वभाव के सम्बन्ध में कुछ धारणायें बन चुकी थी; जिनका कि उल्लेख संस्कृत साहित्य में मिलता है; थथा—

सविषा इव संश्रिता लताः परिमृष्टा इव सोरगाः ग्रहा।
विवृत्ता इव चासयोधृताः व्यसनान्ता हि भवन्ति योषिताः॥
समुद्रवीचीव चलस्वभावाः संध्याभ्रलेखेव विहितरागाः।
स्त्रियो हृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत्त्यजन्ति॥
मृच्छकटिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपण्डितास्ते पुरुषामता मे, ये स्त्रीषु श्रीषु च विश्वसन्ति ॥

इसी प्रकार पंचतंत्र (मित्रभेद १४६–१५८) में तथा दूसरे ग्रन्थों में स्त्रियों के सम्बन्ध में उल्लेख है । चरक संहिता में भी उसी की झलक है; फिर भी उनके सम्मान का पूरा ध्यान रक्खा है, उनमें पूज्य भाव बरता है, उनकी प्रतिष्ठा-संसार में उनका मूल्य पूरी तरह आंका है ।

चरक संहिता के समय वेश्यायें भी थीं; सदा रोगी रहने वाले व्यक्तियों में वेश्याओं की गिनती की है (तथैव वेश्या सह पण्यजीविभिः—सि. अ. ११।२६)। वेश्या के रोगी होने का कारण यह है कि उसे सदा मनुष्य के मन के अनुकूल बरतना पड़ता है; पुरुष की सेवा में सदा तत्पर रहती है, निरन्तर साज-शृङ्गार में लगी रहने से उसे दैनिक कार्यों के करने का समय नहीं मिलता, इसलिये यह सदा बीमार रहती है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०

चरक संहिता कालीन विश्वास

चरक संहिता में चिकित्सा तीन प्रकार की बताई है, १—दैवव्यपाश्रय, २—युक्तिव्यपाश्रय और ३—सत्त्वावजय। इनमें दैवव्यपास्रय-चिकित्सा मंत्र, औषध, मणि, मंगल, बलि उपहार, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास, स्वस्ति-वाचन; प्रणिपात गमन आदि रूप में है। इस चिकित्सा का मुख्य सम्बन्ध अथर्व वेद से है, अथर्व वेद में ही दान, स्वस्तिवाचन बलि, मंगल, होम, नियम, प्रायश्चित, उपवास मंत्रादि रूप में कहे हैं [सू. अ. ३०।२१]

इसिलिये चरक में आधुनिक विश्वासों की भांति कुछ विश्वास मिलते हैं, यथा—सद्वृत्त में-चौराहों पर नमस्कार करने को कहा है, बलि देने का विधान है [चतुष्पथानां नमस्कर्त्ता, बलीनामुपहर्त्ता-सू. अ. ८।१८]। इसी प्रकार सूतिका गृह में रोगों से बचाने के लिये—सरसों को बखेरने का वर्णन है, सरसों का एक नाम 'रक्षोघ्न' है-राक्षसों को मारने वाली है। इसी लिये प्रसव होने पर स्त्री की रक्षा के लिए इसका उपयोग किया है, यथा—

इसकी [बच्चे की] रक्षा का प्रबन्ध करे—आदनी, खैर, बेर, पीलु, फालसा इनकी शाखा से घर को चारों ओर से ढांप दे। सूतिकागार के चारों ओर सरसों, अलसी को पीसकर इनके छोटे-छोटे कण, पिप्पली के कण बखेर दे। जब तक बच्चे का नाम करण न हो जाये [दस दिन तक] तबतक दोनों समय चावलों की बलि से होंम करे। द्वार पर मूसल को देहली के साथ तिरछा रख दे [आज भी यह प्रथा देहात में है, जिससे बाहर का कोई आदमी घर में सीधा न चला आये]। वच, कूठ, अलसी, हींग सरसों, लहसुन इनको दरकच करके इनकी कणिकाओं को तथा अजवायन आदि रक्षोघ्न कही जाने वाली औषधियों को पोटली में बांधकर सूतिकागार की उत्तर की देहली पर-[दर्वाजे के ऊपर] लटका दे। इसी प्रकार सूतिका के, पुत्र के, जलपात्रों में, पलँग में दरवाजे के दोनों किवाड़ों पर इनको लटका दे। तण्डुलकण, कांटे, तिन्दुक, इनसे निरन्तर सूतिकागार के अन्दर अग्नि को जलाता रहे [यहाँ पर पलाश,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंगोट, बरगद की समिधाओं का विधान नहीं है, जो कि सामान्यतः होमकार्य में आती हैं]। स्त्रियां और मित्र दस या बारह दिन बराबर जागते रहें। अथर्ववेद को जानने वाले ब्राह्मण निरन्तर दोनों समय प्रसूता और बच्चे की मंगल कामना के लिये शान्ति पाठ करते रहें [शा. अ. ८।५१][1]।

भूत सम्बन्धि मान्यता उस समय में भी था—उस समय भी यह माना जाता था कि भूत-मांस और रक्त की प्राप्ति के लिए मनुष्य का हरण कर लेते हैं। परन्तु ऋषि आत्रेय ने इस विचार को मिथ्या बताया है। यथा—

जो स्त्रियाँ गर्भ धारण करने के लिये बहुत उत्कण्ठित रहती हैं उनमें, तथा दूसरी स्त्रियों में कई बार वायु के कारण ऋतु स्राव रुक जाता है। ऋतु के बन्द होने से मूर्ख व्यक्ति उसको गर्भवती समझते हैं। यह रक्त स्रवित न होकर गर्भावस्था के लक्षण उत्पन्न कर देता है (जैसे—जी मचलाना, प्रातः कालीन वमन, पेट में भारीपन आदि)। यही रक्त खान पान से; अग्नि-सूर्य-श्रम शोक-

---

१—कादम्बरी में भी सूतिकागर का वर्णन इसी प्रकार का है वहां पर सरसों को रखने तथा वर्धमान [शरावों] को लटकाने का उल्लेख है—यथा—

"तथा च सुकृतरक्षाविधाने नवसुधानुलेपनधवलिते प्रज्वलितमंगल प्रदीपे पूर्ण कलशाधिष्ठित द्वारपक्षके प्रत्यग्रलिखितमंगल्यालेख्योज्ज्वलितभित्तिभाग-मनोहारिणि उपरचित विताने वितान पर्यन्तावबद्धमुक्तागणे मणि प्रदीप प्रहत-तिमिरे वासभवने भूतिलिखित पत्रलेखा कृतरक्षा परिक्षेपं शिरोभागविन्यस्त धवलनिद्रा मंगलकलशम् आबद्धविविधौषधिमूलयंत्र पवित्रम् अवस्थापितरक्षा-शक्तिवलयम्, इतस्ततोविप्रकीर्णगौरसर्षपम्, अवलम्बितबालयोक्त्रग्रथित लोल-पिप्पलपत्रम्, आसक्तहरितारिष्टपल्लवम्, उत्तुङ्ग पादपीठप्रतिष्ठितम्, इन्दुदीधित-धवल प्रच्छद पटम्; अचलराजशिलातल विशालं गर्भोचितं शयनतलमधिशयानां, कनकपात्र परिगृहीतैरविच्छिन्नं विरलावस्थितदधिलवैः जलतरंगतरलसितशालि सिन्थनिकरैरग्रथित कुसुमाञ्जलिसनाथैः पूर्णभाजनैः अखण्डितानन मत्स्यपटलैश्च.... गोरोचनामिश्रगौरसर्षपैश्चसलिलाञ्जलिभिश्चाचारकुशलेनान्तःपुरजरतीजनेन क्रिय-माणवतरणकमङ्गलां......दुकुलयुगलवसानां विलासवतींददर्श ॥ कादम्बरी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या रोग से जब अचानक प्रवृत्त हो जाता है; तब इस रक्त को देखकर मूर्ख व्यक्ति कहने लगते हैं; कि गर्भ को भूत ले गये।

जिन राक्षसों का भोजन ओज ही है, उनको आहार के लिये शरीर की जरूरत नहीं होती। यदि वे गर्भ का हरण कर सकते हैं, तो समय पाकर माता के भी ओज का हरण कर सकते हैं—माता को भी मार सकते हैं (शा. अ. २।८-१०)।

इसी प्रकार उन्माद रोग में भी कहा है कि देवता, गन्धर्व; पिशाच या राक्षस तथा दूसरे स्वयं ही दुःखी मनुष्य को क्लेशित-पीड़ित नहीं करते। अपने कर्मों के कारण पीड़ित इस मनुष्य का जो ये अनुकरण करते हैं, वह इनके कारण पीड़ा नहीं होती; जो मनुष्य स्वयं प्राकृत कर्मों के कारण पीड़ित है, उसे अधिक पीड़ित करने में इनका कोई लाभ नहीं। इसलिये-प्रज्ञापराध के कारण उत्पन्न कर्मजन्य व्याधि में बुद्धिमान को चाहिए कि पितर या राक्षसों को दोष न दे। अपने को ही सुख और दुःख का कर्त्ता समझे (नि. अ. ६।२२-२४)।

राक्षस-भूत-पिशाच-पूतना-आदि के नाम उस समय भी प्रचलित थे; बच्चों को डराने के लिये इनके नाम लेने का निषेध किया है (शा. ८. ८।६८)। इनसे बच्चे की रक्षा करने के लिए बच्चे को पत्थरों की गुरियां, मणके-तावीज आदि पहनाये जाते थे। ऐन्द्री आदि औषधियाँ गले में या हाथों में बाँधी जाती थी (शा. अ. ८।६६)।

पूजा—ज्वर चिकित्सा में देवताओं की पूजा का विधान है। उन्माद रोग में देवता-भूतों के उन्माद करने के तीन कारण बताये हैं—हिंसा, रति और अर्म्यचना-पूजा (नि. अ. ६।१६)। पूजा से देवता प्रसन्न होकर दुःख को दूर करते हैं; इस दृष्टि से ज्वर में देवताओं की पूजा बताई है। यथा—

अनुचरों समेत सोम की, मातृ गण के साथ ईश्वर की पूजा ध्यान पूर्वक करने से मनुष्य ज्वर से मुक्त हो जाता है। चराचर के स्वामी, विभू, सहस्र मूर्धा वाले विष्णु की विष्णु सहस्रनाम से स्तुति करने पर सब प्रकार के ज्वर छुट जाते हैं। ब्रह्मा, अश्विनौ, इन्द्र; अग्नि, हिमालय, गंगा; मरुद्गण इनकी यज्ञ द्वारा पूजा करने से ज्वर से मुक्त हो जाता है (चि. अ. ३।३१०-३१३)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार औषध के सिद्ध हो जाने पर भी वृष ध्वज (शिव) की पूजा का उल्लेख है, यथा–वृष्य तम स्नेहों के सिद्ध होने पर ब्रह्मघोष, शंख, पटह-भेरी को बजाते हुए–सिद्ध स्नेह पर श्वेत-छत्र से छाया करके; इस स्नेह को हाथी के उपर रखकर (जिससे सब लोग जान जायें कि औषध तैय्यार हो गई); भगवान वृषध्वज (शिव) की पूजा करके–स्नेह की वस्ति दे (सि. अ. १२।४३)।

शकुन विचार

रोगी को देखने में या अन्य कार्यों में मुहूत्त, करण, नक्षत्र, योग का विचार होता था यथा–सूतिकागार में प्रवेश करते समय—"भगवान चन्द्रमा का प्रशस्त नक्षत्र के साथ योग होने पर, कल्याण कारी करण में, मित्र-अनुकूल मुहुर्त्त मे, शान्ति पाठ करके, घर में पहिले गाय-ब्राह्मण-जल का प्रवेश कराके, गायों को घास और जल देकर, ब्राह्मणों को मधु और लाजा, अक्षत, फूल, फलों को देकर, ब्राह्मणों का अभिवादन करके स्वस्ति वाचन करे। फिर पुण्य शब्दों के साथ गाय-ब्राह्मणों के पीछे चलते हुए सूतिका घर में प्रवेश करे (शा. अ. ८।३६)।

रोगी को देखने जाने में शुभ और अशुभ शकुनों का विचार मुख्य रूप से किया जाता था। इनका विचार, शकुन विचार–इन्द्रिय स्थान में विस्तार से दिया है। मार्ग में कैसे शकुन अच्छे है; कैसे अशुभ है; इनका विचार रोगी की मृत्यु या आयु जानने के लिये बताया है; यथा—

जो दूत बालों को खोले; नंगे रोते हुए आयें तो रोगी की मृत्यु समझनी चाहिये। अग्नि में होम करते समय; पितरों को पिण्ड देते समय जो दूत आये–उनके साथ रोगी को देखने न जाये।

इसी प्रकार रास्ते के बीच में मिलने वाले शकुनों का विचार है—रास्ते में छींक होना, भय से रोना, फिसलना या गिरना, चिल्लाना, मारना-पीटना रोकना, निन्दा मिले तो इसे अशुभ समझे। चैत्य, ध्वाजा, पताका, पानी से भरे पात्रों का गिरना, अनिष्ट या मृत्यु की बातों का रास्ते में सुनना; बिल्ली का रास्ते को काट जाना; कुत्ते या सांप का रास्ते को काटना; दिशाओं में आग लगना, पलंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसन, सवारी ये उल्टे किये हुए रक्खे हों; ये अप्रशस्त चिह्न देखकर वैद्य रोगी के घर में न जाये।

अप्रशस्त शकुन—घर में प्रवेश करते समय भरे हुए जलपात्रों का घर से बाहर आना; अग्नि-मिट्टी-बीज-फल-घी का बाहर आना; अग्नि से भरे पात्र, टूटे हुए पात्रों को यदि वैद्य रोगी के घर में घुसते समय देखे तो अशुभ है। शय्या, वस्त्र, यान, यात्रा, भोजन या रोने में जिसका अशुभ सुनने में आता है, उसकी चिकित्सा न करे। जिसके मित्र-जिस रोगी की शय्या (शिर उत्तर दिशा में-पैर दक्षिण दिशा में), वस्त्र (लाल रंग का), यान (भैंसा या गधे का), अथवा अन्य परिच्छद प्रेत के समान करते हैं, उस रोगी को प्रेत ही समझना चाहिये। जिस रोगी के घर में अन्न बिगड़ जाता है, निवात में रक्खी अग्नि बुझ जाती है, बत्तियां स्वयं बुझ जाती हैं—उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये।

शुभ शकुन—घर में घुसते समय दही, अक्षत, द्विज-ब्राह्मणों का, बैल या गाय का, राजा का, रत्नों का, जल से भरे घड़ों का, श्वेत घोड़े का दर्शन शुभ है। मन्दिर की ध्वजा, पताका, फल, जौ से बनी वस्तु का; बर्धमान (दो शराव ऊपर नीचे रखकर या एक ही शराव को उल्टा रखकर देहली में लटका हुआ देखना[1]) पुरुष के कन्धे पर चढ़ी कन्या का, बकरे का बंधा देखना शुभ है। खुदी हुई भूमि, जलती हुई अग्नि; सुगन्धित लड्डू, श्वेत चन्दन, मन के अनुकूल खान-पान, भरी हुई गाड़ी, मनुष्यों के साथ गाय का, बछेरे के साथ घोड़ी का, स्त्री का दर्शन शुभ है। जीवञ्जीवक, सिद्धार्थ, सारस, हंस, मोर, चाष, शतपत्र का दिखाई देना शुभ है। इसी प्रकार भेरी, मृदंग, शंख की ध्वनियां, वेदमंत्रोच्चारण का सुनाई देना शुभ है (इन्द्रिय. १२।७१-७६)।

स्वप्न विचार

चरक में स्वप्न विचार से भी रोग के पूर्वरूप, तथा रोगी के अरिष्टों को जानने का उल्लेख है—यथा उन्माद के पूर्वरूपों में—"स्वप्न में बार बार

---

१ आपीतपिष्टातक पङ्काङ्कितां वर्धमानक परम्परां अन्यानि च सूतिकागृह मण्डनमङ्गलानि सम्पादयता पुरन्ध्रिवर्गेण समधिष्ठितम्... ॥ कदम्बरी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रान्त, चंचल, अस्थिर तथा अप्रशस्त रूपों का दीखना, कोल्हू पर बैठना, 'वायु के आवर्त्तों में मथा जाना, गदले पानी में डूबना' उन्माद का पूर्वरूप है (नि०अ० ७।६)। क्षयरोग के पूर्व रूपों में—"जलवाले स्थानों का सूखा देखना; ग्राम-नगर-निगम-जनपदों को उजड़ा देखना, सूखे, जले-टूटे वनों को देखना, गिरगट-मोर-बन्दर-तोता-साँप कौआ-उल्लू से ले जाया जाना और इनके ऊपर सवारी करना, कुत्ता-गधा-ऊँट की सवारी पर चढ़कर जाना, केश-हड्डी-राख-तुष-अंगारों के ढेर पर चढ़ना क्षय का पूर्वरूप है (नि० अ० ६।१५)।

इसी प्रकार रोगी की मृत्यु के सम्बन्ध में स्वप्नों का विचार है—यथा—'स्वप्न में घर की छत पर या पहाड़ों पर चढ़ना, हाथी, बैल पर चढ़ना, घोड़े या पुरुष पर सवारी करना, सोम-चन्द्रमा, सूर्य, ब्राह्मण—दूध देती गाय, मनुष्यों का देखना समुद्रों को पार करना, दुःख से निकल जाना, प्रसन्न हुये देवता पितरों के साथ स्वप्न में बात चीत करना—श्वेत वस्त्रों का तथा निर्मल जल से भरे सरोवर को देखना उत्तम है। स्वप्न में श्वेत पुष्पों का दिखाई देना, शुभ है। स्वप्नों के सम्बन्ध में एक अध्याय [इन्द्रिय. ५वां] ही है।

स्वप्न क्यों आते है—अति बलवान वात-पित्त कफ इन तीन दोषों से मनोवह स्रोत जब भर जाते हैं, तब भयानक समय पर मनुष्य भयानक स्वप्नों को देखता है। बहुत अधिक गाढ़ निद्रा में न होने पर पुरुष सफल होनेवाले और निष्फल होने वाले स्वप्नों को इन्द्रियों के प्रेरित करने वाले मन से देखता है।

स्वप्न सात प्रकार के हैं—देखे, सुने, अनुभूत, प्रार्थना किए, मनसे कल्पना किए, भावि-शुभ-अशुभ फल के सूचक, और वातादि दोषों के कारण उत्पन्न सात प्रकार के स्वप्न हैं। इनमें से पहिले पांच प्रकार के स्वप्न निष्फल होते हैं। इसी प्रकार दिन की नींद में देखा स्वप्न या बहुत छोटा या बहुत बड़ा स्वप्न भी निष्फल होता है। रात्रि के प्रथम प्रहर में देखा स्वप्न थोड़ा फल देता है; स्वप्न को देखकर फिर न सोने से महान् फल होता है और जल्दी फल मिलता है। अशुभ स्वप्न को देखकर मनुष्य यदि उसी समय शुभ—सौम्य स्वप्न देखता है, तो फल शुभ होता है [इन्द्रिय. ५।४१—४६]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिष सम्बन्धि विचार—वैद्य को बुलाने के लिए आये हुए दूतों के विषय में ग्रह-नक्षत्र-तिथि समय का विचार किया जाता था; यथा जो दूत सन्ध्या काल में या अदारुण नक्षत्रों के समय अक्रूर ग्रहों से अधिष्ठित समय पर उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र में आते हैं, वे प्रशस्त हैं। चतुर्थी तिथि के बिना, नवमी तिथि को छोड़कर या रिक्ता चतुर्दशी के बिना, मध्याह्न या आधी रात के सिवाय आते हैं, वे प्रशस्त हैं। इसी प्रकार से जो दूत भूकम्प या राहू दर्शन के समय नहीं आते वे शुभ हैं; अप्रशस्त देश में न आने वाले दूत उत्तम हैं आकस्मिक शुभ लक्षणों के समय आये दूत अच्छे हैं।

सूतिकागार में प्रवेश करते समय तिथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र और योग का विचार किया है [शा. अ ८।३७], शिष्य को अध्यापन कराने के लिए भी नक्षत्र, करण, पक्ष का विचार मिलता है [वि अ. ८।६]।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि उस समय भी भूत-प्रेत-राक्षस आदि की मान्यता थी, स्वप्नों का, दिन-नक्षत्रों का विचार कार्य के समय होता था। शुभ-अशुभ लक्षणों का विचार था। आज की भांति के विचार उस समय भी थे, क्योंकि मनुष्य स्वभाव एक ही है। इसी स्वभाव के कारण ही अत्रिपुत्र ने आयुर्वेद को अनादि कहा है [सूत्र. अ. ३०।२७]। उसी स्वभाव से उस समय के विश्वास आज भी उसी रूप में हमको मिलते हैं।

मु०—पं० बैकुण्ठनाथभार्गव आनन्दसागर प्रेस, गायघाट, बनारस १.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक द्वारा प्रस्तुत

आयुर्वेद साहित्य

अनुवाद

चरकसंहिता
सुश्रुतसंहिता
अष्टांगसंग्रह
अष्टांगहृदयम्
प्रत्यक्षशारीरम्
जीवानन्दनम्—(आयुर्वेद-तत्त्व को प्रकट करनेवाला प्राचीन नाटक)

पाठ्यक्रम के लिये

संस्कृत काव्यों में आयुर्वेद
क्लिनिकल मैडिसिन (दो भागों में)
शल्यतंत्र
न्यायवैद्यक और विषतंत्र
धात्रीशिक्षा
शिशुपालन
भैषज्यकल्पना
आयुर्वेद का इतिहास
भारतीय रस पद्धति
योग चिकित्सा

सामान्य जनता के लिये

घरका वैद्य
स्वास्थ्य विज्ञान
स्वास्थ्य और सद्वृत्त
हमारे भोजन की समस्या
स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग
संस्कारविधि विमर्श

सम्पादित

रसेन्द्रसारसंग्रह
रसरत्नसमुच्चय

शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तक

न्याय कुसुमाञ्जलि की हिन्दी गद्य व्याख्या

उपर्युक्त पुस्तकों से अपने संग्रह को पूर्ण बनाइये

Gurukula Kangri Library

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKULA KANGRI UNIVERSITY

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain: Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ARCHIVES DATA BASE
2011 - 12

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar